कविवर श्री लल्लूलालकृत

प्रेमसागर

भगवान् श्रीकृष्ण

आज स्वर्ण जयन्ती

के अवसर पर भगवत्प्रीत्यर्थ निःशुल्क वितरणार्थ प्रकाशित

कविवर श्री लल्लूलालकृत

प्रेमसागर

(सचित्र)

स्वर्ण जयन्ती

के अवसर पर भगवत्प्रीत्यर्थ निःशुल्क वितरणार्थ प्रकाशित

वाराणसी

ज्ञानमण्डल लिमिटेड
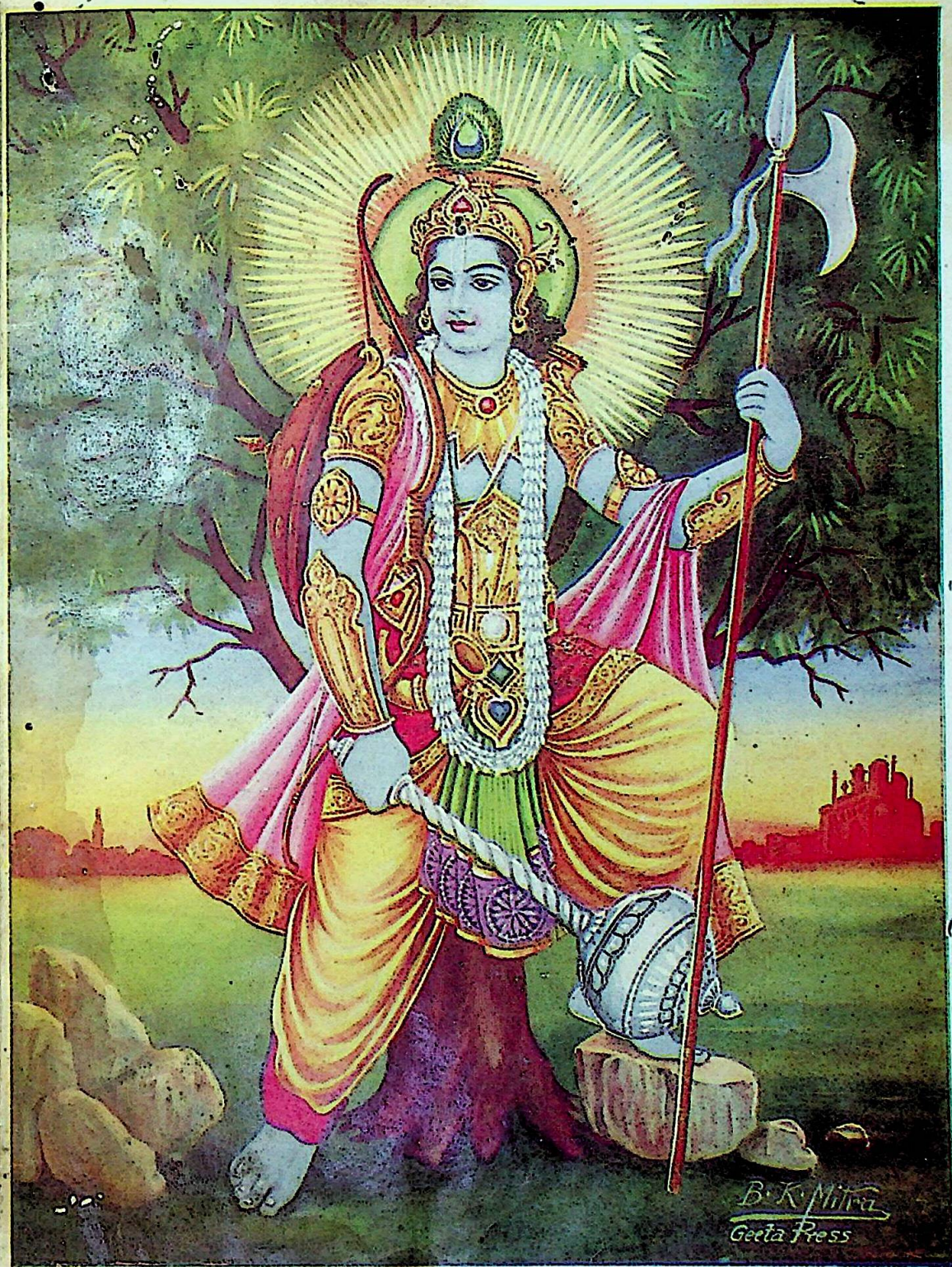
योद्धा-वेशमें

गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीगणेशाय नमः

❀ कविवर श्री लल्लूलालजीकृत ❀

❀ प्रेमसागर ❀

(सचित्र)

अध्याय--१

दोहा--विघन बिदारन विरदवर, बारन बदन विकास ।
वर देवहु बाढ़ै विसद, बानी बुद्धि-बिलास ।।
युगल चरन जुगवत जगत, जपत रैन दिन तोहि ।
जग माता सरस्वति सुमिरि, मुक्तियुक्ति दे मोहि ।।

महाभारत के अन्त में जब श्रीकृष्णचन्द्र अन्तर्धान हुए, तब पाण्डव महा दुखित हस्तिनापुर का राज्य परीक्षित को दे आप हिमालय में गलने को चले गये और राजा परीक्षित सब देश जीत धर्मराज्य करने लगे। कुछ दिन पीछे एक दिन राजा परीक्षित आखेट को धाये थे। वहाँ देखा कि एक गाय और बैल दौड़े चले आते हैं, तिनके पीछे मूसल हाथ में लिये एक शूद्र उन्हें मारता चला आता है। जब वे पास पहुँचे तब राजा ने शूद्र को बुलाय के कहा--अरे त कौन है जो गाय बैल को जान कर मारता है। अपना नाम बता, क्या अर्जुन को तूने दूर गया जाना, जिससे उसका धनुष नहीं पहचाना? पाण्डवों के कुल में ऐसा किसी को न पाया कि जिसके होते कोई दीन को सतावेगा। इतना कह राजा ने खड्ग हाथ में लिया। देख वह शूद्र डर कर खड़ा हो गया। फिर नृपति ने गाय और बैल को भी निकट बुलाय पूछा कि तुम कौन हो? मुझे समझाय के कहो, देवता हो कि ब्राह्मण और क्यों भागे जाते

हो ? निधड़क होके कहो, मेरे रहते किसी की इतनी सामर्थ्य नहीं जो तुम्हें दुःख दे । इतनी बात सुनकर बैल सिर झुका कर बोला——महाराज ! यह पाप रूप काले वस्त्र पहिने डरावनी सूरत जो आपके सन्मुख खड़ा हुआ है सो कलियुग है। इसी के आने से मैं भागा जाता हूँ। यह गाय स्वरूप पृथ्वी है, सो ये इसके डर से भाग चली और मेरा नाम धर्म है, मैं चार पाँव रखता हूँ——तप, सत्य, दया और शौच । सतयुग में मेरे चरण बीस बिस्वे थे, त्रेता में सोलह, द्वापर में बारह, अब कलियुग में चार बिस्वे हैं इसलिए कलि के बीच मैं चल नहीं सकता । धरती बोली——धर्मावतार मुझसे भी इस युग में रहा नहीं जाता, क्योंकि शूद्र राजा हो अधिक अधर्म मेरे ऊपर करेंगे। उनका बोझ मैं सह न सकूँगी, इस भय से मैं भी भागती हूँ ! यह सुनते ही राजा ने क्रोध कर कलियुग से कहा——मैं तुझे अभी मारता हूँ। वह घबरा कर राजा के चरणों पर गिरकर बोला——पृथ्वीनाथ ! अब तो मैं तुम्हारी शरण हूँ, मुझे कहीं रहने को ठौर बताओ, क्योंकि तीन काल और चारों युग जो ब्राह्मणों ने बनाये हैं सो किसी भाँति मेटे न मिटेंगे । इतना बचन सुनते ही राजा परीक्षित ने कलियुग से कहा कि तुम इतनी ठौर रहो, जुआ, झूँठ, मद की हाट, वेश्या के घर, हत्या, चोरी और स्वर्ण में। यह सुन कलि ने तो अपने स्थान को प्रस्थान किया और राजा ने धर्म को मन में रख लिया । पृथ्वी अपने रूप में मिल गई । फिर राजा नगर में आये और धर्म राज्य करने लगे ।

कितने ही दिनों पीछे राजा फिर एक समय आखेट को गये और चलते-चलते बड़े प्यासे भये। सिर के मुकुट में तो कलियुग रहता ही था, उसने अपना अवसर पा राजा को अज्ञान किया । राजा प्यास के मारे जहाँ शमीक ऋषि आसन मारे नयन मूँदे हरि का ध्यान लगाये तप कर रहे थे वहाँ आये । उन्हें देख परीक्षित मन में कहने लगा कि यह अपने तप के घमण्ड से मुझे देख आँखें मूँद रहा है । ऐसी मति ठान एक मरा साँप जो वहाँ पड़ा था ऋषि के गले में डाल अपने घर आया । मुकुट उतारते ही राजा को ज्ञान हुआ तो सोच कर कहने लगा कि कञ्चन में कलियुग का बास है, यह मेरे शीश पर था, इसीसे मेरी कुमति हुई जो मरा सर्प ऋषि के गले में डाल दिया सो मेरा उद्धार अब कैसे होगा ?

जहाँ शमीक ऋषि थे वहाँ कितने एक लड़के खेलते हुए जो निकले तो मरा साँप उनके गले में देख अचम्भे में रहे और घबराकर आपस में कहने लगे कि भाई ! कोई उनके पुत्र से जाकर कह दे । वह उस उपवन में कौशिकी नदी के तीर ऋषि के बालकों के सङ्ग खेलता है। यह सुनते ही एक लड़का वहाँ दौड़ा गया जहाँ शृङ्गीऋषि बालकों के साथ खेलता था। कहा बन्धु ! तुम यहाँ खेलते हो ? कोई दुष्ट मरा हुआ काला नाग तुम्हारे पिता के गले में डाल गया है । यह सुनते ही शृङ्गीऋषि के नयन लाल हो गये, और क्रोध कर कहने लगे कि कलियुग में जो राजा उपजे हैं वे अभिमानी धन के मद में अन्धे हो गये हैं, ऐसे कह शृङ्गीऋषि ने कौशिकी नदी का जल चुल्लू में ले राजा परीक्षित को शाप दिया कि तुझको तक्षक सर्प सातवें दिन काटेगा ।

राजा को शाप देकर अपने पिता के पास जा गले से साँप निकाल के कहने लगा—— हे पिता ! तुम अपनी देह सँभालो। मैंने उसे शाप दिया, जिसने आपके गले में मरा सर्प डाला है । यह बचन सुनते ही शमीक ऋषि सचेत हो नयन उघार अपने ज्ञान से विचार कर बोले

अरे पुत्र ! तैंने यह क्या किया ? क्यों राजा को शाप दिया। उसके राज्य में हम सुखी हैं, कोई पशु पक्षी भी दुखी नहीं है। ऐसा धर्म का राज्य था कि जिसमें सिंह, गाय एक साथ रहते; वे आपस में कुछ न कहते और हे पुत्र जिसके देश में हम बसते हैं क्या हुआ उसने मरा सर्प मेरे गले में डाल दिया। उसे शाप क्यों दिया। तनिक अपराध पर ऐसा शाप तैंने दिया, बड़ा यह तैंने पाप किया। कुछ बिचार मन में नहीं किया, गुण छोड़ अवगुण ही लिया। साधु को चाहिये शील स्वभाव से रहे, आप कुछ न कहे, और की सुन ले, सबका गुण ले और अवगुण को तज दे।

शमीक ऋषि ने एक चेले से कहा कि तुम राजा परीक्षित को जाकर जता दो कि तुम्हें शृङ्गीऋषि ने शाप दिया है, लोग तो भले ही दोष देंगे, पर राजा सावधान तो हो जायँगे। इतना बचन गुरु का मान कर चेला राजा के पास आया और कहा महाराज, तुम्हें शृङ्गीऋषि ने यह शाप दिया है कि सातवें दिन तक्षक डसेगा। अब तुम वह कार्य करो जिससे कर्म की फाँसी से छूटो। सुनते ही राजा प्रसन्नता से खड़ा हो हाथ जोड़ कहने लगा कि मुझ पर ऋषि ने बड़ी कृपा की जो शाप दिया, क्योंकि मैं माया मोह के अपार शोक सागर में डूबा था, सो निकाल बाहर किया। जब मुनि का शिष्य विदा हुआ तब राजा ने आप तो वैराग्य लिया और जनमेजय को बुलाय राज पाट देकर कहा बेटा ! गौ, ब्राह्मणों की रक्षा कीजियो और प्रजा को सुख दीजो। इतना कह रनवास में आये, सभी रानी राजा को उदास देखते ही पावों पर गिर रो रो कर कहने लगीं कि महाराज ! तुम्हारा वियोग हम अबला न सह सकेंगी, इससे साथ जायें तो भला हो। राजा बोला पतिव्रता स्त्री को उचित है जिससे अपने पति का धर्म रहे वही काम करे।

इतना कह धन, कुटुम्ब और राज्य की माया तज निर्मोही हो आप योग साधने गङ्गा के तीर जा बैठा। इसको जिसने सुना वह बिना रोये न रहा और यह समाचार जब मुनियों ने सुना कि राजा परीक्षित शृङ्गी ऋषि के शाप से मरने को गङ्गा तीर पर आ बैठा है तब व्यास, वशिष्ठ, भरद्वाज, कात्यायन, पाराशर, नारद, विश्वामित्र, बामदेव, यमदग्नि आदि अठासी सहस्त्र ऋषि आये और आसन बिछाय पंक्ति में बैठ गये। अपने-अपने ज्ञान से अनेक-अनेक भाँति के धर्म राजा को सुनाने लगे कि इतने में राजा की श्रद्धा देख पोथी काँख में लिये दिगम्बर वेष में श्रीशुकदेव जी भी आन पहुँचे। उनको देखते ही जितने मुनि थे सब खड़े हुए और राजा परीक्षित भी हाथ बाँधे खड़ा हो विनती कर कहने लगा कि हे कृपानिधान ! मुझ पर बड़ी दया की जो इस समय आपने मेरी सुधि ली। इतनी बात सुनकर शुकदेव मुनिजी बैठे। राजा ऋषियों से कहने लगा कि महाराज ! व्यास जी के जो बेटे, तिनको देख तुम बड़े-बड़े मुनीश उठे सो तो उचित नहीं, इसका कारण कहो जो मेरे मन का सन्देह जाय। यह सुन पाराशर मुनि बोले—राजा जितने हम अवस्था में बड़े ऋषि हैं उतने ही ज्ञान में शुक से छोटे हैं। इसलिए सबने शुक का आदर मान किया। राजा का कोई बड़ा पुण्य उदय हुआ जो शुकदेव जी आये, ये हम सबसे उत्तम धर्म कहेंगे, जिसके सुनने से तू जन्म-मरण से छूट भवसागर से पार होगा। राजा परीक्षित ने शुकदेवजी को दण्डवत कर पूछा कि महाराज मुझे समझाय के कहो कि किस रीति से कर्म के फन्दे से सात दिन की अवधि में मोक्ष को प्राप्त हूँगा। अधर्म अपार है, मैं इस भव-सागर से कैसे पार हूँगा।

श्री शुकदेव जी बोले कि राजन् ! तू ये थोड़े दिन मत समझ, भक्ति तो होती है एक घड़ी के ध्यान में जैसे राजा खट्वांगको नारदमुनि ने ज्ञान कराया था औरउसनेदो ही घड़ीमें मुक्ति पायी थी, तुझे तो सात दिन का समय है । जो एक चित्त हो करो ध्यान, तो सब समझोगे अपने ही ज्ञान । यह देह क्या है किसका है वास, कौन करता है इसमें प्रकाश । यह सुन राजा ने हर्ष से पूछा कि महाराज ! सब धर्मों में उत्तम धर्म कौन-सा है, सो कृपा कर कहो । तब शुकदेव जी बोले कि राजन्! जैसे सब धर्मोंमें वैष्णव धर्म बड़ा है तैसे ही पुराणों में श्रीमद्भागवत । जहाँ हरि भक्त यह कथा सुनते हैं वहाँ ही सब तीर्थ और धर्म आते हैं । भागवत के समान कोईभी पुराण नहीं है । इस कारण मैं तुझे बारह स्कन्ध महापुराण सुनाता हूँ जो व्यास मुनि ने मुझे पढ़ाया है । तू श्रद्धा समेत आनन्द से चित्त दे सुन । तब तो राजा परीक्षित बड़े प्रेम से सुनने लगे और श्रीशुकदेवजी नियम से सुनाने लगे ।

नौ स्कन्ध की कथा जब मुनि ने सुनाई तब राजा ने कहा दीनदयालु दया कर श्री कृष्णावतार की कथा कहिये क्योंकि हमारे सहायक कुलपूज्य वही हैं । शुकदेवजी बोले राजन् ! तुमने मुझे बड़ा सुख दिया जो यह प्रसंग पूछा, सुनो मैं कहता हूँ। यदुकुल में पहले भजमान नाम के राजा थे जिनके पुत्र पृथु, पृथु के विदुर थे; उनके शूरसेन जिन्होंने नौखण्ड पृथ्वी जीत कर यश पाया । उनकी स्त्री का नाम मरिष्या था । उनके दस लड़के और पाँच लड़कियाँ तिनके बड़े पुत्र बसुदेव जिनकी स्त्री के आठवें गर्भ में श्री कृष्णचन्द्र जी ने जन्म लिया । शूरसेन की पाँच पुत्रियों में सबसे बड़ी पुत्री कुन्ती थी जो पांडु को ब्याही थी । जिनकी गाथा महाभारत में कही है और बसुदेवजी पहले तो रोहिण नरेश की बेटी रोहिणी को ब्याह लाये तिसके पीछे सत्रह ब्याह किये । तब अठारह पटरानी हुईं तब मथुरा में कंस की बहिन देवकी को ब्याहा । तहाँ आकाशवाणी भई कि इस लड़की के आठवें गर्भ में कंस का काल उपजेगा । यह सुन कंस ने बहिन बहनोई को एक घर में बन्द कर दिया और श्रीकृष्ण ने वहाँ ही जन्म लिया । राजा परीक्षित बोले महाराज ! कंस का जन्म कैसे हुआ, किसने उसे महा वर दिया और कौन रीति से कृष्ण जन्मे और फिर किस विधि से गोकुल पहुँचे, यह सब कथा मुझे समझाय के कहो ।

श्रीशुकदेवजी बोले—मथुरापुरी का आहुक नामक राजा तिसके दो बेटे थे । एक का नाम देवक दूसरे का नाम उग्रसेन था । कितने ही दिन पीछे उग्रसेन वहाँ का राजा हुआ जिसकी एक ही रानी थी । उसका नाम पवनरेखा था । सो वह अति सुन्दरी और पतिव्रता थी । आठो पहर स्वामी की आज्ञा ही में रहै । एक दिन कपड़ों से भई तौ पति की आज्ञा ले सखियों के साथ रथ में चढ़कर बन में खेलने को गई । वहाँ चहुँ ओर वृक्षों में फल फूल लगे हुए थे । सुगन्धित मन्द-मन्द ठण्डी हवा बह रही थी । कोकिल कपोत कीर-मोर मीठी-मीठी मन भावनी बोलियाँ बोल रहे थे । रानी दृश्य को देख रथ से उतर कर चली तो अचानक एक ओर अकेली भूल से जा निकली । द्रुमलिक नाम का राक्षस भी संयोग से आ पहुँचा, वह इसके यौवन और रूप की छवि देखकर छक रहा और मन में कहने लगा कि इससे भोग करना चाहिये । निदान तुरन्त राजा उग्रसेन का स्वरूप बना रानी के पास जाकर बोला, तू मुझसे मिल । रानी बोली महाराज दिन को कामकेलि करना उचित नहीं क्योंकि इससे शील और धर्म जाता है । आप ज्ञानवान होकर ऐसी कुमति बिचारते हैं ।

जब पवनरेखा ने यह कहा, तब द्रुमलिक ने रानी का हाथ पकड़ खैंच लिया और प्रसङ्ग किया। इस भाँति छल से भोग कर अपना असली रूप धारण कर लिया। रानी अति दुःखपाय करके बोली—अरे अधर्मी ! तूने यह क्या अनर्थ किया जो मेरे सत को खो दिया। धिक्कार है तेरे माता-पिता और गुरु को जिसने तुझे ऐसी बुद्धि दी। जो नर देह पाकर किसी का सत भङ्ग करते हैं सो जन्म जन्म नरक में पड़ते हैं। द्रुमलिक बोला, रानी ! तू शाप मत दे, तेरी कोख बन्द देख मेरे मन में बड़ी चिन्ता थी सो गई। आज से हुई गर्भ की आस, लड़का होगा दसवें मास और मेरी देह के स्वभाव से तेरा पुत्र सौ खण्ड पृथ्वी को जीत राज्य करेगा और श्रीकृष्ण जी सों लड़ेगा। मेरा नाम कालनेमि था, तब विष्णु से युद्ध किया था, अब जन्म ले लिया तो द्रुमलिक नाम कहाया। इतनी बात कह जब द्रुमलिक चला गया तब रानी को भी कुछ मन में धीरज भया।

दोहा—जैसी हो भवितव्यता तैसी उपजै बुद्धि। होनहार हिरदै वसे, विसरि जाय सब सुद्धि ।।

इतने में सब सखी आईं। रानी का श्रृङ्गार बिगड़ा देख सहेली बोल उठीं, इतनी देर तुझे कहाँ लगी और ऐसी गति कैसे हुई। पवनरेखा ने कहा सुनो सहेलियों ? तुमने इस बन में तजी अकेली, एक बन्दर आया उसने मुझे अधिक सताया तिसके डर से मैं थर-थर काँपती हूँ। यह बात सुनकर सबकी सब घबराईं और रानी को रथ पर चढ़ाय घर लाईं। जब दस महीने का पूरा लड़का हुआ तिस समय बड़ी आँधी चलने लगी धरती डोलने लगी अँधेरा ऐसा हुआ जो दिन की रात हो गई। तारे टूट-टूट कर गिरने व बादल गर्जने और बिजली कड़कने लगी।

माघ सुदी तेरस बृहस्पतिवार को राजा कंस ने जन्म लिया सो राजा उग्रसेन ने प्रसन्न हो नगर की मंगलामुखियों को बुलाया, मंगलाचार करवाये और सब ब्राह्मण, पण्डित, ज्योतिषियों को भी अति मान-सन्मान से बुलाय भिजवाये। राजा ने बड़ी भाव भक्ति से आसन देके बैठाये तब ज्योतिषियों ने लग्न साध मुहूर्त्त बिचार कर कहा पृथ्वीनाथ ! यह लड़का कंस नाम तुम्हारे वंश में उपजा सो अति बलवान होगा। राक्षसों को साथ ले राज्य करेगा और देवता और हरिभक्तों को दुःख दे आपसे राज्य छीन निदान हरि के हाथ से मरेगा।

शुकदेव मुनि बोले राजन् ! अब मैं उग्रसेन के भाई देवक की कथा कहता हूँ कि उनके चार बेटे थे और छः बेटियाँ। सो छहों बसुदेव को ब्याह दीं। सातवीं देवकी हुई जिसके होने से देवताओं को बड़ी प्रसन्नता हुई। उग्रसेन के दस पुत्रों में सबसे बड़ा कंस ही था। जब से जन्मा तब से यह काम करने लगा कि नगर में जाय छोटे-छोटे लड़कों को पकड़ लावे और मार डाले। जो बड़े होंय तिनकी छाती पर चढ़, गला घोंट जी निकाले। इस दुख से कोई कहीं निकलने न पाये, सब कोई अपने अपने लड़कों को छिपावें, प्रजा कहै यह दुष्ट कंस उग्रसेन का नहीं है, किसी महा पापी ने कंस का जन्म लिया है जिसने सारे नगर को सताया है। उग्रसेन ने कंस को बुलाय के बहुत समझाया पर उनका कहना उसके जी में कुछ भी न भाया। निदान जब कंस आठ वर्ष का भया तब मगध देश पर चढ़ गया, वहाँ का राजा जरासिन्धु बड़ा योधा था तिससे मल्ल युद्ध किया तो उसने कंस का बल देख लिया और हार मान अपनी दो बेटियाँ ब्याह दीं, उन्हें ले मथुरा में आया और उग्रसेन से बैर बढ़ाया। एक दिन अपने पिता से बोला

कि तुम राम नाम कहना छोड़ दो और महादेव का जप करो। उग्रसेन ने कहा मेरे तो कर्ता दुखहर्ता वही हैं जो उनको ही न जपूँगा तो अधर्मी हो कैसे भवसागर पार हूँगा। यह सुन कंस ने बाप को पकड़ कर सारा राज ले लिया और नगर में यह डचौढ़ी फेर दी कि कोई यज्ञ, दान, धर्म, तप और राम नाम जप करने न पावेगा। तब ऐसा अधर्म बढ़ा कि गौ, ब्राह्मण, हरि के भक्त दुक्ख पाने लगे, धरती बोझ से मरने लगी। एक दिन दल ले राजा इन्द्र पर चढ़ चला। तब मन्त्री ने कहा महाराज! इन्द्रासन बिना तप किये नहीं मिलता। आप बल का गर्व न करिये। देखो गर्व ने रावण को खो दिया कि जिनके कुल में एक भी न रहा।

शुकदेव राजा परीक्षित से कहने लगे कि राजन्! जब पृथ्वी पर अति अधर्म होने लगा, तब पृथ्वी दुक्ख पाय घबराय गाय का रूप बनाय रँभाती-रँभाती देवलोक में गई और इन्द्र की सभा में जाय सिर झुकाय उसने अपनी सब पीर कही कि महाराज! संसार में असुर अति पाप करने लगे हैं, तिनके डर से धर्म तो उठ गया, और मुझे भी आज्ञा दो कि नरपुर छोड़ के रसातल को जाऊँ। यह बात सुन इन्द्र सब देवताओं को साथ ले ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्माजी सबको महादेवजी के निकट ले गये। महादेवजी बोले हे ब्रह्माजी! दो बात मेरे हाथ में नहीं है, एक तो पृथ्वी का भार उतारना व दूसरे मोक्ष। शेष मैं सब कर सकता हूँ। अतएव सबको साथ ले वहाँ गये जहाँ क्षीरसागर में नारायण सो रहे थे। उनको सोते जान ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र सब देवताओं को साथ ले हाथ जोड़ विनती करने लगे हे महाराजाधिराज! आपकी महिमा कौन कह सके। जब जब दैत्य तुम्हारे भक्तों को दुःख देते हैं तब-तब तुम आप ही उनकी रक्षा करते हो नाथ! अब कंस के सताने से पृथ्वी अति व्याकुल हो पुकार करती है। उसकी सुधि बेग लीजै और असुरों को मार साधुओं को सुख दीजै।

तब आकाशवाणी भई कि तुम सब देवी देवता ब्रजमण्डल में जाय मथुरा नगरी में जन्म लो, पीछे चार स्वरूप धर हरि भी बसुदेव के घर देवकी की कोख में अवतार लेंगे और बाल लीलाकर नन्द यशोदा को सुख देंगे। यह आकाश-वाणी ब्रह्मा ने सबको बुझाय कर कही। तत्पश्चात् सुर, मुनि, किन्नर और गन्धर्व अपनी-अपनी स्त्रियों समेत जन्म ले ब्रजमण्डल में यदुवंशी और गोप कहाये और जो चारों वेद की ऋचाएँ थीं सो भी ब्रह्मा की आज्ञा से ब्रज में गोपियाँ कहलाईं। तब क्षीर समुद्र में हरि विचार करने लगे कि पहिले लक्ष्मण होवें बलराम, पीछे बासुदेव होवे मेरा नाम, भरत प्रद्युम्न, शत्रुघ्न अनिरुद्ध और सीता रुक्मिणी का अवतार लेंगी।

दोहा—अद्भुत रचना कृष्ण की, कर तन अजर अगेह। खेल तत्व बत्तीस का, विधि रचते नर देह।

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे भगवानकृष्ण जन्म प्रसंग कथा प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

●

अध्याय—२

श्री शुकदेवजी बोले हे महाराज! कंस तो इस अनीति से मथुरा में राज्य करने लगा और उग्रसेन कारागृह में दुःख सहने लगे। देवक जो कंस का चचा था, उसकी कन्या देवकी ब्याह के योग्य हुई तो कंस से कहा कि यह लड़की किस को दूँ। तब कंस बोला शूरसेन के

पुत्र बसुदेव को दीजिये । इतनी बात के सुनतें ही देवक ने एक ब्राह्मण को बुलाय, शुभ लग्न ठहराय शूरसेन के घर टीका भेज दिया । तब तो शूरसेन बड़ी धूम धाम से बरात बनाय के मथुरा में बसुदेव को ब्याहने आये ।
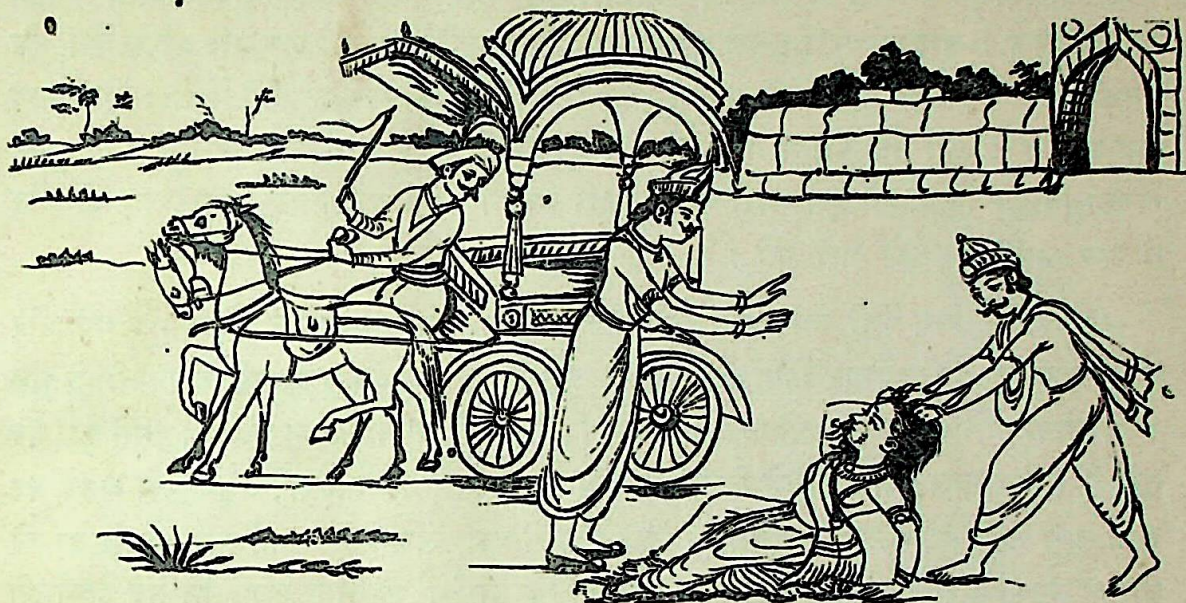
बरात का आगवन सुन अति मान आदर से आगौनी की और जनवासा दिया । फिर खिलाय पिलाय सब बरातियों को मण्डप के नीचे ले जाय बैठाया और वेद की विधि से कंस ने बसुदेव को कन्यादान दिया । तिसके दहेज में पन्द्रह सहस्र घोड़े चार सहस्र हाथी अट्ठारह सौ रथ, दास दासी अनेक दे, कंचन के थाल रत्नजटित आभूषण से भर-भर के अनगिनती दिये । सब बरातियों को भी अलङ्कार समेत बागे पहराये । पीछे जब सब बरात पहुँचाने चले तब आकाशवाणी हुई कि अरे कंस ! जिसे तू पहुँचाने चला है उसीका आठवाँ पुत्र तेरा काल होकर उपजेगा उसके ही हाथ से तेरी मृत्यु है ।

यह सुन कंस डर से काँप उठा और देवकी की चोटी पकड़ रथ से नीचे खैंच लिया । खड्ग हाथ में ले कहने लगा जिस पेड़ को जड़ से उखाड़िये उसमें फूल फल काहे को लगेगा । अब इसी को मारूँ तो निर्भय राज करूँ । यह देख कर बसुदेव मन में बिचारने लगे, इस मूर्ख ने मुझे बड़ा सन्ताप दिया, पुण्य और पाप, कुछ नहीं जानता है, जो अब क्रोध करता हूँ तो काज बिगड़ेगा इससे इस समय क्षमा करना ही योग्य है ।

जो बैरी खैंचे तलवार । करै साधु तिसकी अनुहार । समझे मूढ सोइ पछिताय । जैसे पानी आग बुझाय ।।

बसुदेव कंस के पास जा, हाथ जोड़ बिनती कर कहने लगे कि हे पृथ्वीनाथ ! तुमसा बली संसार में कोई नहीं और सब तुम्हारे छाँह तले बसते हैं । ऐसे शूर होकर स्त्री पर शस्त्र छोड़ते हो, यह अनुचित है । उसमें भी बहिन के मारने से महा पाप होता है, तिसपर भी मनुष्य अधर्म तब करे जब जाने कि कभी न मरूँगा । इस संसार की तो यही रीति है, इधर जन्मा उधर मरा । अपनी अबला व अधीन बहिन को छोड़ दीजै । पर कंस अपना काल जान और भी झुंझलाया । तब बसुदेव सोचने लगे यह पापी तो असुर बुद्धि किये अपने हठ

की टेक पर है जिस तरह हो इसके हाथ से यह बचे सो उपाय किया जाना चाहिये । ऐसा विचार कर बसुदेव मनमें कहने लगे तब अब तो इससे यों कहके देवकी को बचाऊँ कि जो पुत्र मेरे जन्मेगा सो तुझे दूँगा । पीछे किसने देखा है कि लड़का होय कि लड़की, यह दुष्ट मारे कि न मारे, यह अवसर तो टलै फेर समझा जायगा । इस भाँति मन में ठान, बसुदेव ने कंस से कहा कि महाराज ! तुम्हारी मृत्यु इसके पुत्र के हाथ से होयगी अतः मैंने एक युक्ति ठहराई है कि देवकी के जितने लड़के होंगे उतने मैं तुम्हें सौंप दूँगा । यह बचन मैंने तुमको दिया । ऐसी बात जब बसुदेव ने कही तब कंस ने मान ली और देवकी को छोड़ कहने लगा हे बसुदेव ! तुमने अच्छा विचार किया जो ऐसे भारी पाप से मुझे बचा लिया । इतना कह बिदाई कर दी और वे सब अपने घर को चले गये ।

कितने दिन पीछे जब पहला पुत्र देवकी के हुआ तब बसुदेव उसे ले कंस पै गये और रोता हुआ लड़का आगे धर दिया । देखते ही कंस ने कहा बसुदेव तुम बड़े सत्यवादी हो मैंने आज जाना क्योंकि तुमने मुझसे कपट न किया निर्मोही, हो अपना पुत्र ला दिया । इससे कुछ डर नहीं है । यह बालक मैंने तुमको दिया इतना सुन बालक ले दण्डवत् कर बसुदेव तो अपने घर आये तथा उसी समय नारद मुनिजी ने जाय कंस से कहा राजन् ! तुमने यह क्या किया जो बालक उलटा फेर दिया । क्या तुम नहीं जानते कि बसुदेव की सेवा करने को सब देवताओं ने ब्रज में आय जन्म लिया है और देवकी के आठवें गर्भ में श्रीकृष्ण जन्म ले सब राक्षसों को मार कर भूमि का भार उतारेंगे । इतना कह नारद मुनि ने आठ लकीरें खैंच गिनवाईं । जब सब तरफ से आठ ही गिनती में आई तब डरकर कंस ने लड़के समेत बसुदेवजी को बुलाय भेजा । नारद मुनि तो यों समझाय बुझाय चले गये और कंस ने बसुदेव से बालक ले मार डाला । ऐसे ही जब जब पुत्र होय तब तब बसुदेव ले आवें और कंस उसे मार डाले । इसी रीति से छः बालक मारे तब सातवें गर्भ में शेष रूप जो भगवान् हैं उन्होंने आ निवास किया । यह कथा सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव मुनि से पूछा महाराज नारद मुनि ने जो अधिक पाप करवाया उसका ब्यौरा समझा कर कहो, जिससे मेरे मन का सन्देह जाय । श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन् ! नारद मुनि ने बिचारा कि यदि वह अधिक पाप करेगा तो श्री भगवान् तुरन्त प्रकटेंगे ।

इति श्री लल्लूलालकृते प्रेमसागरे देवकी विवाह बालक वधो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

अध्याय—३

शुकदेवजी राजा परीक्षित से कहने लगे कि राजन् ! जैसे हरि गर्भ में आये ब्रह्मादिक ने गर्भ स्तुति करी, देवी जिस भाँति बलदेवजी को गोकुल ले गईं तिस रीति को कहता हूँ । एक दिन राजा कंस अपनी सभा में आय बैठा और जितने दैत्य उसके थे उनको बुलायकर कहा, सुनो सब देवता पृथ्वी पर जन्म ले चुके हैं । उन्हीं के संग श्रीकृष्ण भी अवतार लेंगे । यह भेद मुझसे नारद मुनि समझाय करके कह गये हैं । इससे अब उचित है कि तुम जाकर सब यदु-

वंशियों का नाश करो और एक भी जीता न बचे। यह आज्ञा पाय सबके सब दण्डवत कर चले और नगर में आय ढूँढ़-ढूँढ़ पकड़-पकड़ कर बाँधने और मारने लगे। खाते, पीते, खड़े, बैठे, सोते, जागते, चलते, फिरते, जिसे पाया तिसे न छोड़ा। सबको एक ठौर लाय जला-जला डुबो-डुबो पटक-पटक कर मार डालें। इस रीति से छोटे बड़े भाँति-भाँति के भयानक भेष बनाय नगर नगर गाँव-गाँव गली-गली खोज-खोज मारने लगे और यदुवंशी दुःख पाय-पाय देश छोड़-छोड़ प्राण ले ले कर भागने लगे।

उसी समय बसुदेवजी की जो अन्य स्त्रियाँ थीं सो रोहिणी समेत मथुरा से गोकुल में आयीं। वहाँ बसुदेव जी के परम मित्र नन्द जी रहते थे। उन्होंने हित से आशा भरोसा दे अपने यहाँ सत्कार से रक्खा तब वे आनन्द से रहने लगीं। जब कंस देवताओं को सताने और अति पाप करने लगा तब विष्णु ने अपने नेत्रों से अपनी एक महामाया उपजाई। वह हाथ बाँध सन्मुख आई। उससे हरि ने कहा अब तू जा संसार में अवतार ले मधुपुरी के बीच जहाँ दुष्ट कंस मेरे भक्तों को दुःख देता है और (कश्यप अदिति) जो बसुदेव देवकी हो व्रज में जन्मे हैं तिनको कैद कर रखा है और उनके छः बालक तो उस कंस ने मार डाले अब सातवें गर्भ में लक्ष्मणजी हैं। उनको देवकी के उदर से निकाल गोकुल में ले जाकर इस रीति से रोहिणी के पेट में रख दीजो कि कोई दुष्ट न जाने और सब वहाँ के लोग तेरा यश बखानें।

इस भाँति माया को समझाय श्री नारायण बोले कि तू पहले जाकर यह कार्य करके नन्द के घर में जन्म ले। पीछे बसुदेव के गृह में अवतार ले। मैं भी नन्द के घर आता हूँ। इतना सुनते ही माया उठ मथुरा में आई और मोहनी रूप बना बसुदेव गृह में पैठ गई ।।

चौपाई—जो छिपाय गर्भ हरि लिया। जाय रोहिणी को सो दिया।
जाने सब पहला आधान। भये रोहिणी के भगवान् ।।

इस रीति से श्रावण सुदी चौदस बुधवार को बलदेव जी ने गोकुल में जन्म लिया और माया ने बसुदेव को जाय स्वप्न दिया कि मैंने तुम्हारा पुत्र गर्भ से ले जाय रोहिणी को दिया है।

तुम किसी बात की चिन्ता मत कीजो। सुनते ही बसुदेव देवकी जाग पड़े और आपस में कहने लगे कि यह तो भगवान् ने भला किया। कंस को इसी समय चेताना चाहिये नहीं तो क्या जानिये पीछे क्या दुःख दे। यों सोच समझ रखवालों से बुझाय कर कहा। उन्होंने कंस को जा सुनाया कि महाराज अबकी देवकी का गर्भ अधूरा रह गया बालक कुछ पूरा न भया। सुनते ही कंस घबराकर बोला कि तुम अब की बेर चौकसी करियो क्योंकि आठवें ही गर्भ का मुझे डर है जो आकाशवाणी कह गई है! राजा परीक्षित ने पूछा हे महाराज मेरा संदेह मिटाइये कि देवकी के गर्भ में बास बलरामजी ने किया और रोहिणी माता कैसे भई। यह सुन श्री शुकदेवजी बोले हे राजन्, बलदेवजी को नारायण के आज्ञानुसार जो योग माया ने देवकी के गर्भ से निकाल रोहिणीजी के गर्भ में बास करा दिया इसलिए वह माता कहलाईं। बलदेवजी के जन्म के बाद जब श्री कृष्णजी देवकी के गर्भ में आये तभी माया ने जा नन्द की नारी यशोदा के पेट में बास किया। दोनों आधात गर्भ से थीं कि एक पर्व में देवकी यमुना नहाने गईं। वहाँ संयोग से यशोदा भी आन मिलीं तो आपस में दुख सुख की चर्चा चली। निदान यशोदा ने देवकी को बचन दे कहा कि तेरा बालक मैं रक्खूँगी, अपना तुझे दूँगी। ऐसे बचन दे यह अपने घर आई। और वह अपने घर गईं। आगे जब कंस ने जाना कि देवकी को आठवाँ गर्भ रहा तब बसुदेव का घर जाय घेरा, चारों ओर दैत्यों की चौकी बैठा दी और बसुदेवजी को बुलाय के कहा कि अब तुम मुझसे कपट न कीजो और अपना लड़का ला मुझको दीजो। तब मैंने तुम्हारा ही कहना मान लिया था।

ऐसे कह बसुदेव देवकी को हथकड़ी बेड़ी पहिराय एक कोठे में बन्द कर ताला दे निज मन्दिर आ, मारे डर के उपवासा ही सो रहा। फिर भोर होते ही वहाँ गया जहाँ बसुदेव देवकी थे, गर्भ का प्रकाश देख कहने लगा इसी यम गुफा में मेरा काल है, मार तो डालूँ पर अपयश से डरता हूँ क्योंकि बलवान हो स्त्री को मारना उचित नहीं। इसके पुत्र ही को मारूँगा। यों कह आय गज, सिंह, स्वान और अपने बड़े-बड़े योद्धा वहाँ चौकसी को रखवाये और आप भी नित्त चौकसी कर आवै, एक पल भी उसे न चैन आवै। जहाँ देखे आठों पहर चौसठ घड़ी कृष्ण रूप काल ही सामने दृष्टि आवै और चिन्तातुर हो रात दिन गँवावै।

इधर कंस की तो यह दशा थी, उधर बसुदेव और देवकी इन दिनों महाकष्ट में श्रीकृष्ण ही को मनाते थे कि इस बीच भगवान् ने आय उन्हें स्वप्न दिया। उनके मन का सोच दूर किया कि हम बेग ही जन्म ले तुम्हारी चिन्ता मेटेंगे। यह सुन बसुदेव देवकी जाग पड़े। इतने में ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादि सब देवता अपने-अपने विमान छोड़ अलखस्वरूप बन बसुदेव के गृह में आये और हाथ जोड़ वेद मन्त्रों से गर्भ की स्तुति करने लगे। उस समय उनको तो किसी ने न देखा पर वेद की धुनि सबों ने सुनी। यह अचरज देख रखवाले बहुत अचम्भे में हुए और बसुदेव देवकी को निश्चय हुआ कि भगवान् बेग ही हमारी पीर हरेंगे।

इति श्री लल्लूलालकृते प्रेमसागरे बलदेव जन्म गर्भस्तुतिनाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अध्याय-४

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! जिस समय श्रीकृष्ण का जन्म हुआ तिस काल सब ही के जी में ऐसा आनन्द उपजा कि दुख का नाम भी न रहा। हर्ष से लगे बन उपवन हरे हो-हो फूलने फलने, नदी नाले, सरोवर झरने, तिन पर भाँति-भाँति के पक्षी किलोल करने और नगर-नगर गाँव-गाँव घर-घर मङ्गलाचार होने, ब्राह्मण यज्ञ रचने, दसों दिशा के दिग्पाल हर्षने, बादल ब्रजमण्डल पर घिरने, देवता अपने-अपने विमानों में बैठे आकाश से फूल बरसाने, विद्याधर, गन्धर्व चारण ढोल दमामे भेरी बजाय-बजाय गुण गाने। एक ओर उर्वशी आदि सब अप्सरा नाचने लगीं।

ऐसे समय भादों बदी अष्टमी, बुधवार रोहिणी नक्षत्र में आधी रात को भगवान् ने जिनका मेघवर्ण, चन्द्रमुख, कमलनयन, पीताम्बर काछे, मुकुट धरे वैजयन्ती माला और रत्न-जटित आभूषण पहरे, चतुर्भुज रूप किये शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, लिये बसुदेव देवकी को दर्शन दिया। देखते ही अचम्भे में हो उन दोनों ने ज्ञान से बिचारा तो आदि पुरुष को जाना। तब हाथ जोड़ बिनती कर कहा हमारे बड़े भाग्य हैं जो आपने दर्शन दिया और जन्म मरण का निबेड़ा किया।

इतनी प्रार्थना कर पहली कथा सुनाई जैसे कंस ने दुख दिया था। तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले तुम अब किसी बात की चिन्ता मन में मत करो मैंने तुम्हारे दुःख को दूर करने को ही अवतार लिया है। पर इस समय मुझे गोकुल पहुँचा दो और इसी बिरियाँ यशोदा के लड़की हुई है सो कंस को ला दो और अपने जाने का कारण कहता हूँ सो सुनो।

दो०—नन्द यशोदा तप कर्यो, मोही सों मन लाय। देखन चाहत वाल सुख, रहौं कछुक दिन जाय।।

फिर कंस को मार आन मिलूँगा। तुम अपने मन में धैर्य धरो। ऐसे समझाय श्रीकृष्ण बालक बन रोने लगे और अपनी माया फैला दी तब तो बसुदेव देवकी का ज्ञान गया और जाना

कि हमारे पुत्र भया। यह समझ दस सहस्र गायें मनमें संकल्प कर लड़के को गोद में उठा छाती से लगा लिया। उसका मुख देख दोनों लम्बी-लम्बी साँसें भर आपसमें कहने लगे जो किसी रीति से इस लड़के को भगा दीजे तो पापी कंस के हाथ से प्राण बचे। बसुदेव बोले——

चौपाई——विधना विन राखै नहिं कोई। करम लिखा सोई फल होई।।
तव कर जोरि देवकी कहै। नन्दमित्र गोकुल में रहै।
नारि यशोदा भैन हमारी। नारि रोहिणी तहाँ तिहारी।।

इस बालक को वहाँ ले जाओ यों सुन बसुदेव अकुला कर कहने लगे इस कठिन बन्धन से कैसे छूटूँ। इतनी कही तो सब बेड़ी हथकड़ी खुल पड़ीं। चारों ओर के किवाड़ खुल गये, पहरुए, अचेत हो नींद वश हुए, तब तो बसुदेवजी ने श्रीकृष्ण को सूप में रख शिर पर धर लिया, और झटपट ही गोकुल को गये।

सोरठा——ऊपर वरसे मेघ, पीछे सिंह जु गर्जही। सोचत हैं वसुदेव, यमुना देखि प्रवाह अति ।।२।

ऐसा बिचारकर भगवान् का ध्यान धर यमुना में पैर ज्यों-ज्यों बढ़ाते जाते थे त्यों-त्यों नदी बढ़ती जाती थी। जब नाक तक पानी आया तब तो ये बहुत घबराये। इनको ब्याकुल जान श्रीकृष्ण ने अपना पाँव बढ़ाया और हुंकार दिया। चरण छूते ही यमुना थाह हुई। बसुदेव पार हो नन्द की पौरी जा पहुँचे। वहाँ किवाड़ खुले पाये। घुस के देखा तो सब बेसुध पड़े हैं। देवी ने ऐसी मोहनी डाली थी कि यशोदा को लड़की होने की सुध नहीं थी। बसुदेव जी ने कृष्ण को यशोदा के ढिग सुला दिया और कन्या को ले चट अपना पंथ लिया। नदी पार कर मथुरा आये। तहाँ देवकी बैठी सोचती थी। जब बसुदेव ने कन्या दे वहाँ की कुशल कही, तब वह प्रसन्न हो बोली हे स्वामी! हमें कंस अब मार ही डाले तो भी चिन्ता नहीं क्योंकि इस दुष्ट के हाथ से पुत्र तो बचा।

बसुदेवजी के आते ही दोनों ने अपनी-अपनी हथकड़ियाँ पहन लीं। कन्या रो उठी। रोने की ध्वनि सुन पहरुए जागे तो अपने-अपने शस्त्र ले-ले सावधान हो तुपक छोड़ने लगे। तिनका शब्द सुन लगे हाथी चिंघाड़ने, सिंह दहाड़ने और कुत्ते भूँकने। उसी समय अँधेरी रात के बीच रखवालों ने जाय हाथ जोड़ कंस से प्रार्थना की कि महाराज! बैरी ने जन्म लिया। यह सुन कंस मूर्छित हो गिर पड़ा।

इति श्री लल्लूलालकृते प्रेमसागरे कृष्ण जन्म कन्या ग्रहणनाम चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

अध्याय—५

बालक का जन्म सुनते ही कंस डरता काँपता उठ खड़ा हुआ। खड्ग हाथ में ले गिरता पड़ता दौड़ता धुकड़ पुकड़ करता बहिन के पास जा पहुँचा। जब उसके हाथ से लड़की छीनने लगा तब वह हाथ जोड़ बोली भैया, यह कन्या तेरी भानजी है. इसे मत मार। यह पेट पोंछनी है। मेरे जो छः बालक मरे हैं तिनका दुःख अति सताता है। बिन काज कन्या को मार क्यों पाप को बढ़ाता है। कंस बोला जीजी लड़की तुझे न दूँगा, इसे जो ब्याहेगा सो मुझे मारेगा। इतना कहकर बाहर आय ज्यों ही चाहा कि शिला के पत्थर पर पटके त्यों ही हाथ से छूट

कन्या आकाश को उड़ गई और पुकार के कह गई कि अरे कंस, मेरे पटकने से क्या हुआ, तेरा बैरी तो जन्म ले चुका अब तेरा जी न बचेगा ।

दो०—दया न आई कंस को, घड़ा पाप का फूट । पत्थर पै पटकन लग्यौ, गई हाथ से छूट ।।

यह सुन कंस पछताता हुआ वहाँ आया, जहाँ बसुदेव देवकी थे । आते ही उसने हाथ-पाँव की हथकड़ी बेड़ी काट दी और विनती कर कहने लगा कि मैंने बड़ा पाप किया जो तुम्हारे पुत्र मारे । यह कलंक कैसे छूटेगा, मेरी गति किस जन्म में होगी, देवता झूठे हुए, जिन्होंने कहा था कि देवकी के गर्भ से लड़का होगा सो यह लड़की हुई । वह भी हाथ से छूट स्वर्ग को गई । अब दया कर मेरा दोष जी में मत रखो । क्योंकि कर्म का लिखा किसी के मेटे नहीं मिटता । जो ज्ञानी हैं सो मरना जीना समान ही जानते हैं और अभिमानी मित्र शत्रु कर मानते हैं । तुम तो साधु और बड़े सत्यवादी हो जो हमारे हेतु अपने पुत्रों को दे दिया ।

ऐसे कह कंस बार-बार हाथ जोड़ने लगा । तब बसुदेवजी बोले, महाराज तुम सच कहते हो इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं । विधाता ने यही कर्म में लिखा था । यह सुन कंस प्रसन्न हो अति हित से बसुदेव देवकी को अपने घर ले आया, और भोजन करवाय बागे पहराय बड़े आदर भाव से दोनों को फेर वहीं पहुँचाया दिया और मन्त्री को बुलायके कहा कि देवी कह गई है है कि तेरा बैरी जगत में जन्मा है । इससे अब देवताओं को जहाँ पाओ तहाँ मारो क्योंकि उन्होंने बे समझे झूँठी बात कही कि देवकी के आठवें गर्भ में तेरा शत्रु होगा । मन्त्री बोला उनको मारना क्या बड़ी बात है । वे तो जन्म के ही भिखारी हैं । जब आपको देखेंगे तभी वे भाग जावेंगे, उनकी क्या सामर्थ जो तुम्हारे सन्मुख हों । ब्रह्मा तो आठ पहर ध्यान में रहता है, महादेव भांग धतूरा खाय, इन्द्र का कुछ तुम पर बस न बसाय । रहा नारायण सो संग्राम नहीं जाने लक्ष्मी के साथ रहता है । कंस बोला नारायण को कहाँ पावें और किस विधि से जीतें, सो मन्त्री ने कहा महाराज ! जो नारायण को जीतना चाहते हो तो जिनके घर में उनका निवास आठों पहर हैं, तिनही का अब विनाश करो । ब्राह्मण, वैष्णव, योगी, यती, तपस्वी, सन्यासी-वैरागी आदि जितने हरि के भक्त हैं तिनमें लड़के से ले बूढ़े तक भी जीता न रहे । यह सुन कंस ने प्रधान से कहा तुम सबको जाके मारो, आज्ञा पाकर मन्त्री अनेक राक्षसों के साथ बिदा हो नगर में गौ, ब्राह्मण, बालक, व हरि भक्तों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर मारने लगे ।

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे कंस उपद्रवकरणो नाम पंचमोऽध्यायः ।।५।।

●

अध्याय—६

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन् ! एक समय नन्द यशोदा ने पुत्र के लिए बड़ा तप किया, तहाँ श्रीनारायण ने आय बर दिया कि हम तुम्हारे यहाँ जन्म ले आवेंगे । जब भाद्रपद बदी अष्टमी बुधवार को आधी रात के समय श्री कृष्ण आये तब यशोदा ने ही पुत्र का मुख देख नन्द को बुलाय अति आनन्द माना और अपना जीवन सफल जाना । भोर होते ही उठके नन्दजी ने पण्डित और ज्योतिषियों को बुला भेजा । वे अपनी पोथी पत्रा लेके

आये, जिन्होंने शास्त्र की विधि से संवत् महीना, तिथि, दिन, नक्षत्र, योग, करण ठहराय, लग्न बिचार, मुहूर्त्त साध के कहा महाराज, शास्त्र के बिचार में ऐसा आया है कि यह लड़का दूसरा

विधाता हो सब असुरों को मार ब्रज का भार उतार गोपीनाथ कहायेगा। सारा संसार इसी का यश गावैगा। यह सुन नन्दजी ने कञ्चन के शृङ्ग, रूपे के खुर, ताँबे की पीठ की दो लाख गऊ, पाटम्बर उढ़ाय सङ्कल्प किया और अनेक दान कर ब्राह्मणों को दक्षिणा दे आशिष ले बिदा किया। तब नगर की सब मङ्गलामुखियों को बुलाया। वे आय-आय अपना गुण प्रकाश करने लगीं। बजनिये बाजे बजाने, नर्तक नाचने, गायक गाने, ढांढ़ी ढांढ़िन यश बखानने, और जितने गोकुल के गोप ग्वाल थे वे भी अपनी अपनी नारियों के सिर पर दहेड़ियाँ रखवाय भाँति-भाँति के भेष बनाये नाचते गाते नन्द को बधाई देने आये। आते ही ऐसा दधिकाँदो किया कि सारे गोकुल में दही ही दही कर दिया। जब दधिकाँदो खेल चुके तब नन्द जी ने सबको खिलाय पिलाय बागे पहिराय तिलक दे बिदा किया।

इसी रीति से कई दिन तक बधाई रही। पीछे नन्दजी से जिसने जो जो माँगा सो-सो पाया। बधाई से निश्चिन्त हो नन्दजी ने सब ग्वालों को बुलाय के कहा भाइयो! हमने सुना है कि कंस बालक पकड़ पकड़ कर मँगवाता है। न जाने कोई दुष्ट कुछ बात लगादे। इससे उचित है कि सब मिल भेंट ले चलें और बरसौड़ी दे आवें। यह बचन मान सब अपने-अपने घर से दूध दही माखन ले मथुरा आये। कंस से भेंट कर भेंट दी। कौड़ी-कौड़ी कर चुकाय विदा हो अपनी बाट ली।

ज्यों ही जमुना तीर पर आये त्यों ही समाचार सुन बसुदेव जी आ पहुँचे। नन्द जी से मिल कुशल क्षेम पूछ कहने लगे तुमसा सगा मित्र हमारा संसार में कोई नहीं क्योंकि जब हमें भारी विपत्त् भई तब गर्भवती रोहिणी तुम्हारे यहाँ भेज दी। उसके लड़का हुआ सो तुमने पाल बड़ा किया। हम तुम्हारे गुण कहाँ तक बखानें, इतना कह फिर पूछा कि कहौ रामकृष्ण और यशोदा रानी आनन्द से हैं? नन्दजी बोले आपकी कृपा से सब भले हैं और तुम्हारे पुत्र बलदेव

जी भी कुशल से हैं कि जिनके होते तुम्हारे पुण्य प्रताप से हमारे भी पुत्र हुआ। पर एक तुम्हारे ही दुख से हम दुखित हैं। बसुदेव कहने लगे कि मित्र! विधाता से कछु न बसाता है, कर्म की रेख किसी से मेंटी न जाय। इस संसार में आय दुख पीर से कौन न पछिताया ऐसा ज्ञान जनाय के कहा।

चौपाई——तुम घर जाओ वेगि आपने। कीने कंस उपद्रव घने।
वालक ढूंढ़ मँगावे नीच। भई सव तरह परजा मीच।।

तुम तो सब कोई यहाँ चले आये और राक्षस बालक ढूँढ़ते फिरते हैं। न जानिये कोई दुष्ट वहाँ जाय गोकुल में उपाधि मचावे। यह सुनते ही नन्द जी अकुला कर सबको साथ लिये सोचते बिचारते मथुरा से गोकुल को चले।

इति श्री लल्लूलालकृते प्रेमसागरे कृष्ण नन्दोत्सव नाम षष्ठोऽध्यायः।।६।।

अध्याय—७

कृष्ण द्वारा पूतना-बध

श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन्! कंस का मन्त्री तो अनेक राक्षस साथ लिये मारता ही था कि कंस ने पूतना नाम राक्षसी को यदुवंशियों के बालक मारने को कहा। यह सुन प्रसन्न हो वह दण्डवत कर चली तो अपने जी में कहने लगी——

दो०—भये पूत हैं नन्द के, सूनो गोकुल गाँउँ। छल कर अव ही आनिहौं गोपी हैके जाउँ।।

यह कह सोलह शृङ्गार बारह आभूषण कर कुच में विष लगाय मोहनी रूप बन कपट किये, कमल का फूल हाथ में लिये, बनठन के ऐसी चली कि जैसे श्रृङ्गार किये लक्ष्मी अपने पति पै जाती होय। गोकुल में पहुँच हँसती-हँसती नन्द मन्दिर बीच गई। इसे देख सब गोपियाँ मोहित हो भूली सी रहीं। यह जा यशोदा के पास बैठी और कुशल पूछ आशीष दी कि बीर तेरा कान्हा जीवे कोटि बरस। ऐसी प्रीति बढ़ाय लड़के को यशोदा के हाथ से गोद में रख

ज्यों ही दूध पिलाने लगी त्यों ही कृष्ण दोनों हाथ से छाती पकड़ मुंह में लगाय लगे प्राण समेत दूध पीने। अब तो अति ब्याकुल हो पूतना पुकारी कि यशोदा तेरा पूत मानुष नहीं है, वह यमदूत है। जेवरी जान मैंने साँप पकड़ा जो इसके हाथ से बच जीती जाऊँगी तो फिर गोकुल में कभी न आऊँगी। यों कह भाग गाँव के बाहर आई पर कृष्ण ने न छोड़ी। निदान उसका जी ले लिया। वह पछाड़ ऐसी खाय गिरी जैसे आकाश से बज्र गिरे। तिसका अति शब्द सुन रोहिणी और यशोदा रोती पीटती वहीं आईं। पूतना दो कोस में मरी पड़ी थी। उसके पीछे सब गाँव उठ धाया। देखा तो श्री कृष्ण उसकी छाती पर चढ़े दूध पी रहे हैं। झट कृष्ण को उठाय मुख चूम हृदय से लगाय घर ले गई। स्यानों को बुलाय झाड़ फूँक कराने लगीं और पूतना को देख ग्वाल खड़े हो आपस में कह रहे थे कि भाई! इसके गिरने का धमाका सुन हम ऐसे डरे हैं जो छाती अभी तक धड़कती है। न जानिये बालक की क्या गति हुई होगी। इतने में मथुरा से नन्दजी आये तो देखत क्या हैं कि एक राक्षसी मरी पड़ी है और ब्रजवासियों की भीड़ घेरे खड़ी है। पूछा यह उपाधि कैसे हुई। वे कहने लगे महाराज! पहले तो यह अति सुन्दर हो तुम्हारे घर गई और आशीष दी। इसे देख ब्रज नारी भूली रहीं और यह कृष्ण को दूध पिलाने लगी पीछे हम नहीं जानते क्या गति हुई। इतना सुन नन्दजी बोले बड़ी कुशल भई जो बालक बचा और यह गोकुल पर न गिरी नहीं तो एक भी जीता न बचता। सब इसके नीचे दब मरते। यों कह नन्दजी घर आय दान पुण्य करने लगे और ग्वालों ने झट से फावड़े कुदाल से पूतना के हाथ पाँव काट गड्ढे खोद-खोद गाड़ दिये और माँस चाम इकट्ठा कर फूँक दिया। उसके जलने से ऐसी सुगन्ध फैली कि जिसने संसार को सुगन्ध से भर दिया। यह सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से पूछा कि महाराज! वह राक्षसी महा मलीन मद्य माँस खाने वाली उसके शरीर से सुगन्ध कैसे निकली सो कृपाकर कहो। मुनि बोले राजन्! श्रीकृष्ण-चन्द्र ने दूध पी उसे मुक्ति दी इस कारण सुगन्ध निकली।

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे पूतनावधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अध्याय—८

दोहा—जेहि नछत्र मोहन भये, सो नछत्र पर्‌यौ आइ।
चारु बँधाए रीति सव, करत यशोदा माइ॥

श्री शुकदेवजी बोले कि हे महाराज परीक्षित—जब सत्ताईस दिन के हरि हुए तब नन्दजी ने ब्राह्मणों और ब्रजवासियों को न्योता भेज दिया। जब वे आये तिन्हें आदर मानकर बैठाया। फिर ब्राह्मणों को बहुत सा दान दे बिदा किया और भाइयों को बागे पहिराय षटरस भोजन कराने लगे। तिस समय यशोदा रानी परोसती थीं, रोहिणी टहल करती थी। ब्रजवासी हँस-हँस खा रहे थे। गोपियाँ गीत गा रही थीं, सब आनन्द में ऐसे मग्न थे कि कृष्ण की सुरति किसी को भी न थी और कृष्ण एक भारी छकड़े के नीचे पालने में अचेत सोये थे। इतने में भूखे हो जगे तो पाँव का अँगूठा मुँह में दे रोवन लगे, हिलक हिलक चारों ओर देखते। उसी अवसर में उड़ता हुआ एक राक्षस आ

निकला । कृष्ण को अकेला देख अपने मनमें कहने लगा कि यह तो कोई बड़ा बली उपजा है । पर आज मैं इससे पूतना का बैर लूँगा । यों मन में ठान सकट पै आन बैठा । तिसी से उसका
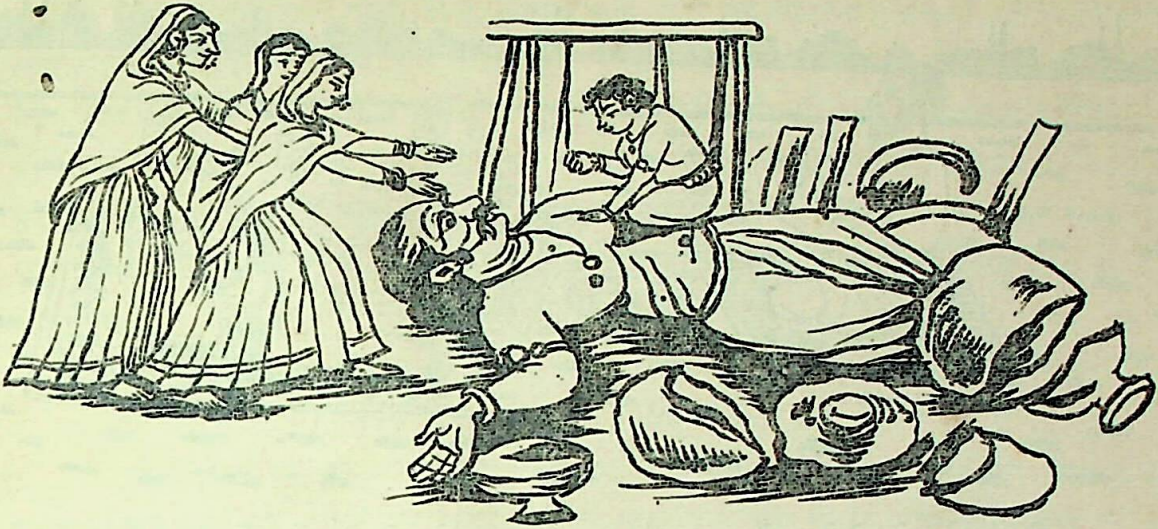
नाम सकटासुर हुआ । जब गाड़ी चरचराय कर हिली तब श्रीकृष्ण ने बिलखते-बिलखते एक ऐसी लात मारी कि वह मर गया । छकड़ा टूक-टूक हो गिरा । वहाँ जितने बासन दूध दही के थे सब फूटकर चूर हुए और गोरस की नदी बह निकली । गाड़ी के टूटने और फूटने का शब्द सुन सब गोपी ग्वाल दौड़े आये । आते ही यशोदाजी ने कृष्ण को उठाय मुँह चूम छाती से लगा लिया । यह अचरज देख सब आपस में कहने लगे आज ईश्वर ने बड़ी कृपा की जो बालक बच रहा और खाली सकट ही टूटा ।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! जब हरि पाँच महीने के हुए तब कंस ने तृणावर्त को पठाया । वह बगुला हो गोकुल में आया । नंदरानी कृष्ण को गोद में लिये आँगन के बीच में बैठी थीं कि एकाएक कन्हैया ऐसे भारी हुए कि यशोदा ने भारे बोझ के गोद से उतार दिया । इतने में ही एक ऐसी आँधी आयी कि दिन की रात हो गयी और पेड़ उखड़ उखड़ गिरने लगे । छप्पर गिरने लगे । तब व्याकुल हो यशोदाजी श्रीकृष्ण को उठाने लगीं, पर वे न उठे । ज्यों ही उनके शरीर से इनका हाथ अलग हुआ त्यों ही तृणावर्त आकाश को ले उड़ा और मन में कहने लगा कि आज इसे बिना मारे न रहूँगा । वह तो कृष्ण को लिये वहाँ यह बिचार करता था और यहाँ यशोदाजी ने जब कृष्ण को न पाया तब रो-रो कृष्ण-कृष्ण कह पुकारने लगीं । यह शब्द सुन सब गोपी ग्वाल दौड़े आये साथ ही ढूँढ़ने धाये । अँधेरे में अटकल से टटोल टटोल कर चलते थे । तिस पर ठोकर खाय गिर पड़ते थे ।

जब श्रीकृष्ण ने नन्द यशोदा सहित सब ब्रजवासी को अति दुखित देखा तब तृणावर्त को फिराय आँगन में लाय शिला पर पटका । तुरन्त उसका जीव देह से निकल सटका, आँधी थम गई, उजाला हुआ । सब भूले भटके घर आये; देखें तो राक्षस आँगन में मरा पड़ा है । कृष्ण उसकी छाती पर खेल रहे हैं । आते ही यशोदा ने उन्हें उठाय के कंठ से लगा लिया और बहुत सा दान ब्राह्मणों को दिया ।

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे संकट भंजन तृणावर्तवधो नाम अष्टमोऽध्यायः ।।८।।

अध्याय-९
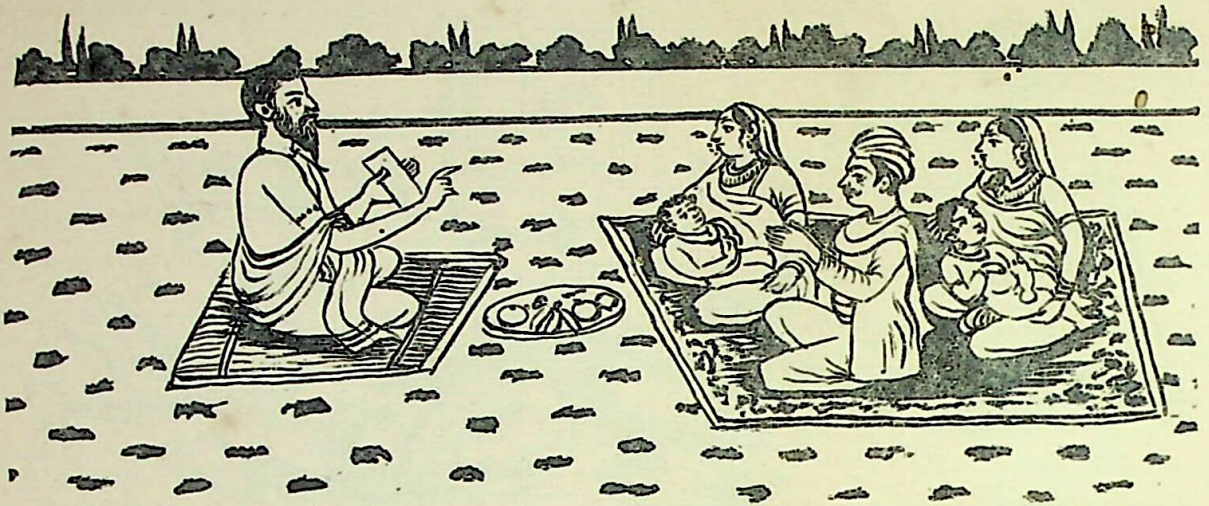
श्री शुकदेवजी बोले--हे राजन् ! एक दिन बसुदेवजी ने गर्ग मुनि को जो ज्योतिषी और यदुवंशियों के पुरोहित थे, बुलाकर कहा कि तुम गोकुल में जाओ और लड़के का नामकरण संस्कार कर आओ।

दोहा—गई रोहिणी गर्भ सों, भयो पूत है ताहि।
किती आयु कैसौ बली, कहा नाम तेहि आहि।

नन्दजी के पुत्र हुआ है सो भी तुम्हें बुला गये हैं। सुनते ही गर्ग मुनि प्रसन्न हो चले और गोकुल के निकट जा पहुँचे। उसी समय किसी ने नन्दजी से आ कहा कि यदुवंशियों के पुरोहित गर्ग मुनि जी आये हैं। यह सुन नन्दजी आनन्द से ग्वालबालों के सङ्ग भेंट ले उठ धाये और पाटम्बर के पाँवड़े डालते बाजे बजाते ले आये। पूजा कर आसन पै बैठाया। चरण धो चरणामृत ले स्त्री पुरुष हाथ जोड़ कहने लगे महाराज ! बड़े भाग्य हमारे जो आपने दर्शन दे घर पवित्र किया। तुम्हारे प्रताप से दो पुत्र हुए हैं। एक रोहिणी के एक हमारे। कृपा कर तिनका नाम धरिये। गर्ग मुनि बोले नाम रखना उचित नहीं क्यों कि यह बात फैलेगी कि गर्ग मुनि गोकुल में लड़कों का नाम धरने धाये हैं और कंस सुन पावेगा तो वह यही जानेगा कि देवकी पुत्र को बसुदेव के मित्र के यहाँ कोई पहुँचाय आया है। इसलिये गर्ग पुरोहित गया है, यह समझ बूझके मुझको पकड़ मँगावेगा और न जानिये तुम पर भी क्या उपाधि लावे; इससे तुम फैलाव मत करो, चुपचाप घर में नाम धर लो। नन्दजी बोले कि गर्ग जी ! तुमने सच कहा। इतना कह घर के भीतर ले जाय बैठाया। तब गर्ग मुनि ने नन्दजी से दोनों की जन्म तिथि और समय पूछ लग्न सोध नाम ठहराय कर कहा कि सुनो नन्दजी ! बसुदेव की रानी रोहिणी के पुत्र के तो इतने नाम होवेंगे। संघर्षण, रेवतीरमण, बलदेव, बलराम, कालिंद्री-भेदन, हलधर, और बलवीर; और कृष्ण रूप जो तुम्हारा लड़का है इसके नाम, अनगिनती हैं। यह किसी समय बसुदेव के यहाँ जन्मा इससे वासुदेव नाम हुआ। बिचार में आता है कि ये दोनों बालक तुम्हारे चारों युगों में जब जब जन्मे हैं तब तब साथ ही जन्मे हैं। नन्दजी बोले इनके गुण कहो। गर्ग मुनि ने उत्तर दिया ये दूसरे विधाता हैं; इनकी गति कुछ जानी नहीं जाती है; पर मैं यह जानता हूँ

कि कंस को मार भूमि का भार उतारेंगे। ऐसे कह गर्ग मुनि चले गये और वसुदेव से जा समाचार कहा। आगे दोनों बालक गोकुल में दिन दिन बढ़ने लगे और बाललीला कर नन्द यशोदा को सुख देने लगे। नीले, पीले, झिगुले पहने माथे पर छोटी-छोटी लटूरियाँ बिखरीहुई, ताड़ तड़के बाँधे, कठले गले में डाले, खिलौने हाथ में लिये खेलते आँगन के बीच घुटनों चल-चल गिर गिर पड़ते और तोतली-तोतली बातें कहैं। रोहिणी और यशोदा पीछे-पीछे लगी फिरें। इसीलिये कि कहीं बालक किसी से डर ठोकर खा न गिरें। जब छोटे-छोटे बछड़े और बछियों की पूँछ पकड़ पकड़ उठें और गिर-गिर पड़ें तब यशोदा और रोहिणी अति प्यार से उठाय छाती से लगाय दूध पिलायें, भाँति-भाँति के लाड़ लड़ावें। जब श्रीकृष्ण बड़े भये तो एक दिन सखानके साथ व्रज में दधि माखन की चोरी को गये।

चौपाई—सूने घर में ढूँढ़ें जाय। जो पावैं सो देंय लुटाय।
जिनको घर में सोते पावै। तिनकी ढकी दही लुरकावैं।।

जहाँ छीके पर गोरस इत्यादि रखा देखें तहाँ पीढ़ा पर पटरा, पटरे पर ऊखल धर साथियों को खड़ा कर उसके ऊपर चढ़ उतार लें, कुछ खावें कुछ लुटावें। ऐसे गोपियोंके घर घर नित चोरी कर आवें। एक दिन सबने मता किया और गृह में मोहन को आने दिया। ज्यों घर भीतर बैठे, चाहा कि दही, माखन चुरावें, त्योंही गोपियों ने जाय पकड़ कर कहा, और दिन आते थे निशि भोर। अब कहाँ जाओगे माखन चोर। यों कह जब सब गोपी मिल कन्हैया को पकड़ कर यशोदा के पास उलाहना देने चलीं तब श्री कृष्ण ने ऐसा छल किया कि उसके लड़के का हाथ उसे पकड़ा दिया और आपने दौड़कर अपने ग्वालबालों का संग किया। वे ग्वालिनें चल दीं और नन्दरानी के निकट आय पावों पड़ बोलीं कि जो तुम बुरा न मानो तो हम कुछ कहें, जैसी कुछ उपाधि कृष्ण ने ठानी है।

दोहा—दूध दही माखन मही, बचै नहीं व्रज माँझ।
ऐसी चोरी करत हैं, फिरत भोर अरु साँझ।।

जहाँ कहीं धरा ढका पाते हैं तहाँ निधड़क उठा लाते हैं। कुछ खाते हैं कुछ गिराते हैं, और जो कोई उनके मुख में दही लगा बतावे तासों उलट कर कहते हैं कि तूने ही तो लगाया है। इस भाँति नित नई चोरी कर आते आज हमने पकड़ पाया सो तुमको दिखाने लाई हैं। यशोदा बोली वीर! तू किसका लड़का पकड़ लाई, कल से तो वह बाहर नहीं निकला मेरा कुँवर कन्हाई! ऐसे ही बोलती हो। यह सुन और अपना बालक हाथ में देख हँसकर लजाय रही। तब यशोदाजी ने कृष्ण को बुलाय के कहा पुत्र! तुम किसी के यहाँ मत जाओ।

चौपाई—सुनके कान्हा कहत तुतलाय। मत मैया तू इन्हें पतियाय।
झूँठीं गोपी झूँठी बोलें। मेरे पीछे लागी डोलें।।

कभी दोहनी कभी बछड़ा पकड़ाती है, कभी घरकी टहल करातीहैं। मुझे द्वारे रखवाली बैठाय अपने काज को जातीं हैं। फिर, झूँठ-झूँठ आय तुम से बातें लगाती हैं। यों सुन गोपी हरि मुख देख-देख मुसकरा के चली गयीं। आगे एक दिन कृष्ण बलराम सखाओं के संग रेत में खेलते थे कि कान्हा ने मिट्टी खाई तो एक सखा ने यशोदा से जा लगाई। वह क्रोध कर हाथ में छड़ी ले आईं, माँ को रिस भरी आती देख मुँह पोंछकर डर कर खड़े हो रहे। उन्होंने जाते

ही कहा क्यों रे ! तूने मिट्टी क्यों खाई ? कृष्ण डर से काँपते बोले माता ! तुम से किसने कहा, वे बोलीं तेरे सखा ने । तब मोहन ने कोपकर सखा से पूछा क्यों रे मैंने माटी कब खाई ? वह भय खाकर बोला भैया ! मैं तेरी बात कुछ नहीं जानता क्या कहूँ । ज्योंही कान्ह सखा से बतराने लगे त्यों ही यशोदा ने उन्हें जा पकड़ा। तब कृष्ण कहने लगे मैया तू मत रिसाय, कहीं मनुष्य भी मिट्टी खाते हैं । वह बोली मैं तेरी अटपटी बात नहीं सुनती । जो तू सच्चा है तो अपना मुख दिखा । ज्यों ही कृष्ण ने मुख खोला त्यों ही उसमें तीन लोक दृष्टि आये । तब यशोदा को ज्ञान हुआ तो मन में कहने लगी कि मैं बड़ी मूर्खा हूँ, जो त्रिलोकीनाथ को अपना सुत मानती हूँ ।

इतनी कथा कह श्री शुकदेवजी राजा परीक्षित से बोले हे राजन् ! जब नन्दरानी ने ऐसा जाना तब हरि ने जगत मोहनी माया फैलाई, तो इतने में मोहन को यशोदा प्यार कर कण्ठ लगाय घर ले आईं !

इति श्री लल्लूलाल कृते प्रेमसागरे विश्वदर्शन नाम नवमो अध्यायः ।।९।।

अध्याय–१०
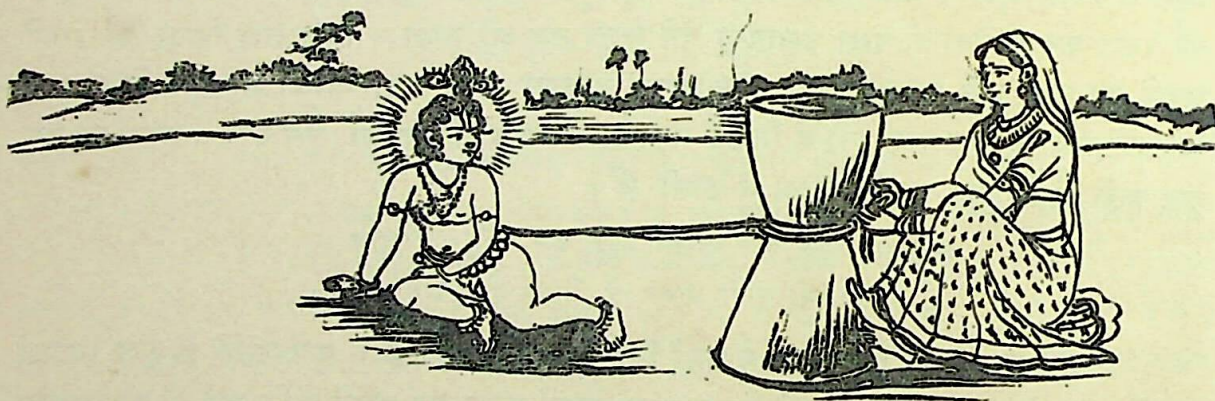
एक दिन दही मथने की बिरियाँ जान भोर ही नन्दरानी उठीं और सब गोपियों को जाय बुलाया । वे आय झाड़ बुहार लीप पोत अपनी-अपनी मथनियाँ ले ले दधि मथने लगीं । तहीं नन्दमहरि भी एक बड़ा-सा कोरा चरुआ ले इडुए पर रख चौकी बिछा नेती और रई मँगवा टटकी-टटकी दहेड़ियां बाँछ बाँछ राम कृष्ण के लिये बिलोवन बैठीं । तिस समय नन्द के घर ऐसा शब्द दही मथने का हो रहा था कि जैसे मेघ गरजता हो । इतने में श्रीकृष्ण जागे और रो रो कर मैया मैया कह कर पुकारा, पर किसी ने नहीं सुना । तब आप ही यशोदा के निकट आये और आँखें डबडबाय अनमने हो सिसक सिसक तुतलाय तुतलाय कहने लगे कि माँ तुझे कई बेर बुलाया पर मुझे कलेवा देने न आई । तेरा काज अब तक नहीं निबटा । इतना कह मचल पड़े और लगे चरुये से निकाल दोनों हाथ डाल माखन काढ़-काढ़ फेंकने अङ्ग-अङ्ग लथेड़ने और पाँव पटक-पटक आँचल खेंच-खेंच रोने । तब नन्दरानी घबराय

झुझलाय के बोलीं बेटा ! यह क्या चाल निकाली ।

चौपाई—चल उठ तुझे कलेवा देऊँ। कृष्ण कहैं अव मैं नहि लेऊँ।
पहले यों नहिं दीनों माय। जव तो मेरी लेय वलाय ।।

निदान यशोदा ने फुसलाया। प्यार से मुँह चूम गोद में उठा लिया और दधि माखन रोटी खाने को दिया। हरि हँस-हँस खाते थे, नन्दमहरि आँचल की ओट किये खिला रही थी। इसलिये कि किसी की दीठि (नजर) न लगे, इसी बीच एक गोपी ने आकर कहा कि तुम यहाँ बैठी हो वहाँ चूल्हे पर से दूध उफन गया। यह सुनते ही झट कृष्ण को गोद से उतार उठ धाई और जाके दूध बचाया। वहाँ कान्हा दही मही के भाजन फोड़ रई तोड़ माखन भरी कमोरी ले ग्वालों में दौड़ आये और एक ऊखल ओंधा धरा पाया तिस पर जा बैठे और चारों ओर सखाओं को बैठाय लगे आपस में हँस-हँस बाँट-बाँट माखन खाने। इतने में यशोदा दूध उतार आय देखें आँगन और तिबारे में दही मही की कीच हो रही है। तब तो सोच समझ हाथ में छड़ी ले निकलीं और ढूँढ़ती ढूँढ़ती वहाँ आईं जहाँ श्रीकृष्ण मण्डली बनाय माखन खाय-खिलाय रहे थे। जाते ही पीछे से घेरा तो हरि माँ को देखते ही रोकर हा हा खाय लगे कहने कि गोरस किसने लुटाया। मैं नहीं जानूँ मुझे छोड़ दे। ऐसे दीन बचन सुन यशोदा हँसकर हाथ से छड़ी गेर और आनन्द में मग्न हो कंठ लगाय श्रीकृष्ण को ऊखल से बाँधने लगीं। तब श्रीकृष्ण ने ऐसा किया कि जिस रस्सी से बाँधे वही छोटी हो जाय। यशोदा ने सारे घर की रस्सी मँगवाई तो भी श्रीकृष्ण बाँधे न गये। निदान माँ को दुखित जान आप ही बँधाई में आ गये। नन्दरानी उन्हें बाँध गोपियों से न खोलने की सोंह ले फिर घर की टहल करने लगीं।

इति श्री लल्लूलाल कृते प्रेमसागरे दाम-बन्धन नाम दशमोऽध्यायः ।।११।।

अध्याय–११

श्री शुकदेवजी बोले हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्र को बँधे-बँधे पूर्व जन्म की कुबेर के बेटों की नारद-शाप की याद आई! यह सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव जी से पूछा महाराज

कुबेर के पुत्रों को नारद मुनि ने कैसे शाप दिया सो समझा के कहो । शुकदेव मुनि—बोले नल कूबर नाम कुबेरके दो लड़के कैलाश में रहते थे । सो शिव की अति सेवा कर धनवान हुए और स्त्रियों को साथ लेके बन बिहार को गये, वहाँ जाय मद्य पी मदमाते भये । रानियों समेत नंगे ही गङ्गा में नहाने लगे और गलबहियाँ डाल-डाल अनेक-अनेक भाँति की किलोलें करने लगे कि इतने में वहाँ नारद मुनि आ निकले । उन्हें देखते ही रानियाँ निकल कपड़े पहनने लगीं और ये मतवारे वहीं खड़े रहे । इनकी दशा देख मन में नारदजी कहने लगे कि इनको धन का गर्व हुआ है इसीसे मदमाते हो काम क्रोध को सुख कर मानते हैं । निर्धन मनुष्य को अहङ्कार नहीं होता और धनवान को धर्म-अधर्म का विचार कहाँ है। ये मूरख, झूँठी देह से नेह कर भूले, सम्पत्ति व कुटुम्ब देख के भूले हैं और साधुजन धनमद मनमें न आने दे, सम्पत्ति बिपत्ति एक सम माने। इतना कह नारद मुनि ने इन्हें शाप दिया कि इस पाप से तुम गोकुल में जा वृक्ष हो जाओ । जब श्रीकृष्ण अवतार लेंगे तब तुम्हें मुक्ति देंगे । ऐसा नारद मुनि ने शाप दिया । उसी से वे गोकुल में आ वृक्ष हुए । तब उनका नाम यमलार्जुन हुआ । इतनी कथा कह श्री शुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! इस बात की सुरति कर श्रीकृष्ण ओखली को घसीटकर वहाँ ले गये जहाँ यमलार्जुन पेड़ थे । जाते ही उन दोनों तरुवरों के बीच, ऊखल को अड़ा, बल से एक झटका मारा कि वे दोनों पेड़ उखड़ पड़े और उनसे दो पुरुष अति सुन्दर निकल हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगे । तब श्रीकृष्ण बोले सुनो ! नारद मुनि ने तुम पर बड़ी दया की जो गोकुल में मुक्ति दी । उनकी कृपा से तुमने मुझे पाया । अब वर माँगो जो तुम्हारे मन में हो । यमलार्जुन बोले हे दीनानाथ ! यह नारद मुनि ही की कृपा है जो आपके चरण परसे और दर्शन किये । अब हमें किसी वस्तु की इच्छा नहीं। पर इतना ही वर दीजै जो सदा तुम्हारी भक्ति हमारे हृदय में निवास करती रहे । सो श्रीकृष्णचन्द्र ने तिन्हे बर दे विदा किया ।

इति श्रीलल्लूलाल कृते प्रेमसागरे यमलार्जुनउद्धार नाम एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अध्याय—१२

श्री शुकदेव मुनि बोले हे राजन् ! जब वे दोनों तरु गिरे तब उनका शब्द सुन नन्द-रानी घबरा कर दौड़ी आईं जहाँ कृष्ण को ऊखल से बाँध गईं थी। उनके पीछे सब गोपी ग्वाल भी आये । जब श्रीकृष्ण को वहाँ न पाया तब ब्याकुल हो यशोदा मोहन-मोहन पुकारतीं और कहतीं चलीं कहाँ गया मोहन यहीं बँधा था । भाई कहीं किसी ने देखा मेरा कुँवर कन्हाई ? इतने में यों ही आ एक बोली ब्रजरानी, कि जहाँ दो पेड़ गिरे वहीं मुरारी, खेल रहे हैं । यह सुन जब आगे जाय देखे तों सचमुच ही वृक्ष उखड़े हैं और कृष्ण तिनके बीच ओखली से बँधे सिकुड़े बैठे हैं । जाते ही नन्दमहरि ने ऊखल से कान्ह को खोल रो के गले लगा लिया । सब गोपियाँ डरा जान लगीं चुटकी ताली दे-दे हँसाने । तब नन्द उपनन्द आपस में कहने लगे कि युगानयुग के रूख जमे हुए कैसे उखड़ पड़े । यह बड़ा अचम्भा जी में आता है कुछ भेद इनका समझा नहीं जाता है । इतना सुनके एक लड़के ने पेड़ गिरने का ब्यौरा ज्यों का त्यों कहा पर किसी के जी में न आया । एक गोपी बोली कि ये बालक इस भेद को क्या समझे । दूसरी ने

कहा कदाचित यही हो हरि की गति कौन जाने । ऐसी अनेक-अनेक भाँति की बातें कर श्रीकृष्ण को ले सब आनन्द से गोकुल में आयीं । तब नन्दजी ने बहुत सा दान पुण्य किया । जब कृष्ण का
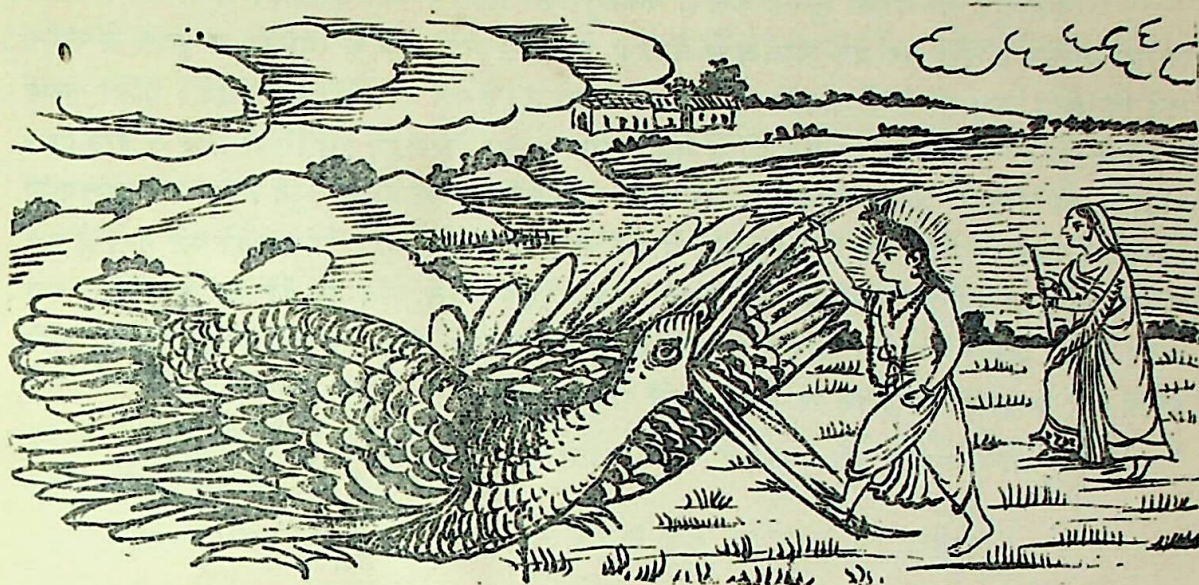
जन्म दिन आया तो यशोदा रानी ने कुटुम्बको न्योता दे बुलाया और मङ्गलाचार करके वर्षगाँठ बाँधी । जब सब जेंवन बैठे तब नन्दराय बोले सुनो भैया ! अब इस गोकुल में रहना कैसे बने । दिन दिन होने लगे उपद्रव घने । चलो कहीं ऐसे ठौर जावें जहाँ तृण जल का सुख पावें । उपनन्द बोले बृन्दाबन जाय बसिये तो आनन्द से रहिये । यह वचन सुन नन्दजी ने सबको खिलाय पिलाय पान दे बैठाया । त्यों ही एक ज्योतिषी को बुलाय यात्रा का मुहूर्त्त पूछा । उसने विचार के कहा कि इस दिशा की यात्रा को कल का दिन अति उत्तम है । बामयोगिनी, पीछे दिशाशूल और सन्मुख चन्द्रमा है । आप निःसन्देह भोर ही प्रस्थान कीजै । यह सुन उस समय तो गोपी ग्वाल अपने अपने घर गये और सबेरे ही उठ अपनी-अपनी वस्तुएँ गाड़ी पर लाद आ इकट्ठे भये । कुटुम्ब समेत नन्दजी भी साथ हो लिये और चले चले उधर साँझ समय जा पहुँचे । बृन्दादेवी को मनाय वहाँ सुख चैन से रहने लगे । जब श्रीकृष्ण पाँच वर्ष के हुए तब माँ से कहने लगे, कि माँ मैं बछड़े चरावने जाऊँगा । तू बलदाऊ से कह दे कि मुझे बन में अकेला न छोड़े । वह बोली पूत, बछड़े चरावने वाले बहुत हैं दास तुम्हारे, तुम मत पलक ओट हो मेरे नयनों के आगे से प्यारे । कान्हा बोले कि मैं बन में खेलने जाऊँगा तो खाने को खाऊँगा, नहीं तो नहीं । यह सुन यशोदा ने ग्वालबालों को बुलाय कृष्ण बलराम को सौंप कर कहा कि तुम बछड़े चरावने दूर मत जइयो, और साँझ होते ही दोनों को सङ्ग लेकर आइयो । बन में अकेले इन्हें मत छोड़ियो । साथ रहियो । तुम इनके रखवाले हो । ऐसे कह कलेवा दे रामकृष्ण को उनके सङ्ग कर दिया । वे जाय जमुना के तीर बछड़े चराने लगे और ग्वालबालों में खेलने लगे कि इतने में कंस का पठाया वत्सासुर आया । उसे देखते ही सब बछड़े डर कर जिधर तिधर भागे । तब श्रीकृष्ण जी ने बलदेवजी को सैन से चिताया कि भाई यह कोई राक्षस आया । ज्यों ही आगे चरता वह घात करनेको निकट पहुँचा

त्यों ही श्रीकृष्णने पिछले पाँव से पकड़ फिराय कर ऐसा पटका कि उसका जी घट से निकल सटका ।

वत्सासुर का मरना सुनके कंस ने वकासुर को भेजा । वह वृन्दावन आके अपनी घात लगाय यमुना के तीर पर बक समाज में बैठा । उसे देख मारे भय के ग्वालबाल कृष्ण से कहने लगे कि भैया! यह तो कोई राक्षस बगुला बन आया है। इसके हाथ से कैसे बचेंगे। ये तो कृष्ण से यों कहते ही थे और उधर वह जी में यह बिचारता था कि आज इसे बिना मारे न जाऊँगा। इतने में जो श्रीकृष्ण उसके निकट गये तो उसने उन्हें चोंच में उठाय मुँह मूँद लिया । ग्वालबाल ब्याकुल हो चारों ओर देख रो-रो पुकार-पुकार लगे कहने हाय यहाँ तो हलधर भी नहीं हैं हम यशोदा से क्या कहेंगे । इनको अति दुखित देख श्रीकृष्ण ऐसे ताते हुए कि वह मुख में न रख सका । जो उसने उन्हें उगला तौ उसकी चोंच पकड़ और पाँव तले दबाय चीर डाला और बछड़े घेर सखाओं को साथ ले हँसते-हँसते घर आये ।

इति श्री लल्लूलाल कृते प्रेमसागरे वकासुर वधो नाम द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

•

अध्याय–१३
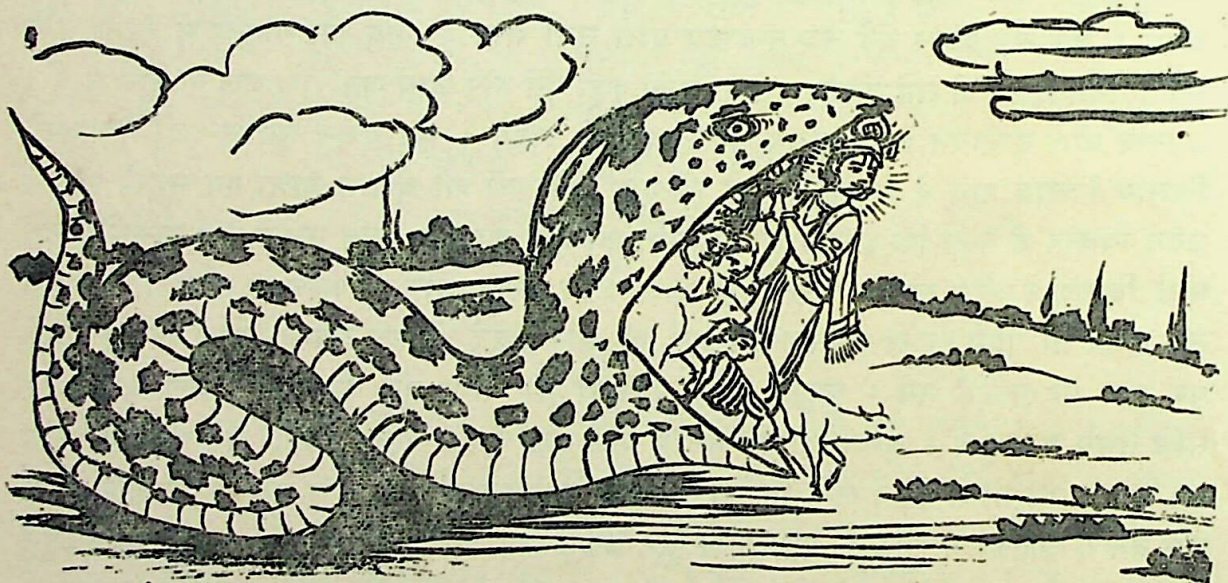
श्री शुकदेव मुनि बोले सुनो महाराज! प्रातः होते ही एक दिन श्री कृष्ण बछड़े चरावने बनको चले । तिनके साथ सब ग्वालबाल भी अपने अपने घर से छाक ले ले संग हो लिये और गोचर भूमि में जाय, छाक धर, बछड़े चरने को छोड़, लगे खरी गेरू तन से चित्र-विचित्र लगाने व बन के फल-फूलों के गहने बनाय-बनाय पहन-पहन खेलने, पशु पक्षियों की बोली आदि से भाँति भाँति के कुतूहल कर नाचने । इतने में कंस का पठाया अघासुर नाम राक्षस आया । सो अति बड़ा अजगर हो मुँह पसार बैठा । सब सखाओं समेत श्रीकृष्ण भी खेलते-खेलते वहाँ जा निकले जहाँ वह घात लगाये बैठा था । दूर से उसे देख ग्वाल बाल आपस में कहने

लगे कि भाई ! यह तो कोई पहाड़ है कि जिसकी कन्दरा इतनी बड़ी है । ऐसे कहते और बछड़ा चराते उसके पास पहुँचे । तब एक लड़का उसका मुख देख बोला भाई ! यह कोई अति भयावनी गुफा है । इसके भीतर न जावेंगे । हमें देखते ही भय लगता है । फिर तोष नाम सखा बोला चलो इसमें धँस चलें, कृष्ण के साथ रहते हम क्यों डरें । जो कोई असुर होगा तो बकासुर की भाँति मारा जायगा ।

यों सब सखा खड़े बात कहते ही थे कि उसने ऐसी लम्बी साँस खेंची कि बछड़ा समेत सब ग्वाल बाल उड़के उसके मुख में जा पड़े । विष भरी ताती भाप जो लगी तो लगे व्याकुल हो बछड़े रँभाने और सखा पुकारने कि कृष्ण प्यारे बेग सुध लो नहीं तो जले मरते हैं । उनकी पुकार सुनते ही आतुर हो कृष्ण उसके मुख में आ पड़ गये । उसने प्रसन्न हो मुँह-मूँद लिया । तब श्रीकृष्ण ने अपना शरीर इतना बढ़ाया कि उसका पेट फट गया । सब बछरू और ग्वाल बाल निकल पड़े । तिस समय आनन्द कर देवताओं ने फूल और अमृत बरसाय सबकी तपन हर ली । सब ग्वालबाल श्रीकृष्णचन्द्र से कहने लगे कि भैया ! इस असुर को मार आज तूने भले बचाये नहीं तो सब मर चुके थे ।

इति श्री लल्लूलाल कृते प्रेमसागरे अघासुरवधो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

अध्याय-१४

श्री शुकदेव मुनि बोले हे राजन् ! ऐसे अघासुर को मार श्री कृष्णचन्द्र ने फेर जाय कदम्ब की छाँह में बछड़े घेर खड़े हो वंशी बजाय सब ग्वालबालों को बुलाय कर कहा भैया ! यह भली ठौर है इसे छोड़ आगे कहाँ जायँ । बैठो यहीं छाक खायँ । सो सुनते ही उन्होंने बछड़े तो चरने को हाँक दिये और आक ढाक बड़ कदम्ब कमल के पात लाय, पत्तलें दोने बनाय झाड़ बुहार के श्रीकृष्ण के चारों ओर पाँति की भाँति बैठ गये और अपनी-अपनी छाकें खोल लगे

आपसमें परोसने। जब परोस चुके तब श्रीकृष्णचन्द्र ने सब के बीच खड़े हो पहले आप कौर उठाय सबको खाने की आज्ञा दी। वे खाने लगे। सिर पर मोर मुकुट धरे, बन माला गले में पहने, लकुटी लिए, त्रिभङ्गी छबि किये, पीताम्बर पहने, पीतपट ओढ़े, हँस हँस श्रीकृष्ण भी अपनी छाक में से सबको खिलाते थे और आप एक एक के पनबारे से उठाय उठाय चख चख मीठे तीखे चरपरे का स्वाद कहते जाते थे। वे उस मण्डली में ऐसे सुहावने लगते थे कि जैसे कि तारों में चन्द्रमा। तिस समय ब्रह्मादि सब देवता अपने अपने बिमानों में बैठ आकाश से ग्वाल मण्डली का सुख देखते थे। इतने में ब्रह्मा माया से मोहित हो आय सब बछड़े चुराय ले गये। वहाँ ग्वालबालों ने खाते-खाते चिन्ता कर श्रीकृष्ण से कहा भैया! हम तो निश्चन्ताई से बैठे खाय रहे हैं, न जानें बछड़े कहाँ निकल गए होयँगे।

दोहा--तव ग्वालन सों कहत कन्हाई। तुम सव जेंवत रहियो भाई।
जनि कोउ उठै करै औसेर। सवन के वछरे ल्याऊँ घेर।।

ऐसे कह कितनी एक दूर बन में जाय तब जाना कि यहाँ से बछड़े ब्रह्मा ले गया, तब श्रीकृष्ण वैसे ही बछड़े बनाय लाए। यहाँ आय देखें तो ग्वाल बालों को भी उठाय ले गया। फिर उन्होंने जैसे थे तैसे ही वे भी बनाये और साँझ हुई जान सब को साथ ले वृन्दावन आये। सब ग्वालबाल अपने-अपने घर गए, पर किसी ने यह भेद न जाना कि ये हमारे बालक और बछड़े नहीं हैं, वरन और हैं। दिन-दिन उनसे माया बढ़ती चली गयी।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले महाराज! वही ब्रह्मा ग्वालबाल बछड़ों को ले जाय एक पर्वत की कन्दरा में भर मुँह पर पत्थर की शिला धर भूल गया, श्री कृष्णचन्द्र नित नई लीला करते थे। इसमें एक वर्ष बीत गया। तब ब्रह्मा को सुधि हुई तो मनमें कहने लगे कि मेरा तो यहाँ एक पल भी न हुआ पर नरलोक का तो एक वर्ष हो गया। इससे अब चलकर देखना चाहिए कि ब्रज में ग्वाल वालों की बछड़ों बिना क्या गति भई। यह विचार करके उठकर वहाँ आया जहाँ कन्दरा में सबको मूँद गया था। शिला उठाय देखे तो लड़के और बछड़े घोर निन्द्रा में सोए पड़े हैं, वहाँ से चल वृन्दावन में आया। बालक और बछड़े सब ज्यों के त्यों देख अचम्भे में हो कहने लगा कैसे ग्वाल बछड़े यहाँ आये। कैसे कृष्ण नये उपजाये। इतना कह फिर कन्दरा को देखने गया। जितने वह वहाँ से देखकर आवे तितने बीच यहाँ कृष्ण ने ऐसी माया करी कि जितने ग्वालबाल और बछड़े थे सब चतुर्भुज हो गये और एक एक के आगे ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र हाथ जोड़े खड़े थे।

दोहा--देखि विरंचि चित्र सों भयो। भूल्यो ग्यान ध्यान सव गयो।
जनु पापाण देवि चौमुखी। भई भक्ति पूजा विन देखी।

डर कर नयन मूँद लगा थर-थर काँपने। जब अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र जी ने जाना कि ब्रह्मा अति ब्याकुल है, तब सब का अंश हर लिया और आप अकेले रह गए। ऐसे हो गये कि जैसे भिन्न-भिन्न बादल एक हो जायँ।

इति श्री लल्लूलालकृते प्रेमसागरे ब्रह्मा वत्सहरणो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

अध्याय-१५

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब श्रीकृष्ण ने अपनी माया उठा ली तब ब्रह्मा को अपने शरीर का ज्ञान हुआ । ध्यान कर भगवान् के पास आ गिड़गिड़ाया पाँवों पड़ बिनती कर हाँथ बाँध खड़ा हो विनय करने लगा कि हे नाथ ! तुमने बड़ी कृपा करी जो मेरा गर्व दूर किया। इसी से मैं अन्धा हो रहा था। ऐसी बुद्धि किसकी है जो बिना तुम्हारी दया के तुम्हारे चरित्रों को जाने । तुम्हारी माया ने सब मोहे हैं। ऐसा कौन है जो तुम्हें मोहे । तुम सब के कर्ता हो । तुम्हारे रोम रोम में मुझ से अनेक ब्रह्मा पड़े हैं, मैं किस गिनती में हूं दीनदयाल ! अब दया कर क्षमा कीजे मेरा दोष चित्त में न दीजै :

दो०—वृन्दावन सौ वन नहीं, नन्द गाँव सौ गाँव ।
वंशीवट सौ वट नहीं, कृष्ण नाम सौ नाम ।।
वृन्दावन सम लोक ना, किन्हूँ लोक माँ और ।
राधेवर खेलैं सदा, अति छवि से ता ठौर ।।२।।

इतना सुन श्रीकृष्णचन्द्र मुस्कराए । तब ब्रह्मा ने सब ग्वालबाल और बछड़े सोते ला दिये और लज्जित हो अपने स्थान को गये । जैसे मण्डली आगे थी तैसी ही बन गई । वर्ष दिन बीता सो किसी ने न जाना। जो ग्वाल बालों की नींद गई तो श्रीकृष्ण बछड़े घेर लाये। तब तिन से लड़के बोले भैया तू बछड़े बेग ले आया हम भोजन करने भी न पाये ।

चौ०—सुनत वचन हँस कहत विहारी, मोको चिन्ता भई तिहारी ।
निकट चरत इकठौरें पाये, अव घर चलौ भोर के आये ।

ऐसे आपस में बतराय बछरुओं को साथ ले सब हँसते खेलते अपने घर आये ।

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे ब्रह्मास्तुतिकरणो नाम पंचदशोऽध्यायः ।।१५।।

अध्याय—१६

श्री शुकदेवजी बोले हे महाराज ! जब श्रीकृष्ण गौएँ चराते-चराते आठ वर्ष के हुए तब वे मगन हो एक दिन ग्वालबालों समेत गाय लिये बन में पहुँचे । वहाँ बन की छबि देख श्रीकृष्ण बलराम जी से कहने लगे दाऊ, यह तो अति मन भावनी सुहावनी ठौर है । कैसे वृक्ष झुक रहे हैं और भाँति-भाँति के पशु पक्षी कलोल करते हैं । ऐसे कहकर ऊँचे टीले पर चढ़े और दुपट्टा फिराया । कारी, गोरी, धूमरी, धौरी, भूरी, नीली कहकर पुकारने लगे । सुनते ही सब गायें रंभाती, दौड़ी आयीं । तिस समय ऐसी शोभा हो रही थी कि जैसे चहुँ ओर से अनेक वर्ण की घटा घिर आई होय । फिर श्रीकृष्णचन्द्र गौ चराने को हाँक भाई के साथ छाक खाय कदम्बकी छाँह में एक सखा की जाँघ पर शिर धर सो गये । जो जागे तो बलरामजी से कहा——

चौपाई——दाऊ सुनो खेल यह करें । न्यारा कटक बाँध के लरें ।।

इतनी कह आधी-आधी गायें और ग्वाल बाँट अपने फल फूल तोड़ झोलियों में भर-भर लगे तुरही, भेरी, भोंपू, ढप, ढोल, दमामे, सींग मुख से ही बजाय बजाय लड़ने और मार मार पुकारने । ऐसे कितनी एक बेर तक लड़े, फिर अपनी टोली निराली निराली ले गायें चरावने लगे । इस बीच बलदेव जी से किसी सखा ने कहा कि महाराज ! यहाँ थोड़ी ही दूर पर एक ताल बन है जिसमें अमृत समान फल लगे हैं । वहाँ गधे के रूप में एक राक्षस रखवाली करता है । यह सुनते ही बलरामजी ग्वालों समेत बन में गये और लगे ईंट पत्थर ढेला लाठियाँ मार-मार फल झाड़ने । तिसका शब्द सुनकर धेनुका नाम खर रेंकता आया और उसने आते ही फिर कर बलदेव जीको छाती में एक दुलत्ती मारी । तब उन्होंने उसे उठाय करदे पटका । फिर वह लोट पोट के उठा और धरती खूँद खूँद कान दबाय हट हट दुलत्तियाँ झाड़ने लगा । इस तरह बड़ी देर तक लड़ता रहा । निदान बलराम जी ने उसकी दोनों पिछली टाँगें पकड़

फिराय कर एक ऊँचे पेड़ पर ऐसा फेंका कि गिरते ही वह मर गया और उसके साथ वह रूख भी टूट पड़ा। दोनों के गिरने से अति भारी शब्द हुआ और सारे बन के वृक्ष हिल उठे।

चौपाई—देखि दूर से कहत मुरारी। हाल्यों रूख शब्द भयौ भारी।
तबहिं सखा हलधर के आये। चलहु कृष्ण तुम वेगि बुलाये।।
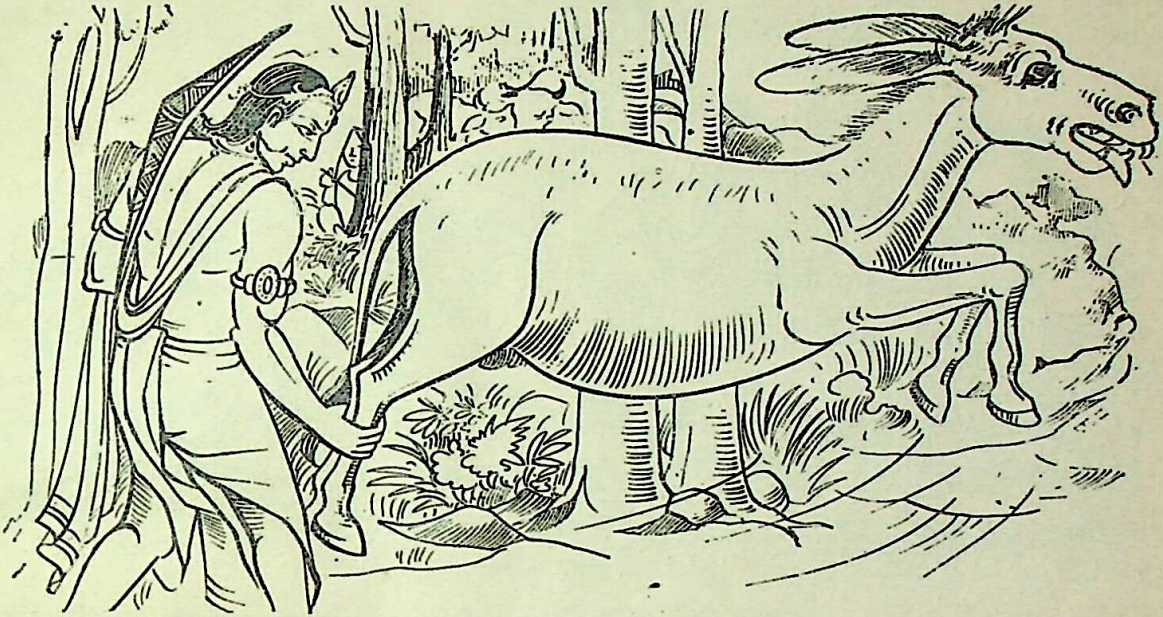
एक असुर मारा है बलराम ! सो पड़ा है वाही ठाम ! इतनी बात के सुनते ही कृष्ण भी बलरामजी के पास पहुँचे। तब धेनुका के साथी जितने राक्षस थे सो सब चढ़ आये। तिन्हें श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सहज ही में मार गिराया। तब तो सब ग्वालबालों ने प्रसन्न हो निधड़क फल तोड़, फूल तोड़ मन मानती झोलियाँ भर लीं और गायें घेर श्रीकृष्ण जी ने बलराम जी से कहा महाराज ! बड़ी देर से आये हैं अब घर को चलिये। इतना बचन सुनते ही दोनों भाई गायें लिये ग्वालबालों समेत हँसते-खेलते साँझ को घर आये और जो फल लाये थे सो सारे वृन्दावन में बँटवाये। सब को बिदा दे आप सोये। फिर तड़के उठते ही श्रीकृष्ण ग्वालबालों को बुलाय कलेऊ कर गायें ले बन को गये और गौ चराते कालीदह पै जा पहुँचे। यहाँ ग्वालों ने गायों को पानी पिलाया और आप भी पिया। जो जल पी वहाँ से उठे तो गायों समेत मारे विष के सब लोट गये तब श्रीकृष्णचन्द्र ने सबों को जिलाया।

इति श्री लल्लूलाल कृते प्रेमसागरे धनुकासुर वधो नाम षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

अध्याय-१७

श्रीशुकदेवजी बोले महाराज ! ऐसे सबन की रक्षा कर श्रीकृष्ण ग्वालबालों के साथ गेंद खेलने लगे, और जहाँ कालिया नाग था तहाँ चार कोस तक यमुना का जल उसके विषसे ऐसा खौलता था कि कोई पशु पक्षी तहाँ न जा सकता और जो भूल कर जाता सो लपट

से झुलस दह में गिर पड़ता और तीर पर कोई रूख भी न उपजता। एक अविनाशी कदम्ब तट पर था सो उस पर एक समय अमृत चोंच में लिये गरुड़ आ बैठा था उसके मुख से एक बूंद अमृत की उस पर गिर पड़ी थी इसलिए वह रूख बच रहा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा महाराज! श्रीकृष्ण-चन्द्रजी कालिया का मारना जी में ठान गेंद खेलते-खेलते कदम्ब पर जा चढ़े और नीचे से सखाने गेंद चलाई तो यमुना में गिरी। उसके साथ श्रीकृष्ण भी कूदे। इतने में कूदने का शब्द कान से सुनकर वह कालिया विष उगलने लगा और अग्नि सम फुङ्कार मार-मार कहने लगा कि ऐसा कौन है जो अब लग दह में जीता है। कहीं अक्षय वृक्ष तो मेरा तेज न सहकर टूट पड़ा कि कोई बड़ा पशु पक्षी आया है जो अबतक जल में आहट होती है। यों कह कर वह एक सौ दस फणों से विष उगलने लगा और श्रीकृष्ण पैरते फिरते थे। तिस समय सखा रो-रो हाथ पसार पुकारते थे। गायें मुँह बाये चारों ओर रँभाती हूकती फिरती थीं। ग्वाल-बाल न्यारे ही कहते थे श्याम बेग निकल आइये नहीं तो तुम बिन घर जाय हम क्या उत्तर देंगे। ये तो यहाँ दुखित हो यों कह रहे थे। इतने में किसी ने वृन्दावन में जा सुनाया कि श्रीकृष्ण कालीदह में कूद पड़े। यह सुन रोहिणी यशोदा और नन्द गोपी-गोप समेत रोते-पीटते उठ धाये और गिरते पड़ते कालीदह तट पर आये। तहाँ श्रीकृष्ण को न देख ब्याकुल हो नन्द-रानी दौड़ कर पानी में गिरने चलीं तब गोपियों ने बीच ही में हाथ पकड़ा और ग्वालों ने नन्द जी को थाम ऐसे समझा कर कहा——

चौपाई——छांड़ि महावन या वन आये। तौहू दैत्यन अधिक सताये।
बहुत कुशल असुरन तें करी। अब क्यों न दह से निकसत हरी॥

इतने में पीछे से बलदेव जी भी वहाँ आये और सब ब्रजवासियों को समझाकर बोले अभी आवेंगे अविनाशी तुम काहे को होत हो उदासी।

चौपाई––आज साथ आयौ मैं नाहीं । मो विन हरि पैठे दह माहीं ।।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित से बोले कि महाराज ! इधर तो बलराम जी सबको यों आशा भरोसा देते थे और उधर श्रीकृष्ण जी तैर कर काली के पास गये तो वह आ इनके सारे शरीर से लिपट गया तब श्रीकृष्ण ऐसे मोटे हुए कि उसे छोड़ते ही बना फिर ज्यों-ज्यों वह फुङ्कार मार-मार इन पर फन चलाता था त्यों-त्यों ये अपने को बचाते थे । निदान ब्रजवासियों को अति दुःखित जान श्रीकृष्ण यकायक उचक उसके सिर पर जा चढ़े ।

दोहा––तीन लोक को बोझ लै, भारी भयौ मुरारि ।
फन फन पर नाचत फिरै, बाजै पग पट तारि ।।

तब तो मारे बोझ के काली मरने लगा और फण पटक-पटक उसने जीभें निकाल दीं । तिनसे रुधिर की धार बह निकली । जब विष और बल का गर्व गया तब उसने मनमें जाना कि आदि पुरुषने अवतार लिया, नहीं तो इतनी किस में सामर्थ है जो मेरे विषसे बचे । यह समझ जीवन की आशा तज शिथिल हो रहा । तब नाग पत्नियों ने आय हाथ जोड़ सिर नवाय बिनती कर कहा महाराज! आपने अच्छा किया जो इस दुखदाई, अति अभिमानी का गर्व दूर किया । अब इसके भाग जागे जो तुम्हारा दर्शन पाया । जिन चरणों को ब्रह्मादिक सब देवता जपतप कर ध्यावते हैं सोई पद काली के शीश पर बिराजते हैं । इतना कह फिर कही कि महाराज ! हम पर दयाकर इसे छोड़ दीजै नहीं तो इसके साथ हमें भी बध कीजै, क्योंकि स्वामी बिन स्त्री का मरना ही अच्छा है और जो बिचारिये तो इसका भी कुछ दोष नहीं, यह तो जाति का स्वभाव है कि 'दूध पिवाये बिष बढ़ै'––

इतनी प्रार्थना नाग पत्नियों की सुन श्रीकृष्णचन्द्र उस पर से उतर पड़े तब प्रणाम कर हाथ जोड़ काली ने कहा हे नाथ ! मेरा अपराध क्षमा कीजै । मैंने अनजाने आप पर फन चलाये, हम अधम जाति सर्प हैं । हमें इतना ज्ञान कहाँ जो तुम्हें पहचानें । श्रीकृष्ण बोले अच्छा जो हुआ सो हुआ पर अब तुम यहाँ न रहो कुटुम्ब समेत रमणक द्वीप में जा बसो । यह सुन काली ने डरते काँपते कहा कृपानाथ ! वहाँ जाऊँगा तो गरुड़ मुखे खा जायगा । उसीके भय से मैं यहाँ भाग आया हूँ ! श्रीकृष्ण बोले अब तू निर्भय चला जा । हमारे पद के चिन्ह तेरे सिर पर देख तुझसे कोई न बोलेगा । ऐसा कह श्रीकृष्णचन्द्र ने उसी समय गरुड़ को बुलाय काली के मन का भय मिटाय दिया । तब काली धूप दीप नैबेद्य समेत विधि से पूजाकर, बहुत सी भेंट श्रीकृष्णचन्द्र के आगे धर, हाथ जोड़ बिनती कर सकुटुम्ब रमणक द्वीप गया और श्रीकृष्णचन्द्र जल से बाहर आये ।

इति श्रीलल्लूलाल कृते प्रेमसागरे कालीमर्दन नाम सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

अध्याय–१८

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी से काली के रमणक द्वीप छोड़कर यमुना में रहने का कारण विस्तारपूर्वक पूछा ! तब श्रीशुकदेव जी बोले कि हे राजन् !

रमणक द्वीप में हरि का वाहन गरुड़ रहता है सो अति बलवान् है। तिससे वहाँ बड़े-बड़े साँपों ने हार मान, उसे एक साँप नित देना कहा, सोई नित एक-एक रूख पर धर आवैं। वह आवै और खा जाय। एक दिन कद्रू का पुत्र काली अपने विष का घमण्डकर गरुड़ का भक्ष्य खाने गया। इतने में वहाँ गरुड़ आया और दोनों में अति युद्ध हुआ। निदान हार मान काली अपने मन में कहने लगा कि अब इसके हाथ से कैसे बचूँ और कहाँ जाऊँ। इतना कह सोचा कि बृन्दाबन में यमुना तीर जा रहूँ तो बचूँ। क्योंकि यह वहाँ नहीं जा सकता। ऐसे विचार काली वहाँ गया। फिर राजा परीक्षित ने शुकदेव मुनि से पूछा कि महाराज ! वह गरुड़ वहाँ क्यों नहीं जा सकता था। सो भेद कहो। श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन् ! किसी समय वहाँ यमुना के तट पर सौभरि ऋषि बैठे तप करते थे। वहाँ गरुड़ ने जाय एक मछली मार खाई। तब ऋषि ने क्रोध कर उसे शाप दिया कि तू इस ठौर फिर आवेगा तो जीता न जावेगा। इस कारण वह वहाँ न जा सकता था, और जब काली वहाँ गया तभी से उस थल का नाम काली दह हो गया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन् ! जब श्रीकृष्णचन्द्र काली दह से निकले तब नन्द यशोदा ने आनन्द कर बहुत सा दान पुण्य किया। पुत्र का मुख देख नयनों को सुख दिया और ब्रजवासियों के भी जी में जी आया। इस बीच साँझ हुई तो आपस में कहने लगे कि अब दिन भर के हारे थके प्यासे घर कहाँ जायेंगे, रात यहीं काटें। भोर भये वृन्दावन चलेंगे। यह कह सब वहीं सोय रहे।

चौ०—आधी रात बीत जब गई। भारी कारी आँधी भई ॥
दावा अग्नि लगी चहुँओरा। अति झर वरै वृक्ष झकझोर ॥

आग लगते ही सब चौंक पड़े और घबरा कर चारों ओर देख हाथ पसार पसार लगे पुकारने कि हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! इस आग से बेगि बचाओ, नहीं तो क्षण भर में हम सबको

जलाय भस्म करती है। जब नन्द यशोदा सहित सब व्रजवासियों ने ऐसा आरत हो पुकारा तब श्री कृष्ण जी ने उठते ही आग को पल में पी सबके मन की चिन्ता दूर की। भोर होते ही सब वृन्दावन आये और घर-घर आनन्द मंगल बधाये हुए।

इति श्री लल्लूलालकृते प्रेमसागरे दावाग्निमोचन नाम अष्टादशोऽध्यायः ।।१८।

अध्याय–१९

इतनी कथा कह शुकदेव जी बोले महाराज! अब मैं ऋतु वर्णन करता हूँ जिसमें श्री कृष्णचन्द्र जी ने लीला करीं सो चित्त दे सुनो। प्रथम ग्रीष्म ऋतु आयी जिसने आते ही सब संसार का सुख ले लिया और धरती आकाश को तपाय अग्नि सम किया। पर श्रीकृष्ण के प्रताप से वृन्दावन में सदा बसन्त ही रहा। जहाँ घने घने कुंजों पर बेलें लहलहा रहीं, वर्ण-वर्ण के फूल फूले हुए तिन पर भौरों के झुण्ड के झुण्ड गूँज रहे,आमों की डालियों पर कोयल कूक रहीं, ठण्डी-ठण्डी छाया में मोर नाच रहे, सुगन्ध लिये मीठी-मीठी पवन बह रही, और बनके एक ओर यमुना न्यारी ही शोभा दे रही थी। तहाँ कृष्ण बलराम गायें छोड़ सब सखा समेत आपस के अनूठे खेल खेल रहे थे। इतने में कंस का पठाया ग्वाल का रूप बनाय प्रलम्ब नाम का राक्षस आया। उसे देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र ने बलदेव जी से सैन से कहा––

चौ०––अपनों सखा नहीं वलवीर। कपटरूप यह मनुज शरीर।।
याके वध को करौ उपाय। ग्वाल रूप मार्‍यो नहिं जाय।।
जव यह रूप धरै आपनों। तव तुम याहि ततक्षण हनों।।

इतनी बात बलदेवजी को चिताय श्रीकृष्ण जी ने प्रलम्ब को हँसकर पास बुलाय हाथ पकड़ के कहा––

चौ०——सब से नीकौ वेष तिहारौ । भलौ कपट वन मित्र हमारौ ।।

यों कह उसे साथ ले ग्वालबाल बाँट आधे बलराम जी को दिये । लड़कों को बैठाय लगे फल फूल के नाम पूछने और बताने । इतने में बताते-बताते श्रीकृष्ण हारे बलदेव जीते । तब श्रीकृष्णजी की ओर के ग्वाल बलदेवजी के साथियों को काँधे पर चढ़ाय ले चले । तहाँ प्रलम्ब बलराम को सब से आगे ले भागा और बन में जाय उसने अपनी देह बढ़ाई । तिस समय उस काले पहाड़ समान राक्षस पर बलदेव ऐसे शोभायमान होते थे जैसे श्याम घटा पर चन्द्रमा । उनके कुण्डल की दमक बिजली सी चमकती थी । पसीना मेह-सा बरसता था । इतने ही में ज्यों ही अकेले में बलराम-जी को पाय वह मारने को हुआ त्यों ही उन्होंने मारे घूसों के उसे मार गिराया और उसका प्राण हर लिया ।

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे प्रलम्बवधो नाम उनविंशतयोऽध्यायः ।।१९।।

अध्याय–२०

श्रीशुकदेव जी बोले हे राजन्! जब प्रलम्ब को मार के चले बलराम तभी सोंही सखाओं समेत आन मिले घनश्याम ! जो ग्वालबाल बन में गाय चराते थे वे भी असुर मरा सुन गायें छोड़ उधर देखने को चले । तौ लों गायें चरती जाय काँस वन से निकल मूँज वन में बढ़ गईं ।

चौ०——बिछुरी गैया बिछुरे ग्वाल, भूले फिरें मूँज वन ताल ।
रूखन चढ़े परस्पर टेरें लै लै नाम पिछोरा फेरें ।।

इतने में किसी ने आय हाथ जोड़ श्रीकृष्ण से कहा कि महाराज ! गायें सब मूँज वन में पैठ गईं । तिनके पीछे ग्वालबाल न्यारे ढूँढते भटकते फिरते हैं । इतनी बात के सुनते ही

श्रीकृष्ण ने कदम्ब पर चढ़ ऊँचे स्वर से जो बंशी बजाई तो सुन ग्वालबाल और सब गायें मूँज बन को छोड़कर ऐसे आन मिलीं जैसे सावन भादों की नदी तुङ्ग तरङ्ग को चीर समुद्र में जा मिले। इस बीच देखते हैं, चारों ओर से बन दहड़-दहड़ जलता चला आता है। यह देख ग्वालबाल और सखा अति घबराय भय खाय कर पुकारे कि हे कृष्ण! इस आग से बेग बचाओ, नहीं तो अभी एक क्षण में सब जले मरते हैं। कृष्ण बोले तुम अपनी आँखें मूँदो। तब श्रीकृष्णजी ने पल में आग पी ली और कहा कि आँखें खोल दो।

चौपाई––ग्वाल खोल दृग कहत निहारी। कहाँ गई वह आग मुरारी।।
तब फिर आये बन भण्डारी। होव अचम्भा यह बलभारी।।

ऐसे कह गायें ले कृष्ण बलराम के साथ वृन्दावन में आये और सबने अपने अपने घर जाय कहा कि आज वन में बलराम जी ने प्रलम्ब नामक दैत्य को मारा और मूँज वन में आग लगी थी सो भी हरि के प्रताप से बुझ गई।

ग्वालबालों के मुख से यह बात सुन ब्रजवासी उसे देखने गये, परन्तु उन्होंने श्रीकृष्ण की माया का कुछ भी भेद न पाया।

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे दावाग्निविमोचनो नाम विंशतमोऽध्यायः ।।२०।।

अध्याय–२१

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज! ग्रीष्म की अति अनीति देख प्रचण्ड नृप पावस पृथ्वी के जीव जन्तुओं पर दयाकर चारों ओर से दल बादल समेत लड़ने को चढ़ आया। तिस समय घन जो गरजता था सोई धौंसा बजाता था।

दोहा––गरजत घन धोंसा वजत, विरति घटा मनुवीर।
ध्वजावनी वक पंक्ति हैं धुंद वाण भए तीर।।

सोरठा––लखि पावस को वेष, वची जान मौसम मंगी।
पतिलौट्यौ परदेश, आठ मास पिय के निकट।।

कुच गिरि शीतल हुए और गर्भ रहा उसमें। अठारह भार पुत्र उपजे सो भी फूल भेंट ले-ले पिता को प्रणाम करने लगे। उस काल से बृन्दावन की भूमि ऐसी सुहावनी लगती थी जैसे श्रृंगार किये कामिनी। जहाँ तहाँ नदी नाले सरोवर भरे हुए तिन पर हंस, सारस, मोर शोभा दे रहे थे। वृक्ष की डालियाँ झूम रहीं उन पर पक्षी किलोलें कर रहे थे। सूहेकुसुम्मे जोड़े पहिरे गोपी ग्वाल झूलों पर झूल-झूल ऊँचे-ऊँचे स्वरों से मल्हार गाते थे। तहाँ श्रीकृष्ण बलराम बाल लीला कर अधिक सुख दिखाते थे। इसी तरह वर्षा ऋतु बीती तब श्रीकृष्ण ग्वालबालों से कहने लगे कि भैया! अब तो सुखदाई शरद ऋतु आई है।

चौपाई––सबको सुख भारी अब जान्यो। स्वाद सुगन्ध रूप पहचान्यो।
निशि नक्षत्र उज्वल आकाशा। मानहुँ निर्गुन ब्रह्म प्रकाशा।।
चार मास जो विरमे गेह। भये शरद नित बजे सनेह।
अपने अपने काज सिधाये। भूप चढ़े तकि देश पराये।।

इति श्री लल्लूलालकृते प्रेमसागरे वर्षाऋतुवर्णनो नाम एकविंशोऽध्यायः ।।२१।।

अध्याय—२२
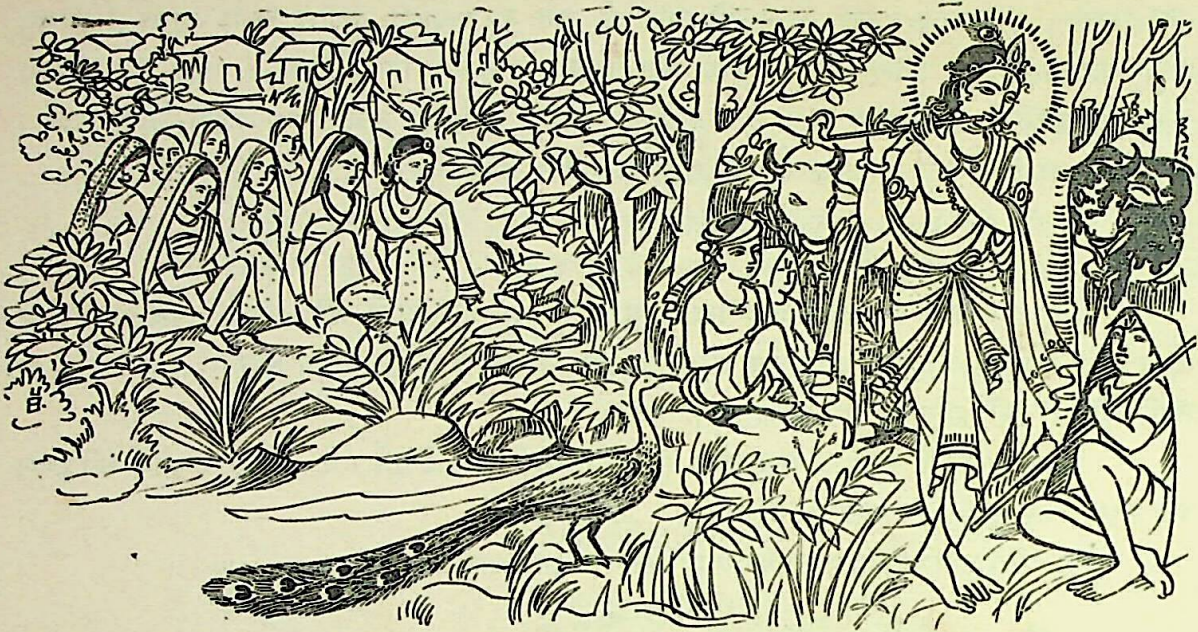
श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इतनी बात कह श्रीकृष्णचन्द्र फिर ग्वालबाल साथ ले लीला करने लगे और जब लगि श्रीकृष्ण वन में धेनु चरावें तब लगि सब गोपी घर में बैठी हरि का यश गावें । एक दिन श्रीकृष्ण ने वन में बेणु बजाई तो वंशी की ध्वनि सुन सारी ब्रज युवतियाँ हड़बड़ाय धाईं और एक ठौर मिलकर बाट में आ बैठीं । तहाँ आपस में कहने लगीं कि हमारे लोचन तब सफल होंगे जब श्रीकृष्ण के दर्शन पावेंगी । अभी तो कान्ह गौवों के साथ बन में नाचते गाते फिरते हैं, साँझ समय इधर आवेंगे तब दर्शन मिलेंगे । यह सुनकर एक गोपी बोली——

चौपाई——सुनो सखी वह बेणु वजाई । बाँस वंस देखौं अधिकाई ।।

वंशी में इतना क्या गुण है जो दिन भर श्रीकृष्ण के मुँह से लगी रहती है । अधरामृत पी आनन्द की वर्षा बर्षाती है, क्या हमसे भी यह प्यारी ! जो निशि दिन लिये रहते हैं बिहारी ।

चौपाई——मेरे आगे याको गढ़ी । अब भई सौत वदन पर चढ़ी ।।

जब श्रीकृष्ण इसे पीताम्बर से पोंछ कर बजाते हैं तब सुर किन्नर मुनि और गन्धर्व अपनी-अपनी स्त्रियों को साथ ले बिमानों पर बैठ हौंस कर सुनने को आते हैं और सुनकर मोहित हो जहाँ के तहाँ चित्र से रह जाते हैं । ऐसा इसने क्या तप किया है जो सब इसके अधीन होते हैं । इतनी बात सुनकर एक गोपी ने उत्तर दिया कि पहले तो इसने बाँस के वंश में उपज हरि का सुमिरन किया पीछे घाम शीत जल ऊपर लिया । निदान टूक-टूक हो देह जलाय धुआँ पिया ।

यह सुन कोई ब्रजनारी बोली कि हमको बेणु क्यों न रची ब्रजनाथ जो निशि दिन

रहतीं हरि के साथ । इतनी कथा कह श्री शुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! जब तक श्रीकृष्ण धेनु चराय वन से न आवें तब तक गोपी नित्य हरि के गुण गावें ।

चौपाई—इसने तप कीन्हौ है कैसो । सिद्ध हुई पायो फल ऐसो ।।

इति श्रील्लूलालकृते प्रेमसागरे गोपीवेणुगीत नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।।२२।।

अध्याय—२३

श्रीशुकदेव मुनि बोले, शरदऋतु के जाते ही हेमन्त ऋतु आई । तिस काल ब्रजबाला आपस में कहने लगीं सुनो सहेली, अगहन के न्हान से मन के सब पातक जाते हैं और मन की आशा पूजती है । यह सुन सबके मन में आई कि अगहन नहाइये तो श्रीकृष्ण वर पाइये । ऐसा विचार होते ही भोर उठ वस्त्र आभूषण पहन सब ब्रजबाला मिल यमुना नहाने आईं । स्नान कर सूर्य को अर्घ, धूप, दीप, नैवेद्य आगे धर, पूजा कर, हाथ जोड़ शिर नवाय, गौरी को मनाय के बोलीं, हे देवी ! हम तुम से बराबर यही वर माँगती हैं कि श्रीकृष्ण हमारे पति होयँ । इसी बिधि से गोपी नित नहावें और दिन भर व्रत कर साँझ को दही भात खा भूमि पर सोवें।

ऐसा मन में विचार के कि हमारे व्रत का फल शीघ्र मिले एक दिन जब सब ब्रज-बाला मिल स्नान को औघट घाट गईं और वहाँ जाय चीर उतार तीर पर धर नग्न हो नीर में पैठने लगीं तो हरि के गुण गाय-गाय जल क्रीड़ा करने लगीं । उस काल श्रीकृष्ण भी वंशीवट की छाँह में बैठे धेनु चरावते थे । इनके गाने का शब्द सुन के चुपचाप चले आये और लगे छिपकर देखने । निदान देखते-देखते जो इनके जी में आई सो सब वस्त्र चुराय कदम्ब पर जा चढ़े और गठरी बाँध आगे धर ली । इतने में ही गोपिका जो देखें तो तीर पर चीर नहीं । तब घबराय कर चारों ओर उठ-उठ लगीं देखने और आपस में कहने लगीं कि अभी तो यहाँ एक चिड़ियाँ भी नहीं आई—बसन कौन हर ले गया भाई । इसी बीच एक गोपी ने देखा कि सिर

पर मुकुट हाथ में लकुट, केशर तिलक दिये, बनमाला धारण किये पीताम्बर पहरे कपड़ों की गठरी बाँधे, मौन साधे श्रीकृष्ण कदम्ब पर चढ़े छिपे हुए बैठे हैं। वह देखते ही पुकारी सखी! वह देखो हमारे चितचोर कदम्ब पर पट लिए विराजते हैं। यह वचन सुन और सब युवतियाँ कृष्ण को देख लजा पानी में बैठ हाथ जोड़ सिर नवाय विनती कर हा हा खाय बोलीं।

चौपाई——दीनदयाल हरण दुख प्यारे। दीजे मोहन चीर हमारे।
ऐसे सुनके कहें कन्हाई। यों नहिं दूँगा नंद दुहाई।।
एक एक कर बाहर आवो। तो तुम अपने कपड़े पावो।

व्रजवाला रिसाय के बोलीं, यह तुम भली सीख सीखे हो जो हमसे कहते हो कि नङ्गी बाहर आओ। अभी अपने पिता बन्धुओं से जाय कहें तो वे तुम्हें चोर-चोर कह आ पकड़ें और नन्द यशोदा को जो सुनावें तो वे भी सीख भली भाँति से सिखावें, हम करती हैं लाज, तुमको तो लाज नहीं। तुमने मेटी सब पहिचान।

इतनी बात के सुनते ही क्रोधकर श्रीकृष्णजी ने कहा कि अब चीर तभी पाओगी जब उनको बुला लाओगी, नहीं तो नहीं। तब गोपी बोलीं हे दीनदयाल हमारे सुख के दिवैया, पत के रखैया तो आपही हैं, हम किसे लावेंगी। तुम्हारे हेतु नेम कर मार्गशीर्ष मास नहाती हैं। श्रीकृष्ण बोले जो तुम मन लगाय मेरे लिए अगहन नहाती हो तो लाज और कपट त्याग तट पर आय अपने-अपने चीर लो। जब श्रीकृष्णचन्द्र ने ऐसा कहा तब सब गोपी आपस में विचार करने लगीं कि चलो सखी जो मोहन कहते हैं सोई मानें। क्योंकि हमारे तन मन की सब जानते हैं इनसे लाज क्या। यों आपस में ठान श्रीकृष्ण की बात मान हाथ से कुछ देह दुराय सब युवती नीर से निकल सिर नवाय जब सन्मुख तीर पर जाके खड़ी हुईं तब श्रीकृष्ण हँस के बोले अब तुम हाथ जोड़ आगे आओ तो ये वस्त्र दूँ, गोपी तब बोलीं——

चौपाई——काहे कपट करत नन्दलाल। हम सूधी भोरी व्रजलाल।।
परी ठगौरी सुधि बुधि गई। ऐसी तुम हरि लीला ठई।।
मन सँभारि कै करि हैं लाज। अव तुम कछू करो व्रजराज।।

इतनी बात कह जब गोपियों ने हाथ जोड़े तो श्रीकृष्णचन्द्र ने वस्त्र दे उनके पास आय कहा कि तुम अपने मन में कुछ इस बात का गुस्सा मत मानो। यह मैंने तुम्हें सीख दी है क्योंकि जल में वरुण देवता का बास है इससे जो कोई नग्न होय जल में नहाता है, उसका सब धर्म बह जाता है, तुम्हारे मन की लगन देख मगन हो मैंने यह भेद तुमसे कहा अपने-अपने घर जाओ फिर महीने में आय मेरे साथ रास कीजियो। श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज! इतना बचन सुन प्रसन्न हो सन्तोष कर गोपियाँ अपने-अपने घर को गईं और श्रीकृष्ण वंशीवट पै आय गोप ग्वालबाल सखाओं को सङ्ग ले आगे चले। तिस समय चारों ओर सघन वन देख वृक्षों की बड़ाई करने लगे कि देखो ये संसार में आ अपने ऊपर कितने दुख सह लोगों को सुख देते हैं। जगत में ऐसे ही परकाजियों का आना सफल है। ऐसे कह आगे बढ़ यमुना के निकट जाय पहुँचे।

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे चीरहरणोनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

अध्याय-२४
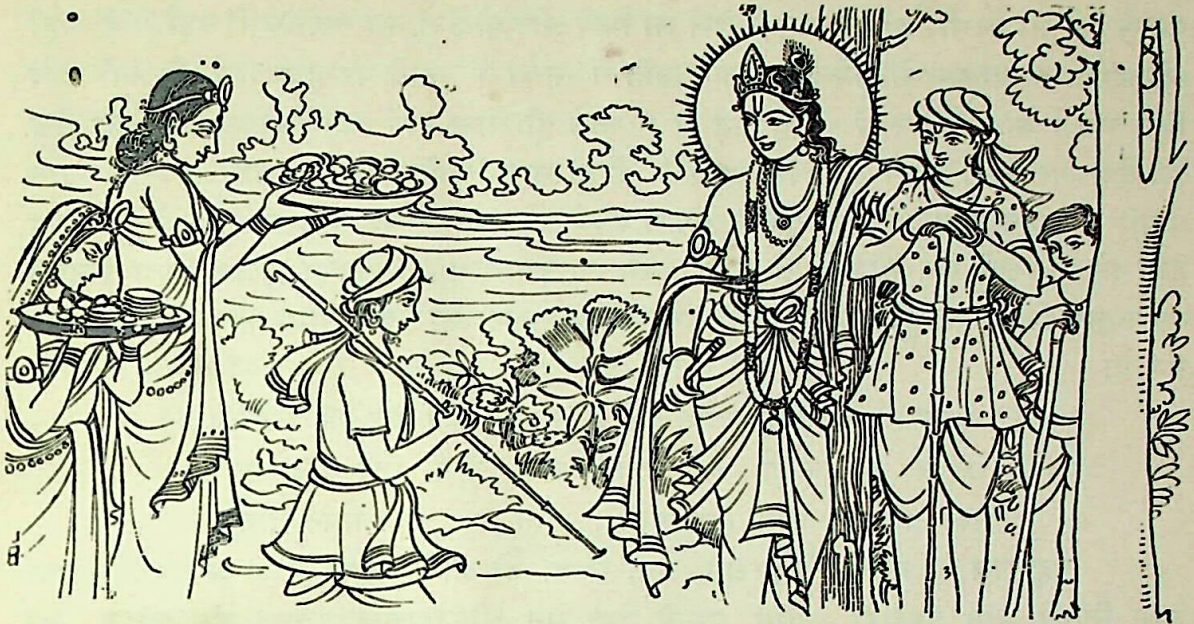
श्रीशुकदेवजी बोले कि, जब श्रीकृष्ण यमुना के पास पहुँचे रूखतले लाठी टेक खड़े हुए तब सब ग्वाल और सखाओं ने आय कर जोर कहा कि महाराज ! हमें इस समय बड़ी भूख लगी है । जो कुछ छाक लाये थे सो खाई पर भूख न गई । कृष्ण बोले, देखो वह जो धुआँ दिखाई देता है तहाँ मथुरिये कंस के डर से छिप के यज्ञ करते हैं । उनके पास जाय हमारा नाम ले दण्डवत कर हाथ बाँध खड़े हो दूर से भोजन माँग लो । ऐसे दीन हो माँगियो जैसे भिखारी अधीन हो माँगते हैं । यह बात सुन ग्वाल चले-चले वहाँ गये जहाँ मथुरिये बैठे यज्ञ करते थे । जाते ही उन्होंने प्रणाम कर निपट अधीनता से कर जोर के कहा कि महाराज ! आपको दण्डवत् कर हमारे द्वारा श्रीकृष्णचन्द्र जी ने यह कहलाया है कि हमको अति भूख लगी है, कृपाकर कुछ भोजन भेज दीजिये । इतनी बातें ग्वालों के मुख से सुन मथुरिये क्रोधकर बोले बड़े मूर्ख हो जो हम से अभी यह बात कहते हो । बिना होम समाप्त हुए किसी को कुछ न देंगे । सुनो जब यज्ञ कर लेंगे तब जो कुछ बचेगा बाँट देंगे । फिर ग्वालों ने गिड़गिड़ा के बहुतेरा कहा कि महाराज ! घर आये भूखों को भोजन करवाने से बड़ा पुण्य होता है । पर वे इनके कहने को कुछ ध्यान में न लाये वरन् मुँह फेर आपस में कहने लगे ।

चौपाई--वड़े मूढ़ पशु पालक नीच । माँगत भात होम के बीच ।।

तब तो ये वहाँ से निराश हो पछताय श्रीकृष्ण के पास आय बोले कि महाराज ! भीख माँग के मान सहज गमाया, तो भी खाने को कुछ हाथ न आया अब क्या करें । श्रीकृष्ण ने कहा कि अब तुम उनकी स्त्रियों से जाय माँगो, वे बड़ी दयावन्त धर्मात्मा हैं । उनकी प्रीति भक्ति देखियो वे तुम्हें देखते ही आदर मान से भोजन देंगी । यों सुन वे फिर वहाँ गये जहाँ वे बैठी रसोई करती थीं । जाते ही उनसे कहा कि वन में श्रीकृष्ण को धेनु चराते क्षुधा लगी है, सो हमें तुम्हारे पास पठाया है, कुछ खाने को होय तो दो । इतना बचन ग्वालों के मुख

से सुनते ही वे सब प्रसन्न हो कंचन थालों में षटरस भोजन भर ले-लेकर उठ धाईं और किसी के रोके न रुकीं। एक मथुरनी के पति ने जो जाने न दिया तो वह ध्यान कर देह छोड़ सबसे पहिले ऐसे जा मिली कि जैसे जल में जल जा मिले और पीछे से सब चलीं-चलीं वहाँ आईं जहाँ श्रीकृष्णचन्द्र ग्वालबालों समेत वृक्ष की छाँह में सखा के काँधे पर हाथ दिये त्रिभंगी छवि किये कमल का फूल कर में लिये खड़े थे। आते ही थाल आगे धर दण्डवत् कर हरि मुख देख-देख आपस में कहने लगीं कि सखी! ये ही नन्द-किशोर, जिनका नाम सुन-सुन ध्यान धरती थी, अब चन्द्रमुख देख लोचन सफल कीजै और जीवन का फल लीजै। ऐसे बतराय हाथ जोर विनती कर श्रीकृष्ण से कहने लगीं, कि कृपानाथ! आपकी कृपाके बिना तुम्हारा दर्शन कब किसी को होता है। आज धन्य भाग्य हमारा जो दर्शन पाया और जन्म का पाप गमाया।

मूरख विप्र कृष्ण अभिमानी। श्री मद लोभ मोह मति सानी।
ईश्वर को मानुष कर मानें। माया अन्ध कहाँ पहिचानें।।
जप तप यज्ञ जासु हित कीजै। ताको कहा न भोजन दीजै।

महाराज! वही धन्य है धन, जन, लाज, जो आवे तुम्हारे काज और सोई है तप ज्ञान तिसमें आवे तुम्हारा ध्यान, इतनी बात सुन श्रीकृष्णचन्द्र उनकी क्षेम कुशल पूछ कहने लगे कि––

माता जनि मोहि करो प्रणाम। मैं हूँ नन्द महर को श्याम।।

जो ब्राह्मण की स्त्री से पाँव पुजवाते हैं सो क्या संसार में कुछ बड़ाई पाते हैं? तुमने हमको भूखे जान दयाकर वन में आन सुधि ली, अब हम यहाँ तुम्हारी क्या पहुनाई करें।

चौपाई––वृन्दावन घर दूर हमारा। किस विधि आदर करें तुम्हारा।।

जो वहाँ होते तो कुछ फल फूल लाय आगे धरते। तुम हमारे कारण दुःख पाय जंगल में आईं और यहाँ हमसे तुम्हारी टहल कुछ न बन आई, इस बात का पछतावा ही रहा। शिष्टाचार कर फिर बोले कि तुम्हें आये बड़ी देर हुई अब घर को सिधारिये, क्योंकि ब्राह्मण तुम्हारी बाट देखते होंगे। इसलिये कि स्त्री के बिना यज्ञ सफल नहीं होता। यह बचन श्रीकृष्ण के सुनते ही हाथ जोर बोलीं महाराज! हमने आप के चरण कमल सेवन कर कुटुम्ब की सब माया छोड़ी। क्योंकि जिनका कहा न मान हम उठ धाईं, तिनके यहाँ अब कैसे जायँ। जो वे घर में न जाने देंगे तो फिर कहाँ बसेंगे। इससे आपकी शरण में रहें सोई भला। और हे नाथ! एक नारी हमारे साथ तुम्हारे दर्शन की अभिलाषा किये आवती थी, उसके पति ने रोक रखा तब उस स्त्री ने अकुला कर अपना प्राण त्याग दिया। इस बात के सुनते ही हँस कर श्रीकृष्णचन्द्र ने उसे दिखाया जो देह छोड़ आई थी, और कहा कि सुनो, जो हरि से हित करता है तिसका विनाश कभी नहीं होता। यह तुम से पहिले आ मिली है।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज! इसको देखते ही एक बार तो सब अचम्भे में रहीं पीछे जब ज्ञान हुआ, तब हरिगुण गाने लगीं। इसी बीच श्रीकृष्णचन्द्र ने भोजन कर उनसे कहा कि अब अपने स्थान को प्रस्थान कीजै। तुम्हारे पति कुछ न कहेंगे। जब श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाय बुझाय के कहा तब वे विदा हो दण्डवत् कर अपने घर

गईं और उनके स्वामी सोच विचारकर पछताय-पछताय कह रहे थे कि हमने कथा पुराण में सुना है कि किसी समय नन्द यशोदा ने पुत्र के निमित्त बड़ी तपस्या की थी, तहाँ भगवान् ने आय उन्हें वर दिया था कि हम यदुकुल में अवतार ले तुम्हारे यहाँ जन्मेंगे । वे ही जन्म ले आये हैं । उन्होंने ग्वालवालों के हाथ भोजन मँगवाय भेजा था सो हमने यह क्या किया जो आदि पुरुष ने भोजन माँगा और भोजन न दिया !

यज्ञ धरम जिन कारण ठये । तिनके सन्मुख आज न भये ।।
आदि पुरुष हम मानुष जान्यो । नाहिं वचन ग्वालन को मान्यो ।।
हम मूरख पापी अभिमानी । कीहीं दया न हरि गति जानी ।।

ऐसे पछिताय मथुरियों ने अपनी स्त्रियों के सम्मुख होय कहा कि धन्य भाग्य तुम्हारा जो हरि दर्शन कर आईं । तुम्हारा ही जीवन सुफल है ।

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे द्विजपत्नीयाचन नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

अध्याय—२५

श्रीशुकदेवजी बोले जैसे श्रीकृष्णचन्द्र ने गिरि गोवर्धन उठाया और इन्द्र का गर्व हरा सोई कथा कहता हूँ तुम चित्त दे सुनो । सब ब्रजवासी वर्षवें दिन कार्तिक बदी चौदस को नहाय धोय, केसर चन्दन से चौक पुराय, भाँति-भाँति की मिठाई और पकवान धर, धूप दीप कर इन्द्र की पूजा किया करें । यह रीति उनके यहाँ परस्परा से चली आवती थी । एक दिन वही दिवस आया तब नन्दजी ने बहुत-सी खाने की सामग्री बनवाई और सब ब्रजवासियों के भी घर-घर भोजन की सामग्री हो रही थी । तहाँ श्रीकृष्ण ने आय अपनी माँ से पूछा कि माँ ! आज घरमें पकवान मिठाई जो हुई है सो क्या है । इसका भेद मुझे समझाय कहो तो मेरे मन की दुविधा जाय । यशोदा बोलीं कि बेटा ! इस समय मुझे बात करने का अवकाश नहीं, तुम अपने पिता से जा पूछो । वे बुझाय कर कहेंगे । यह सुन नन्द उपनन्द के पास जाय श्रीकृष्ण ने कहा कि पिता आज किस देवता के पूजन की ऐसी धूम धाम है जिसके लिए घर-घर पकवान और मिठाई हो रही है । वे कैसे भक्ति मुक्ति वर के दाता हैं । उनका नाम और गुण कहो । तब नन्दमहर बोले कि पुत्र, यह भेद तूने अबतक न समझा कि मेघों के पति जो हैं सुरपति तिनकी पूजा है । जिनकी कृपा से इस संसार में ऋद्धि सिद्ध मिलती है और तृण जल अन्न होता है, वन उपवन फलते फूलते हैं । इससे सब जीव जन्तु, पशु, पक्षी आनन्द से रहते हैं । यह इन्द्रपूजा की रीति हमारे यहाँ पुरखाओं के आगे से चली आती है , कुछ आज नई नहीं निकली । नन्दजी से इतनी बात सुन श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे पिता ! जो हमारे बड़ों ने अनजाने इन्द्र की पूजा की तो की पर अब तुम जान बूझ कर धर्म का पन्थ छोड़ औघट क्यों चलते हो । इन्द्र के मानने से कुछ नहीं होता । क्योंकि वह भक्ति मुक्ति का दाता नहीं और उससे ऋद्धि सिद्ध किसने पाई है । यह तुम ही कहो कि उसने किसे वर दिया है । हाँ एक बात यह है कि यज्ञ करने से देवताओं ने उसे अपना राजा बना इन्द्रासन दे रखा है । इससे कुछ परमेश्वर नहीं हो सकता । सुनो जब असुरों से बार-बार हारता है तब भाग के कहीं छिप कर अपने दिन काटता है । ऐसे कायर

को क्यों मानो, अपना धर्म किस लिए नहीं पहचानो। इन्द्र का किया कुछ नहीं हो सकता। जो कर्म में लिखा है सोई होगा। सुख सम्पत्ति दारा, भाई बन्धु ये सब अपने धर्म कर्म से मिलते हैं। और आठ मास जो सूर्य जल सोखता है सोई चार महीने बरसता है। तिससे पृथ्वी पर तृण जल अन्न होता है और जो ब्रह्मा ने चार वर्ण बनाये हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तिनके पीछे भी एक-एक काम लगा दिया है कि ब्राह्मण तो वेद विद्या पढ़े, क्षत्रिय सबकी रक्षा करे, वैश्य खेती-वाणिज्य करे, शूद्र इन तीनों की सेवा में रहे।

पिता! हम वैश्य हैं गायें बढ़ीं इससे गोकुल हुआ तिससे नाम गोप पड़ गया। हमारा यह कर्म है कि खेती वाणिज्य करें और गौ ब्राह्मण की सेवा में रहें। वेद की आज्ञा है कि अपने कुल की रीति न छोड़िये। जो लोग अपना धर्म तज और का धर्म पालते हैं सो ऐसे हैं जैसे कुल-बधू हो पर पुरुष से प्रीति करै। इससे अब इन्द्र की पूजा छोड़ दीजै और बन पर्वत की पूजा कीजै। क्योंकि हम बनवासी हैं और हमारे राजा यही हैं। जिनके राज्य में हम सुख से रहते हैं तिन्हें छोड़ और को पूजना हमें उचित नहीं। इससे अब सब पकवान मिठाई और अन्न ले चलौ और गोवरधन की पूजा करो।

इतनी बात के सुनते ही नन्द उपनन्द उठ कर वहाँ गये जहाँ बड़े-बड़े गोप अथाई पर बैठे थे। उन्होंने जाते ही सब कृष्ण की कही बातें उन्हें सुनाईं। वे सुनते ही बोले कि कृष्ण सच्ची कहता है, तुम बालक जान उसकी बात मत टालो। भला तुम ही बिचारो कि इन्द्र कौन है। और हम किस लिये उसे मानते हैं उसकी पूजा ही छोड़ देना चाहिये।

हमें कहा सुरपति सों काज। पूजें वन सरिता गिरिराज॥

ऐसे कह सब गोपों ने कहा——

दोहा——भलो मतो कान्हा दियो, तजिके सिगरे देव।
गोवरधन पर्वत वड़ो, ताकी कीजै सेव॥

यह बचन सुनते ही नन्दजी ने प्रसन्न हो गोपों में ढिंढोरा फिरवा दिया कि कल हम सारे ब्रजवासी चलकर गोवरधन की पूजा करेंगे। जिसके घर इन्द्र की पूजा के लिए पकवान मिठाई बनी है सो सब ले-ले कर भोर ही गोबरधन पर जाइयो। इतनी बात सुन सकल ब्रज-वासी दूसरे दिन भोर ही स्नान ध्यान कर सब सामिग्री, थालों, परातों, डला-डलियों, हाड़ी, और चरुओं में भर कर गाड़ी-बहँगियों पर रखवाय गोवरधन को चले। तिस समय नन्द उपनन्दजी कुटुम्ब समेत सामिग्री ले सबके साथ हो लिए और बाजे गाजे से चले। सब मिल गोवरधन पहुँचे। वहाँ जाय पर्वत को चारों ओर से झाड़ बुहार जल छिड़क घेवर, पापड़, जलेबी, लाड़ू, खुरमे, इमरती, फेनी, पेड़े, बरफी, खाझे, गूँझे, मठुलिया, सीरी, पूरी, कचौड़ी सेव, पापड़, पकौड़े आदि पकवान और भाँति-भाँति के भोजन व्यन्जन चुन-चुन रख दिए, इतने कि जिनसे पर्वत छिप गया और ऊपर फूलों की माला पहनाय वर्ण-वर्ण के पाटम्बर तान दिये। तिस समय की शोभा वर्णी नहीं जाती। गिरि ऐसा सुहावना लगता था कि जैसे किसी ने गहने कपड़े पहनाय नख शिख से शृंगार किया होय। नन्दजी ने पुरोहित बुलाय सब ग्वालों को साथ ले रोली, अक्षत, पुष्प चढ़ाय धूप दीप नैवेद्य कर, पान, सुपारी, दक्षिणा धर वेद की विधि से पूजा की। तब श्रीकृष्ण ने कहा कि अब तुम शुद्ध मन से गिरिराजजी का ध्यान करो तो

वे आय करें दर्शन तुम लोगों को दें और भोजन करें । श्रीकृष्ण से यों सुनते ही नन्द यशोदा समेत सब गोपी गोप कर जोर, नयन मूँद ध्यान लगाय खड़े हुए । तिस काल नन्दलाल उधर तो अति भारी दूसरी देह धर बड़े-बड़े हाथ पाँव कर कमल नयन चन्द्रमुख हो मुकुट धरे, बनमाला गेरे पीत बसन और रत्न जड़ित आभूषण पहने मुँह पसारे चुपचाप पर्वत के बीच से निकले और उधर आपही अपने वे दूसरे रूप को देख सब से पुकार के बोले देखो गिरराज ने प्रगट होय दर्शन दिया जिनकी पूजा तुमने जी लगाय कीनी है ।

इतना बचन सुनाय श्रीकृष्णचन्द्रजी ने गिरिराज को दण्डवत की । उनकी देखा देखी सब गोप प्रणाम कर आपस में कहने लगे कि इस भाँति इन्द्र ने कब दर्शन दिया था । हमने वृथा उसकी पूजा की और क्या जानिये, पुरखाओं ने ऐसे प्रत्यक्ष देवता को छोड़ क्यों इन्द्र को माना । यह बात समझ में नहीं आती । यों सब बतराय रहे थे कि श्रीकृष्ण बोले अब देखते क्या हो । जो भोजन लाये हो सो खिलाओ । इतना बचन सुनते ही गोपी गोप षटरस भोजन थाल परातों में भर उठाय देने लगे और गोवरधननाथ हाथ बढ़ाय-बढ़ाय ले ले भोजन करने लगे । निदान जितनी सामग्री नन्द समेत ब्रजवासी ले गये थे सो खाई । तब वह मूरत पर्वत में समा गई । फिर पर्वत की परिक्रमा दे दूसरे दिन गोवरधन से चले और हँसते-खेलते बृन्दावन आये । तिस काल घर-घर मङ्गल बधाये होने लगे और ग्वालबाल सब गाय बछड़ों को सङ्ग ले उनके गले में घण्टी, घण्टलियाँ, घुँघरूँ बाँध न्यारे ही कुतूहल करने लगे ।

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे गोवर्धनपूजा नाम पंचविंशोऽध्यायः ।।२५।।

अध्याय–२६

दोहा—सुरपति की पूजा तजी, करि पर्वत की सेव ।
तबहि इन्द्र मन कोपि कै सबै बुलाये देव ।।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले हे महाराज ! जब सारे देवता इन्द्र के पास गये तब वह उनसे पूछने लगा कि तुम मुझे समझा कर कहो कि कल ब्रज में किस की पूजा थी । इस बीच में नारदजी भी आय पहुँचे और इन्द्र से कहने लगे कि सुनो महाराज ! तुम्हें सब कोई मानते हैं, पर एक ब्रजवासी नहीं मानते क्यों कि नन्द के एक बेटा हुआ है तिसी का कहा सब करते हैं । उन्होंने तुम्हारी पूजा मेट कर सबसे पर्वत पुजवाया । इतनी बात के सुनते ही इन्द्र क्रोध कर बोला कि ब्रजवासियों के धन बढ़ा है इसी से उन्हें गर्व हुआ है ।

चौपाई––कर तप यज्ञ तज्यो व्रत मेरौ । काल दरिद्र बुलायौ नेरौ ।।
मानुष कृष्ण देव करि मानें । ताकी वातें साँची जाने ।।
यह वालक मूरख अज्ञानी । वहुवादी राखे अभिमानी ।।
उनकौ अवहिं गर्व परिहरौं । पशु खोऊँ लक्ष्मी विन करौं ।।

ऐसे बक झक खिजलाय कर सुरपति ने मेघपति को बुलाय भेजा । वह सुनते ही डरता काँपता हाथ जोड़ सन्मुख आ खड़ा हुआ । तिसे देखते ही इन्द्र तेहाकर बोला कि तुम अभी अपना दल साथ ले जाओ और गोवर्द्धन पर्वत समेत ब्रजमण्डल को बरस कर ऐसा बहाओ कि कहीं गिरि का चिन्ह और ब्रजवासियों का नाम न रहे । यह आज्ञा पाय मेघपति दण्डवत् कर राजा इन्द्र से बिदा हुआ और उसने अपने स्थान पर आय बड़े-बड़े मेघों को बुलाय के कहा कि सुनो महाराज की आज्ञा है कि तुम अभी जाय ब्रज मण्डल को बरसा से बहा दो । यह बचन सुन सब मेघ अपने दल बादल से मेघपति के साथ हो लिए । उसने आते ही ब्रज मण्डल को घेर लिया और गरज-गरज बड़ी-बड़ी बूँदों से लगा मूसलाधार बरसावने और अँगुली से गिरि को बतावने । इतनी कथा कह श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज ! जब ऐसे चहुँओर से घनघोर घटा घिर आई और अखण्ड जल बहने लगा तब नन्द यशोदा समेत सब गोपी ग्वालवाल भय खाय भीगते थर-थर काँपते श्रीकृष्ण के पास जाय पुकारे हे कृष्ण ! इस महाप्रलय के जल से कैसे बचेंगे ? तब तो तुमने इन्द्र की पूजा मेट पर्वत पुजवाया । अब उनको बेगि बुलाइये जो आय हमारी रक्षा करें नहीं तो क्षण भर में नगर समेत सब डूबे मरते हैं । इतनी बात सुन और सबको भयातुर देख श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि तुम अपने मन में किसी बात की चिन्ता मत करो । गिरिराज अभी आ तुम्हारी रक्षा करते हैं । यों कह गोवरधन को तेज से तपाय अग्नि सम कर बायें हाथ की उँगली पर उठा लिया । तिस काल सब ब्रजवासी डेरों समेत आ उसके नीचे खड़े हुए और श्रीकृष्णचन्द्र को देख देख अचरज कर आपस में कहने लगे कि––

चौपाई––है कोउ आदि पुरुष औतारी । देवन हू कौ देव मुरारी ।।
मोहन मानुष कैसौ भाई । अँगुरी पर क्यों गिरि ठहराई ।।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि राजा परीक्षित से कहने लगे कि उधर तो मेघपति अपना दल लिये क्रोध कर मूसलाधार जल बरसाता था, इधर तपे हुए पर्वत पै गिरते ही छनका दे तपे तवे की सी बूँद हो जाती थी । यह समाचार सुन इन्द्र भी कोप कर आप चढ़ आया और लगातार इस भाँति सात दिन बरसा कि बृज में हरि प्रताप से बूँद भी न पड़ी, जब सब जल निबटा तब मेघों ने हाथ जोड़ कहा हे नाथ ! जितना महाप्रलय का जल था सबका सब

समाप्त हो चुका, अब क्या करें । यह सुन इन्द्र नें अपने ज्ञान ध्यान से बिचारा कि, आदि पुरुष ने अवतार लिया है । नहीं तो किसमें इतनी सामर्थ थी जो गिरि धारण कर ब्रज की रक्षा करता । ऐसे सोच सोच अछता पछता कर मेघों समेत इन्द्र अपने स्थान को गया । तब बादल उवड़े, प्रकाश हुआ, और सब ब्रजवासियों ने प्रसन्न हो श्रीकृष्ण से कहा महाराज ! अब गिरि उतार धरिये । मेघ जाते रहे । यह वचन सुनते ही श्रीकृष्ण ने पर्वत जहाँ का तहाँ रख दिया ।

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे ब्रजरक्षण नाम षड्विंशोऽध्यायः ।।२६।।

अध्याय–२७

श्री शुकदेव मुनि बोले कि जब हरि ने गिरि कर से उतार धरा तिस समय सब बड़े गोप तो अद्भुत चरित्र को देख यही कह रहे थे कि जिसकी शक्ति ने महाप्रलय से आज ब्रज-मण्डल को बचाया तिसे हम नन्द सुत कैसे कहेंगे । हाँ किसी समय नन्द यशोदा ने महा तप किया था । इसी से भगवान् ने आ इनके घर जन्म लिया है और ग्वालबाल आय आय श्री कृष्ण के गले मिल पूछने लगे कि भैया ! तू ने इस कमल से कोमल हाथ पर कैसे ऐसे भारी पर्वत का बोझ सँभाला । तदनन्तर नन्द-यशोदा करुणा कर पुत्र को हृदय से लगाय, हाथ दबाय अँगुली चटकाय कहने लगे कि सात दिन गिरिको कर पर रक्खा । हाथ दुखता होयगा । फिर गोपियाँ यशोदा के पास आय पिछली सब कृष्ण की लीला गायके कहने लगीं ।

चौपाई–यह जो वालक पूत तिहारो । चिरजीवौ ब्रज को रखवारो ।।
दानव दैत्य असुर संहारे । कहाँ कहाँ ब्रज जनन उवारे ।।
जैसी कही गर्ग ऋषि राई । सोई वात होत है आई ।।

इति श्रीलल्लूलाल कृते प्रेमसागरे श्रीकृष्ण लीला नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।।२७।।

अध्याय–२८

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज ! भोर होते ही सब गायें और ग्वालबालों को सँग लेकर अपनी-अपनी छाकें ले कृष्ण और बलराम बेणु बजाते और मधुर मधुर स्वर से गाते जो धेनु चरावन वन को चले तो राजा इन्द्र समस्त देवताओं को साथ लिये कामधेनु को आगे किये ऐरावत हाथी पर चढ़ सुरलोक से चल वृन्दावन में आया और वन की बाट रोक खड़ा हुआ । जब श्री कृष्णचन्द्र उसे दूर से दिखाई दिये तब गज से उतर नंगे पावों गले में कपड़ा डाले थर-थर काँपता दौड़कर श्रीकृष्ण के चरणों पर गिर पड़ा और पछताय-पछताय रो-रो कहने लगा कि हे ब्रजनाथ मुझ पर दया करो ।

चौपाई–मैं अभिमान गर्व अति कियौ । राजस तामस में मन दियौ ।।
धन मद कर सम्पत्ति सुख मान्यौ । भेद न कछू तुम्हारो जान्यौ ।।

तुम परमेश्वर सब के ईश। और दूसरौ को जगदीश ।।
ब्रह्मा रुद्र आदि वरदाई। तुम्हरी दई सम्पदा पाई ।।
जगतपिता तुम निगम निवासी। सेवत नित कमला भई दासी ।।
जन के हेतु लेत अवतारा। तब तब हरत भूमि कौ भारा।।
दूर करौ सब चूक हमारी। अभिमानी मूरख हम भारी ।।

जब ऐसे दीन हो इन्द्र ने स्तुति करी तब श्रीकृष्ण दयालु हो बोले कि अब जो तू कामधेनु के साथ आया है इससे तेरा अपराध क्षमा करता हूँ, पर गर्व मत कीजो क्योंकि गर्व से ज्ञान जाता है और कुमति बढ़ती है। इससे अपमान होता है। इतनी बात श्रीकृष्ण के मुख से सुनते ही इन्द्र ने उठकर वेद की विधि से पूजा की। गोविन्द नाम धर, चरणामृत ले, परिक्रमा करी। तिस समय पर गन्धर्व भाँति-भाँति के बाजे बजाय-बजाय श्री कृष्ण का यश गाने लगे, और देवता अपने-अपने विमानों में बैठ आकाश से फूल बरसाने लगे। उस काल ऐसी शोभा हुई कि मानों फिर श्री कृष्ण ने जन्म लिया हो। जब निश्चिन्त हो इन्द्र हाथ जोड़ सन्मुख खड़ा हुआ तब श्रीकृष्ण ने आज्ञा दी कि अब तुम कामधेनु समेत अपने पुर को जावो। आज्ञा पाते ही कामधेनु और इन्द्र विदा हो, दण्डवत कर, इन्द्रलोक को गये और श्रीकृष्ण गौ चराय साँझ हुए ग्वाल वालों सहित घर आये। वहाँ ग्वाल वालों ने इन्द्र की बात अपने-अपने घर कही।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले यह जो श्रीगोविन्द की कथा मैंने कही है इसके सुनने और सुनाने से संसार में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ मिलते हैं।

इति श्रील्लूलालकृते प्रेमसागरे इन्द्रस्तुतिवरणो नाम अष्टविंशोऽध्यायः ।।२८।।

अध्याय–२९

श्रीशुकदेव जी बोले महाराज ! एक दिन नन्दजी ने संयम कर एकादशी व्रत किया । दिन तो स्नान, ध्यान, भजन, जप, पूजा में कटा और रात्रि जागरण में बिताई । जब छः घड़ी रैन रही और द्वादशी भई तब उठ के देह शुद्ध कर, भोर हुआ जान धोती अँगोछा झारी ले, यमुना नहाने चले । तिनके पीछे कई ग्वाल भी हो लिये । तब तीर पर जाय प्रणाम कर, कपड़े उतार, नन्दजी ज्यों ही नीर में पैठे त्यों ही वरुण के सेवक, जो जल की चौकी देते थे कि कोई रात को नहाने न पावे उन्होंने जा वरुण से कहा कि महाराज ! कोई इस समय यमुना में नहाय रहा है, सो हमें क्या आज्ञा होती है । वरुण बोले उसे अभी पकड़ लावो । आज्ञा पाते ही सेवक फिर वहाँ आये जहाँ नन्द जी नहा कर जल में खड़े जप करते थे । वे आते ही अचानक नाग फाँस डाल नन्द जी को वरुण के धाम ले गये । तब नन्दजी के साथ जो ग्वालबाल गये थे उन्होंने आयके श्री कृष्ण से कहा कि महाराज ! नन्दराय जी को वरुण के गण यमुना तीर से पकड़ वरुण लोक को ले गये । इतनी बात सुनते ही गोविन्द क्रोध कर उठ धाये और पल भर में वरुण के पास जा पहुँचे । इन्हें देखते ही वरुण उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़ विनती कर बोला––

चौपाई–सफल जन्म है आज हमारौ । पायौ यदुपति दरश तुम्हारौ ।।
कीजै दोष दूर सब मेरे । नन्द पिता जा कारण घेरे ।।
तुमको सबके पिता बखाने । तुम्हरे पिता नहीं हम जाने ।।

ऐसे आके बिनती कर बहुत सी भेंट लाय श्रीकृष्ण के आगे धर जब वरुण हाथ जोड़ सिर नवाय कर सन्मुख हुआ तब श्रीकृष्ण भेंट ले पिता को साथ लेकर यहाँ से चल वृन्दावन आये । इनको देखते ही सब ब्रजवासी आय मिले । उस समय बड़े-बड़े गोपों ने नन्दराय से पूछा कि तुम्हें वरुण के सेवक कहाँ ले गये थे ? नन्द बोले सुनो वे पकड़ कर मुझे वरुण के पास ले गये । त्यों ही पीछे से कृष्ण पहुँचे । इन्हें देखते ही वह सिंहासन से उतर पावों पर गिर, अति विनती कर कहने लगा, नाथ ! मेरा अपराध क्षमा कीजै । मुझसे अनजाने यह दोष

हुआ, सो चित्त में न लीजे । इतनी बात नन्दजी के मुख से सुनते ही गोप आपस में कहने लगे कि भाई ! हमने तो यह तभी जाना था जब श्रीकृष्णचन्द्र ने गोवरधन धारण कर ब्रज की रक्षा की, कि नन्द महर के घर में आदि पुरुष ने आय कर अवतार लिया है । ऐसे आपस में बतराय फिर सब गोपों ने हाथ जोड़ श्रीकृष्णजी से कहा महाराज ! आपने हमें बहुत दिन भरमाया, पर अब सब भेद तुम्हारा पाया । तुम्हीं जगत के कर्ता, दुख हर्ता हो। दया कर हमें बैकुण्ठ दिखाइये । इतने वचन सुन श्रीकृष्ण ने क्षण भर में बैकुण्ठ रच उन्हें ब्रज ही में दिखाया । उसे देखते ही ब्रजवासियों को ज्ञान हुआ । तब वे कर जोर, सिर झुकाय बोले, हे नाथ ! तुम्हारी महिमा अपरम्पार है । हम कुछ नहीं कह सकते । पर आपकी कृपा से हमने यह जाना कि तुम नारायण हो । भूमि का भार उतारने संसार में जन्मे हो ।

श्री शुकदेवजी बोले कि महाराज ! जब ब्रजवासियों ने इतनी बात कही तब श्रीकृष्णचन्द्रजी ने सबको मोहित कर जो, बैकुण्ठ की रचना रची थी सो उठाय ली, और अपनी माया फैला दी । तब तो सब गोपियों ने स्वप्न सा जाना और नन्दजी ने भी माया के वश श्रीकृष्ण को अपना पुत्र कर माना ।

दूसरे दिन बन में जाय श्रीकृष्ण जी ने गोपियों को घेर कर कहा कि तुम नित्य मथुरा में गोरस माखन इत्यादि बेचने को जाती हो । इसलिये आज हम को गोरस का दान दो । श्रीराधाजी ने कहा कि मैं यहाँ की रानी हूँ । तुम दान नहीं ले सकते । दोनों पक्षों में झगड़ा हुआ ! तो मोहन ने सब ग्वालियों की मटकियाँ फोड़ दीं । दही मही बहा दिया । तो सबने नन्दरानी से आ कहा कि कृष्ण ने पहले चोरी की और फिर बरजोरी । तो मोहन ने सब ग्वालियों को कहला भेजा फिर ऐसा ही होगा । दूसरे दिन उनकी मटुकियाँ फोड़ दीं । दही मही बहा दिया । गोपियों ने आय नन्दरानी को कहा ।

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे बैकुण्ठचरित्र नाम नवविंशोऽध्यायः ।।२९।।

●

अध्याय—३०

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी महाराज बोले कि महाराज !

दोहा—जैसे हरि गोपिन सहित, कीन्हें राग विलास ।
सो पंचाध्यायी कहैं, जैसी बुद्धि प्रकाश ।।

जब श्रीकृष्ण ने चीर हरे थे तब गोपियों को वचन दिया था कि हम कार्तिक के महीने में तुम्हारे साथ रास करेंगे । तभी से गोपियाँ रास की आस किये, मन में उदास हो, नित उठ कार्तिक मास ही को मनाया करें । उनके मनाते मनाते सुखदाई शरद ऋतु आई ।

चौपाई—लाग्यौ जब से कार्तिक मास । घाम विगत वर्षा को नास ।।
निर्मल जल सरवर भर रहे । फूले कमल होय डुहडहे ।।
कुमुद चकोर कन्त कामिनी । फूलहिं देख चन्द मुस्कानी ।।
चकई मलिन कमल कुम्हिलाने । जे निज मित्र भानु कौ मानै ।।

ऐसे कह फिर शुकदेव मुनि बोले कि पृथ्वीनाथ ! एक दिन श्री कृष्णचन्द्र कार्तिक

पूनों की रात्रि को घर से निकल बाहर आय देखें तो निर्मल आकाश में तारे छिटक रहे हैं। चाँदनी दशों दिशान में फैल रही है। शीतल, सुगन्ध सहित मंद गति से पवन बह रहा है,
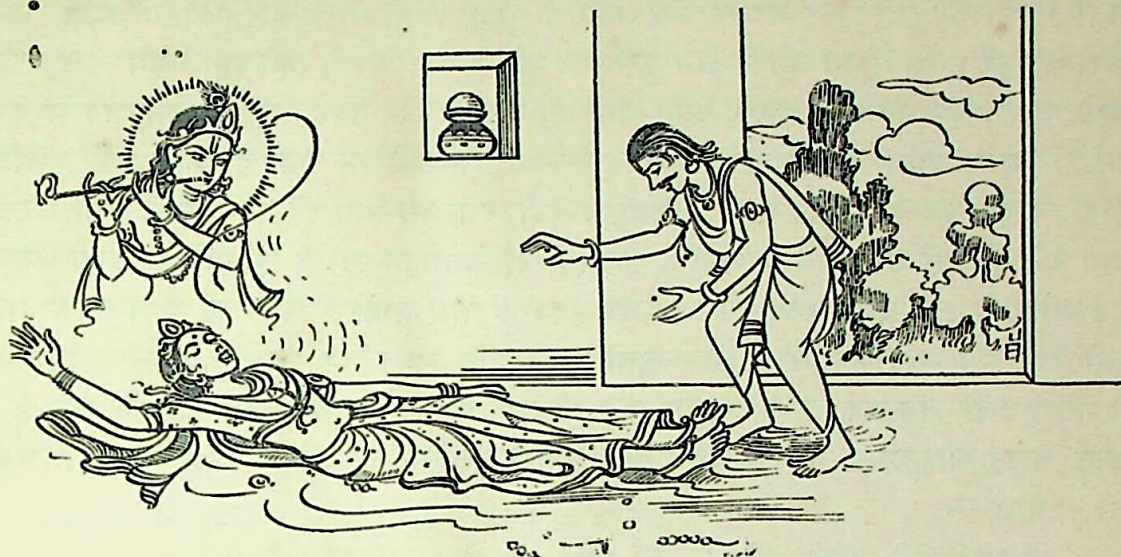
और सघन वन की छबि अधिक ही शोभा दे रही है। उनके मन में आया कि हमने गोपियों को यह वचन दिया था कि शरदऋतु में तुम्हारे साथ रास करेंगे, सो पूरा करना चाहिये। यह विचार कर वन में आय श्रीकृष्ण ने बाँसुरी बजाई। वंशी की ध्वनि सुन सब ब्रज युवती कुल कानि छोड़ गृह काज तज, उलटा पुलटा शृंगार कर उठ धाई। एक गोपी जो अपने पति के पास से उठके चली, तो उसके पति ने बाट में जा रोका और जाने न दिया। तब तो वह हरि का ध्यान कर देह छोड़ सबसे आगे उनसे जा मिली। उसके चित्त की प्रीति देख श्री कृष्णचन्द्र ने तुरत ही उसे मुक्ति दी।

यह सुनकर परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से पूछा कि कृपानाथ ! गोपी ने श्रीकृष्ण जी को ईश्वर जान के तो माना नहीं केवल प्रेम की वासना से भजा। वह मुक्त कैसे हुई, सो समझाय के कहो। श्रीशुकदेव मुनि बोले धर्मावतार ! जो जन श्री कृष्णचन्द्र की महिमा का अनजाने भी गुण गाते हैं वे भी निःसन्देह मुक्ति पाते हैं। जैसे बिन जाने भी यह सब जानते हैं कि पदार्थ का गुण और फल बिना हुए रहता नही। ऐसे ही हरिभजन का प्रताप है, कोई किसी भाव से भजे मुक्ति होयगी अवश्य––

दोहा–जप माला छापा तिलक। सरै न एकौ काम ।।
मन काचे नाँचे वृथा। साँचे राचे राम ।।

और सुनो ! जिन-जिन ने जिस भाव से श्रीकृष्ण को मान के मुक्ति पाई सो कहता हूँ। नन्द-यशोदा ने इनको तो पुत्र कर बूझा, गोपियों ने प्रीतम कर समझा, कंस ने भय कर भजा, ग्वालबालों ने सखा कर जपा, पाण्डवों ने परम मित्र कर जाना, शिशुपाल ने शत्रु कर माना, पर अन्त में मुक्ति पदार्थ सब ही ने पाया। तब एक गोपी जो प्रभु का ध्यान कर तरी उसका क्या अचरज हुआ।

यह सुन राजा परीक्षित से शुकदेव मुनि ने कहा कि हे महाराज ! तिस काल

सब गोपियाँ अपने-अपने झुण्ड लिये श्रीकृष्णचन्द्र के रूप सागर में धायकर यों जाय मिलीं जैसे पानी में पानी जाय मिले। उस समय मोहन के बनाव की शोभा कुछ वर्णी नहीं जाती। वे सब शृंगार कर नटवर वेष धरे ऐसे सुन्दर लगते थे कि ब्रज युवतियाँ छबि देखते ही छकि रहीं। तब मोहन उनकी क्षेम कुशलता पूछ, रूखे हो बोले, कहो रात समय बाल काढ़, उलटे पुलटे वस्त्र आभूषण पहने, अति घबराई, कुटुम्ब की माया तज, इस महावन में कैसे आईं ? ऐसा साहस करना नारियों को उचित नहीं। स्त्री को कहा है कि कायर, कुमति, कपटी, कोढ़ी, काना, अन्धा, लूला, लँगड़ा, दरिद्री कैसा भी पति हो पर उसकी सेवा करना योग्य है। इसी में उसका कल्याण है। कुलवंती पतिव्रता का धर्म है कि पति को क्षण भर न छोड़े और जो स्त्री अपने पुरुष को छोड़ पर पुरुष के पास जाती है सो जन्म जन्म नरक बास पाती है। ऐसे कह फिर बोले कि--सुनो तुमने आय सघन वन, निर्मल चाँदनी और तीर की शोभा देखी, अब घर जा, मन लगाय कंत की सेवा करो। इसमें तुम्हारा सबका भला है। इतना बचन श्रीकृष्ण के मुख से सुनते ही सब गोपियाँ एक बार तो अचेत हो अपार सोच में पड़ीं। पीछे--

चौपाई--नीचे चितै उसामें लईं। पद नख तें भू खोदत भईं।।
यों दृग से छूटी जल धारा। मानों टूटे मोती हारा।।

निदान दुःख से अति घबराय रो-रो कहने लगीं कि अहो कृष्ण ! तुम बड़े ठग हो। पहले तो वंशी बजाय हमारा ज्ञान, ध्यान, तन, मन हर लिया, अब निर्दयी हो कपट वचन कह प्राण लिया चाहते हो ! यों कह पुनि बोलीं।

दोहा--लोग कुटुम घर पति तजे। तजी लोक की लाज।।
हैं अनाथ कोऊ नहीं। राखु शरण वृजराज।।

और जो जन तुम्हारे चरणों में रहते हैं सो धन, लाज, बड़ाई नहीं चाहते उनके तो तुम्हीं जन्म-जन्म के कन्त हो।

चौपाई--करि हैं कहा जाय हम गेह। उरझे प्राण तुम्हारे नेह।।

इतनी बात के सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र ने मुस्कराय सब गोपियों को निकट बुलाय के कहा, जो तुम राजी हो तो खेलो रास हमारे संग। यह वचन सुन दुख तज गोपियाँ प्रसन्नता से चारों ओर घिर आईं और हरि मुख निरखि लोचन सफल करने लगीं--

दो०--ठाढ़े बीच जु श्याम घन, इति छवि कामिन केलि।
मनहु नीलगिरि के तरे, उलझी कंचन बेलि।।

आगे श्रीकृष्ण ने अपनी माया को आज्ञा दी कि हम रास करेंगे। उसके लिए तू एक अच्छा स्थान रच और यहीं रह। जो-जो जिस वस्तु की इच्छा करे सो सो लाय दीजो। उसने यह सुनते ही यमुना के तीर जाय एक कंचन का मंडलाकार चबूतरा बनाय मोती हीरे जड़, उसके चारों ओर सपल्लव केले के खंभ लगाये, तिनमें बन्दनबार और भाँति-भाँति के फूलों की माला बाँध आयकर श्रीकृष्णचन्द्र से कहा। ये सुनते ही प्रसन्न हो सब ब्रजवासियों को साथ ले वे जमुना तीर को चले। वहाँ जाय देखें तो चन्द्रमण्डल से रासमण्डली की चौगुनी शोभा हो रही है। उसके चारों ओर चाँदनी सी खिल रही है, सुगन्धित शीतल मीठी-मीठी पवन चल

रही है ।०एक ओर सघन वन की हरियाली उजाली रात में अधिक ही छबि दे रही है । मान-सरोवर नामका एक सरोवर था तिसके तीर जाय मन भाव ते सुथरे वस्त्र-आभूषण पहर, नख-सिख से शृंगार कर अच्छे बाजे बीणा पखावज आदि सुर बाँध बाँध ले आईं, और लगीं प्रेममद माती हो, सोच-संकोच तज, श्रीकृष्ण के साथ मिल बजाने, गाने, नाचने। उस समय श्री गोविन्द गोपियों की मण्डली के मध्य ऐसे सुहावने लगते थे जैसे तारों के मंडल में चन्द्रमा शोभा देता है । इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले सुनो महाराज ! जब गोपियों ने ज्ञान-विवेक छोड़ रास में हरि को विषयी पति कर माना और अपने आधीन जाना, तब श्रीकृष्णचन्द्रजी ने मन में ऐसे विचारा कि—

चौपाई–अब मोहि इन अपने वश मान्यो । पति विषयी सम मन में आन्यो ।।
भईं अजान लाज तजि देह । लपटहिं पकरहिं कन्त सनेह ।।
ज्ञान ध्यान मिलके विसरायो । छोड़ लाज इन गर्व वढ़ायो ।।

देखूँ मुझ बिन पीछे ये क्या करती हैं और कैसे रहती हैं। ऐसे विचार कर श्री राधिकाजी को साथ ले श्रीकृष्णचन्द्र अन्तरध्यान हुए ।

इति श्री लल्लूलालकृत प्रेमसागरे रासक्रीड़ारम्भोत्रिंशतितिरोध्यायः ।।३०।।

अध्याय–३१

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज ! एकाएकी श्रीकृष्णको न देख गोपियों की आँखों के आगे अँधेरा हो गया । वे ऐसे घबराईं जैसे मणि खोय सर्प घबराता है। इतने में एक गोपी कहने लगी—

दोहा--कहो सखी मोहन कहाँ, गये हमें छिटकाय।
मेरे गरे, भुजा धरे, रहे हुते उर लाय ।।

अभी तो हमारे सङ्ग हिल-मिल रास-बिलास कर रहे थे। इतने ही में कहाँ गये? तुममें से किसी ने भी जाते न देखा। यह वचन सुन गोपियाँ विरह की मारी भिपट उदास हो हाथ मार बोलीं--

दोहा--कहाँ जायँ, कैसी करें, कासों कहैं पुकारि।
हैं कित कछू न जानिये, क्यों कर मिलैं मुरारि ।।

ऐसे कह हरि मदमाती हो सब गोपी लगीं चारों ओर ढूँढ़-ढूँढ़ गुण गाय गाय रो-रो यों पुकारने--

हम को क्यों छोड़ौ व्रजनाथ। सर्वस दियौ तुम्हारे हाथ ।।

जब वहाँ न पाया तब आगे जाय आपस में बोलीं, सखी ! यहाँ तो हम किसी को नहीं देखतीं, किस से पूछें कि किधर गए। यों सुन एक गोपी ने कहा सुनो आली ! एक बात मेरे जी में आई है कि यह जितने इस वन में पशु पक्षी और वृक्ष हैं, सब ऋषि मुनि हैं। ये कृष्ण लीला देखने को अवतार ले यहाँ आये हैं। इन्हीं से पूछें। ये यहाँ खड़े देखते हैं। जिधर गये होंगे उधर बता देंगे। इतना वचन सुनते ही सब गोपियाँ विरह से व्याकुल हो क्या जड़ क्या चेतन लगीं एक-एक से पूछने--

हे वड़ पीपल पाकर बीर। लह्यौ पुन्य कर उच्च शरीर ।।
वकला फूल मूल फल डार। तिन सों करत पराई सार ।।
सवकौ मन धन हर नँदलाल। गये किधर को कहौ दयाल ।।
अहो कदम्ब अम्ब कचनारी। तुम कहुँ देखे जात मुरारी ।।
हे अशोक चम्पा कर बीर। जात लखे तुमने वलवीर ।।
हे तुलसी अति हरिको प्यारी। ज्ञान ने कवहु न राखत न्यारी ।।
फूली आज मिले हरि आय। हमहूँ सो किन देति वताय ।।
जुही जुही मालती भाई। इत से निकले कुँअर कन्हाई ।।
मृगहिं पुकारि कहैं व्रजनारी। इत तुम जात लखे वनवारी ।।

फिर शुकदेव जी बोले कि महाराज ! सब गोपी पशु, पक्षी, द्रुम, बेल से पूछती श्रीकृष्ण प्रेम में हो लगीं, पूतना, दावा आदि सब श्रीकृष्ण की करी हुई बाल लीला करने और ढूँढ़ने। निदान ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कितनी एक दूर जाय, देखें तो श्रीकृष्ण के चिन्ह कमल, यव, ध्वजा, अंकुश समेत रेत पर जगमगा रहे हैं। देखते ही ब्रज युवतियाँ जिस रज को सुर नर मुनि खोजते हैं तिस रज को दण्डवत कर सिर चढ़ाय हरि के मिलन की आशा कर वहाँ से बढ़ीं तो देखा कि उन चरण चिन्हों के आसपास एक नारी के भी पाँव उभड़े हुये हैं। यह देख अचरज कर आगे जाय देखें तो एक ठौर कमल पत्ता के बिछौना पर सुन्दर जड़ाऊ दर्पण पड़ा है। उससे लगीं पूछने। जब बिरह भरा वह भी न बोला तब उन्होंने आपस में पूछा कहो आली ! यह क्यों कर लिया। उसी समय जो पिया प्यारे के मन की जानती थी, उसने उत्तर दिया कि सखी ! जब प्रीतम प्यारी की चोटी गूँथन बैठे और सुन्दर बदन बिलोकने में अन्तर हुआ तिस बिरियाँ

प्यारी ने दर्पण हाथ में ले पिया को दिखाया। तब श्री मुख का प्रतिबिम्ब सन्मुख आया। यह बात सुन गोपियाँ कुछ न बोलीं वरन् कहने लगीं कि उसने शिव पार्वती को अच्छी रीति से पूजा है और बड़ा तप किया है, प्राणपति के साथ एकान्त में निधरक बिहार करती है। हे महाराज! सब गोपियाँ तो इधर विरह मदमाती बक-बक, झक झक ढूँढ़ती फिरती थीं उधर श्रीराधिकाजी हरि के साथ अधिक सुख मान, प्रीतम को अपने वश जान, अपने को सबसे बड़ा जी में ठान, अभिमान में आन बोलीं कि प्यारे! अब मुझसे चला नहीं जाता, काँधे चढ़ाय ले चलिये। इतनी बात के सुनते ही गर्व प्रहारी अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र जी ने मुस्कराय के बैठकर कहा कि आइये हमारे काँधे पर चढ़ लीजिये। जब वह हाथ बढ़ाय चढ़ने को तैयार हुई तब श्रीकृष्ण अन्तर्ध्यान हुए। जो हाथ बढ़ाये सो हाथ पसारे खड़ी रह गईं। गोरे तन की ज्योति छूट क्षिति पर छाय यों छवि दे रही थी मानों सुन्दर कंचन की मूर्त्ति भूमि पै खड़ी है। नयनों से जल की धार बह रही है और जो सुवास के वश मुख के पास भँवर आय-आय बैठते थे तिन्हें भी उड़ाय न सकती थी और हाय-हाय कर बन में विरह की मारी इस भाँति रो रही थी कि जिसके रोने की धुनि सुनि सब रोते थे। पशु पक्षी और द्रुम बेली सबसे यों कह रही थीं——

चौपाई—हा हा नाथ परम हितकारी। कहाँ गये स्वच्छन्द विहारी।।
चरण शरण दासी मैं तेरी। कृपा सिन्धु लीजै सुधि मेरी।।

इतने में सब गोपियाँ भी ढूँढ़ती-ढूँढ़ती उसके पास जा पहुँची और उसके गले लग सबों ने मिल-मिल ऐसा सुख माना कि जैसे कोई महा धन खोय आधा धन पाय सुख माने। निदान सब गोपियाँ भी उसे दुखित जान साथ-साथ ले महावन में पैठीं। जब सघन वन के अँधेरे में बाट न पाई तब वे सब वहाँ से धीरज धर मिलने की आशा कर यमुना के उसी तीर पर आय बैठीं जहाँ श्रीकृष्णचन्द्रजी ने अधिक सुख दिया था।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागरे गोपीविरह नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ।।३१।।

अध्याय—३२

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज! सब गोपियाँ यमुना तीर बैठ प्रेम मदमाती हरि के चरित्र और गुण गाने लगीं कि प्रीतम जब से तुम ब्रज में आये, तब से नये-नये सुख आकर छाये, लक्ष्मी ने करी तुम्हारे चरण की आशा, अचल आय के किया है बासा। गोपी हैं दासी तुम्हारी सुध लीजिये दया कर हमारी। जब से सुन्दर साँवली सलोनी मूर्ति देखी है तेरी तब से हुई हैं बिन मोल की चेरी। अब करुणा कीजै, बेग दर्शन दीजै। जो तुम्हें मारना ही था तो हमको विषधर आग और जल से किस लिए बचाया! तभी मरने क्यों न दिया। तुम केवल यशोदा सुत नहीं हो तुम्हें तो ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादि, सब देवता विनती कर लाये हैं संसार की रक्षा के लिए, हे प्राणनाथ! हमें एक अचरज बड़ा है कि जो अपने ही को मारोगे तो करोगे किसकी रखवाली! प्रीतम तुम अन्तर्यामी हो हमारे दुःख हर मन की आशा पूरी क्यों नहीं करते। हम दुख पाती हैं, और जिस समय तुम गौ चरावन जाते थे बन में, हमें चार प्रहर चार युग से जाते थे। जब

सम्मुख बैठ सुन्दर बदन निहारती थीं तब अपने जी में बिचारती थीं कि ब्रह्मा बड़ा मूर्ख है जो पलकें हैं हमारे वे इक टक देखने में बाधा डालने को बना दीं । इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज इसी रीति से गोपी विरह की मारी श्रीकृष्णचन्द्र के गुण और चरित्र गाय-गाय हारीं तिस पर भी न आये बन बिहारी । तब तो निपट निराश हो, अति आधी रात में अचेत हो गिर-गिर ऐसे रोय पुकारीं कि सुनकर चर अचर भी दुखित भये भारी ।

इति श्री लल्लूलालकृत प्रेमसागरे गोपीविरह नामकथन द्वित्रिशोऽध्यायः ।।३२।।

अध्याय–३३

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! श्रीकृष्णचन्द्र अन्तर्यामी ने जाना कि अब ये गोपियाँ हम बिना जीती न बचेंगी ।

छं०–तव तिनही में प्रगट भये नन्द नन्दन यों । दृष्टि वन्द कर छिपे, फेर प्रगटे नटवर ज्यों ।।
आये हरि देखे जवै, भई सवै यों चेत । प्राण परे ज्यों मृतक के, इन्द्री जगै अचेत ।।
विन देखे सवको मन व्याकुल होत भयौ । मानों मन भव भुजंग, स्वामिन डसके गयौ ।।
पीर खरी पिय जान, पहुंचे हैं फिर । अमृत वेलिन सींच, लई पुनि जियाय के ।।

दोहा–मनहु कमल निशि, कमल ऐसे हो वृजलाल ।
कुण्डल रवि को देखिके, फूले नयन विशाल ।।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकंद को देखते ही सब गोपियाँ एकाएकी विरह सागर से निकल उनके पास जाय बड़ी प्रसन्न हुईं । घेरकर खड़ी भईं । तब श्रीकृष्ण उन्हें साथ लिये वहाँ आये जहाँ पहले रास-बिलास किया था । जाते ही एक-एक गोपी ने अपनी ओढ़नी उतार के श्रीकृष्ण के बैठने को बिछा दी । जब इस पर बैठे

तो कई एक गोपी क्रोधकर बोली कि महाराज ! तुम बड़े कपटी हो बिराना तन, धन लेना जानते हो पर किसी का गुण नहीं मानते !

दोहा–गुणहि छांड़ि अवगुण गहे, कपट रह्यो मन भाय ।
देखो सखी विचार के, तासों कहा वसाय ।।

वह बोली कि सखी ! तुम अलग ही रही मैं कृष्ण ही से कहावती हूँ, तब मुस्कराय के श्रीकृष्ण से पूछा कि महाराज एक बिन अवगुण किये गुण मान ले दूसरा किये पर उसका पलटा दे, तीसरा गुण के पलटे अवगुण करे, चौथा किसी के किये गुण को भी मन में न धरे, इन चारों में कौन भला है और कौन बुरा यह समझाय के कहो । श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि भला और बुरा मैं बुझा कर कहता हूँ । उत्तम तो वह है जो बिन किये करै जैसे पिता पुत्र को चाहता है और किये पर करने से कुछ पुण्य नहीं, सो ऐसे हैं जैसे बेटा के हेतु गौ दूध देती है । गुण को अवगुण मानें तिसै शत्रु जानिये । उससे बुरा कृतघ्नी जो किये को मेटे । इतना वचन सुनते ही सब गोपियाँ आपस में एक का एक मुख देख-देख हँसने लगीं । तब तो श्रीकृष्णचन्द्र घबरा के बोले कि सुनो मैं इन चारों की गिनती में नहीं जो तुम जानके हँसती हो वरन् मेरी तौ यह रीति है कि जो मुझसे जिस बात की इच्छा रखता है तिसके मन की वाँछा पूरी करता हूँ । मैंने तुम्हारी प्रीति परीक्षा के लिये छोड़ी । इस बात का बुरा मत मानो, सुनो सच्चा ही जानों, यों कह फिर इस प्रकार बोले---

चौपाई–अव हम परचौ लियौ तिहारौ । कीन्हो सुमिरअ ध्यान हमारौ ।।
मो सों तुमने प्रीति वढ़ाई । निर्धन वनों सम्पदा पाई ।।
ऐसे आयी मेरे काज । छांड़ लोक वेद की लाज ।।

जो ब्रह्मा के सौ वर्ष जियें तौ भी हम तुम्हारे ऋण से उऋण न होंयगे ।

इति श्री लल्लूलालकृत प्रेमसागरे गोपीकृष्णसम्वाद नाम त्र्यतिंशोऽध्यायः ।।३३।।

अध्याय–३४

श्रीशुकदेव मुनि बोले राजन् ! जब श्रीकृष्णचन्द्र ने इस ढब से रस के वचन कहे तब तो सब गोपियाँ रिस छोड़ प्रसन्न हो उठ हरि से मिल भाँति-भाँति के सुख मान आनन्द में मग्न हो कौतूहल करने लगीं तिस समय---

दोहा---कृष्ण अंश माया ठई, गए अंश वहु देह ।
सवको सुख चाहत दियो, लीला परम सनेह ।।

महाराज ! जितनी गोपियाँ थी तितने ही शरीर श्री कृष्णचन्द्र ने धर उसी रास मण्डल के चबूतरे पर सब को साथ ले रास विलास को आरम्भ किया !

द्वै द्वै गोपी जोरें हाथ । तिनके बीच बीच हरि साथ ।।
अपने अपने ढिग सव जानें । नहीं दूसरे को पहिचानें ।।
अँगुरन में अँगुरी कर दिये । प्रफुल्लित फिरें सङ्ग सव लिये ।।
विच गोरी विच नन्द किशोर । सघन घटा दामिन चहुँ ओर ।।
श्याम कृष्ण गोरी ब्रजवाल । मानहु कनक नील मणिमाल ।।

महाराज ! उसी रीति से खड़े हो गोपी और कृष्ण लगे अनेक अनेक प्रकार के यन्त्रों के स्वर मिलाय-मिलाय कठिन-कठिन राग अलाप पर बजाने व गाने और तीखो चोटी ओढ़ी, ड्यौढ़ी, दुगुन की तानें ले-ले उपजबाल बजा-बजा नाचने और आनन्द में मग्न ऐसे हुए कि उन गोपियों को तन मन की भी सुधि न रही । इधर मोतियों के हार टूट-टूट गिरते उधर वनमाला से फूल गिरते थे और पसीने की बूंदें माथे पर मोतियों की लड़सी चमकती थी और गोपियों के गोरे-गोरे मुखड़ों पर अलकें बिखर रही थीं । कभी कोई गोपी आ श्रीकृष्णजी की मुरली के साथ मिलकर राग को गाती थी । कभी कोई अपनी तान अलग ही ले जाती थी और वंशी को छेड़ उसकी तान समझ ज्यों त्यों गले से निकालती थीं । तब हरि ऐसे भूले रहते कि ज्यों बालजर्क दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देख भूले रहे और परस्पर रीझ हँस-हँस कंठ लगाय-लगाय वस्त्र आभूषण निछावर कर रहे थे । तिस काल ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि सब देवता गन्धर्व सहित अपनी-अपनी स्त्रियों समेत विमानों में बैठ रास मण्डली का सुख देख आनंद से फूल बरसाने लगे और उनकी स्त्रियाँ वह सुख लख होंस भर मन में कहतीं कि जो जन्म ले ब्रज में जातीं तो हम भी हरि के साथ रास विलास करतीं । वह रात इतनी बड़ी हुई कि छः महीने बीत गये और किसी ने न जाना तभी से उस रैन का नाम महारात्रि हुआ ।

फिर शुकदेवजी बोले पृथ्वीनाथ ! रासलीला करते-करते यों श्रीकृष्णचन्द्र के मन में तरङ्ग आई तो गोपिकाओं को ले यमुना तीर पर जाय, नीर में पैठ, जल क्रीड़ा कर, श्रम मिटाय, बाहर आय, सबके मनोरथ पूरे कर बोले कि अब चार घड़ी रात बाकी रही है तुम सब अपने-अपने घर जाओ । इतना वचन सुन, उदास हो गोपियों ने कहा नाथ ! आपके चरण कमल छोड़ के घर कैसे जावें ? तब श्रीकृष्ण बोले कि सुनो जैसे योगीजन मेरा ध्यान धरते हैं तैसे तुम भी ध्यान कीजियो । मैं तुम्हारे पास जहाँ रहोगी तहाँ रहूँगा । इतनी बात के सुनते ही सन्तोष कर सब बिदा हो अपने-अपने घर गईं और यह भेद उनके घरवालों में से किसी ने न जाना कि ये यहाँ न थीं ।

तब राजा ने मुनि से पूछा कि दीनदयाल ! यह तुम मुझे समझा कर कहो कि श्री कृष्णचन्द्र तो असुरों को मार पृथ्वी का भार उतारने और साधु सन्तों को सुख दे धर्म का पंथ चलाने के लिए अवतार ले आये थे । उन्होंने पराई स्त्रियों के साथ रास बिलास क्यों किया । यह तो कुल लंपट का जैसा कर्म है, जो बिरानी नारि से भोग करे, श्रीशुकदेवजी बोले——

चौपाई—सुन राजा यह भेद न जान्यो । मानुष सम परमेश्वर मान्यो ।
जिनके सुमिरे पातक जात । तेजवन्त पावन सो गात ।।
जैसे अग्नि माँझ कछु परै । सोऊ अग्नि होम के जरै ।।

जैसे शिवजी ने विष पिया और उससे कण्ठ को भूषण दिया, और काले साँप का किया हार, कौन जाने उनका व्यवहार । वे तो अपने लिए कुछ भी नहीं करते । जो उनका भजन सुमिरन कर कोई वर माँगता है, तैसा ही तिसको फल देते हैं । उनकी तो यह रीति है कि सबसे मिले हुए दृष्टि आते हैं और ध्यान कर देखिये तो सबसे ऐसे अलग लगते हैं जैसे कमल का पत्ता और गोपियों की उत्पत्ति तो मैं पहले ही सुना चुका हूँ कि वेद और वेद की ऋचायें

हरि दरश परश करने को ब्रज में जन्म ले आई हैं और इसी भाँति श्रीराधिका भी ब्रह्मा से वर पाय श्रीकृष्णचन्द्रजी की सेवा करने को जन्म ले आईं और प्रभु की सेवा में रहीं। हरि का चरित्र मान लीजे पर उनकी करनी में मन न दीजे। जो कोई गोपीनाथ का यश गाता है तो निश्चय परमपद पाता है, और जैसा फल होता है अरसठ तीर्थ के न्हान में तैसा ही फल मिलता है श्रीकृष्ण यश गान में।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागरे चतुर्तिशतिरध्यायः ।।३४।।

अध्याय–३५

श्रीशुकदेव मुनि कहने लगे कि राजन् ! जैसे श्रीकृष्णजी ने विद्याधर को तारा और शंखचूड़ को मारा सो प्रसङ्ग कहता हूँ। तुम ध्यान लगाय सुनो। एक दिन नन्दजी ने सब ग्वालवालों को बुलाय के कहा कि भाइयो। जब श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था, तब मैंने कुलदेवी अम्बिका की मानता करी थी। जिस दिन श्रीकृष्ण बारह वर्ष का होगा तिस दिन नगर समेत बाजे से जाकर पूजा करूँगा। सो दिन उनकी कृपा से आज देखा। अब चलकर पूजा करनी चाहिये। इतना वचन सुनते ही सब गोप ग्वाल झटपट अपने-अपने घरों से पूजा की सामग्री ले आये। तब तो नन्दराय कुटुम्ब समेत उनके साथ हो लिए और चले-चले अम्बिका के स्थान पर पहुँचे। वहाँ जाय सरस्वती नदी में नहाय नन्दजी ने पुरोहित बुलाय सब को साथ ले देवी के मन्दिर में जाय शास्त्र की रीति से पूजा की और परिक्रमा दे हाथ जोड़ बिनती कर कहा कि माँ ! आपकी कृपा से कान्हा बारह वर्ष का हुआ। ऐसे कह दण्डवत कर मन्दिर के बाहर आय सहस्रों ब्राह्मण जिमाये। इसमें अबेर जो हुई तो सब ब्रजवासियों समेत नन्दजी तीर्थ व्रत कर वहाँ ही रहे। रात को सोते थे कि अकस्मात् अजगर ने आय नन्दराय का पाँव

पकड़ा और लगा निगलने। तब तो वे देखते भय खाय घबराय के लगे पुकारने, हे कृष्ण! बेग सुधि लो नहीं तो यह मुझे निगले जाता है। उनका शब्द सुनते ही सारे ब्रजवासी स्त्रियाँ पुरुष नींद से चौंक नन्दजी के निकट जाय उजाला कर देखें तो एक अजगर उनका पाँव पकड़े खड़ा है। इतने में श्रीकृष्ण जी भी पहुँचे सबके देखते ही ज्यों ही उसकी पीठ में चरण लगाया, त्यों ही वह अपनी देह छोड़ सुन्दर पुरुष हो प्रणाम कर सन्मुख हाथ जोड़े खड़ा हुआ। तब श्रीकृष्ण ने उससे पूछा कि तू कौन है और किस पाप से अजगर हुआ था सो कह। वह बोला अन्तर्यामी! तुम सब जानते हो मेरी उत्पत्ति कि मैं सुदर्शन नाम का विद्याधर हूँ। सुरपुर में रहता था और अपने गुण के आगे गर्व से किसी को कुछ न गिनता था। एक दिन विमान में बैठ फिरने को निकला तो जहाँ अङ्गिरा ऋषि बैठे तप करते थे तिनके ऊपर ही सौ बेर आया गया। जैसे ही उन्होंने विमान की परछाहीं देख ऊपर देखा तो क्रोधकर मुझे शाप दिया कि अभिमानी! तू अजगर हो। इतना वचन उनके मुख से निकला कि मैं अजगर हो नीचे गिरा, तिस समय ऋषि ने कहा कि तेरी मुक्ति श्रीकृष्णचन्द्र के हाथ होगी। इसलिये मैंने नन्दरायजी के चरण आन पकड़े थे, कि आप आयके मुझे मुक्त करें। सो हे कृपानाथ! आपने आय कृपा कर मुक्ति दी। ऐसे कह विद्याधर तो परिक्रमा दे हरि से आज्ञा ले दण्डवत कर विदा हो, विमान पर चढ़ सुरलोक को गया। यह चरित्र देख सब ब्रजवासियों को अचरज हुआ। निदान, भोर होते ही देवी के दर्शन कर सब मिल वृन्दावन को आये।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि पृथ्वीनाथ! एक दिन हलधर और गोविन्द गोपियों समेत चाँदनी रात में आनन्द से वन में गाय रहे थे कि इस बीच कुबेर का सेवक शङ्खचूड़ नाम यक्ष जिसके शीश में मणि थी और अति बलवान था, सो आ निकला। देखें तो एक ओर सब गोपी यूथ कुतूहल कर रहा है वहीं एक ओर कृष्ण बलदेव मग्न हो दत्तचित गाय रहे हैं। इसके जी में जो कुछ आई तो सब ब्रजयुवतियों को घेर आगे कर ले चला। तिस समय भय खाय पुकारीं ब्रज बाम, रक्षा करो कृष्ण बलराम। सब गोपियों के मुख से ये वचन निकलते ही, सुनकर दोनों भाई रूख उखाड़ हाथों में ले यों दौड़े आये कि मानों सिंह माते गज पर उठ धाये और वहाँ जाय गोपियों से कहा कि तुम किसी भाँति मत डरो, हम आन पहुँचे। इनको काल समान देखते ही यक्ष भय मान व गोपियों को छोड़ अपने प्राण ले भागा। उस काल नन्दलाल ने बलदेवजी को तो गोपियों के पास छोड़ा और आप जाय उसके झोंटे पकड़ पछाड़ा। निदान तिरछा हाथ कर उसका सिर काट मणि ले बलराम जी को दी।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागरे पञ्चत्रिंशतिरध्यायः ।।३५।।

अध्याय—३६

श्रीशुकदेव मुनि बोले—हे राजन्! जब तक हरि वनमें धेनु चरावें तब तक सब ब्रजयुवतियाँ नन्द रानीके पास आय बैठ कर प्रभु का यश गावें। जो लीला श्री कृष्ण वन में करें सो ही गोपियाँ घर बैठीं उच्चारें—

चौपाई–सुनों सखी बाजत है बैन। पशु पक्षी पावत हैं चैन ।।
पति सँग देवी चढ़ीं विमान। मगन भई हैं धुनि सुन कान ।।
प्रिय सँग मृगी थकीं सुनि वेनु। यमुना फिरी घिरीं तहँ धेनु ।।
मोहे वादर छैयाँ करैं। मानो छत्र कृष्ण पर धरैं ।।
सव हरि सहित कुंज को धाये। पुनि सव वंशीवट तर आये ।।
साँझ भई अव उलटे हरी। राँभति गाय वेणु धुन करी ।।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज इसी रीति से नित गोपियाँ दिन भर हरि के गुण गावें और साँझ समय आगे जाय आनन्दकन्द श्रीकृष्ण से मिल सुख मान घर ले आवें और तिस समय यशोदारानी भी रजमण्डित पुत्र का मुख प्यार से पोंछ कण्ठ से लगाय अतीव सुख मानें।

इति श्री लल्लूलालकृत प्रेमसागरे षष्ठत्रिंशतिऽध्यायः ।।३६।।

अध्याय–३७

श्रीशुकदेवजी बोले महाराज ! एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र बलराम साँझ समय धेनु चराय के वन से घर को आते थे। उस बीच में एक दैत्य अति बड़ा बैल बनकर आय गायों में मिल गया।

तिन आकाश लों देही धरी। पीठ कड़ी पाथर सी करी ।।
वड़े सींग तीछन दोउ खुरे। रक्त नयन अति ही रिस भरे ।।
पूंछ उठाय फुंकारत फिरैं। रहि रहि मूतै गोवर करैं ।।
फड़कै कन्ध हिलावै कान। गये देव सव छोड़ विमान ।।

खुर सों खोदै नदी करारे। पर्वत उलट पीठ सों डारे ।।
सबकौं त्रास भयौ तेहि काल। काँपें लोकपाल दिगपाल ।।

उसे देखते ही सब गाय तो जिधर-तिधर फैल गईं और ब्रजवासी दौड़े वहाँ आये जहाँ सब के पीछे कृष्ण बलराम चले आते थे। प्रणाम कर बोले महाराज! आगे एक अति, बलवान बैल खड़ा है,उससे हमें बचाओ। इतनी बात के सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि तुम कुछ मत डरो, वह राक्षस वृषभ का रूप धर के आया है। निकट जाय के बोले वनवारी हमारे पास आया कपट-तनुधारी। तू और किसी को क्यों डराता है, मेरे निकट किस लिये नहीं आता है। कह, फिर ताल ठोंक ललकारा, आ मुझसे संग्राम कर। वह बचन सुनते ही असुर ऐसे क्रोध कर धाया कि मानों इन्द्र का बज्र आया। ज्यों-ज्यों हरि उसे हटाते थे त्यों त्यों वह सँभल-सँभल कर बढ़ा आता था। एक बार ज्यों ही उन्होंने उसे दे पटका त्यों ही खिजला कर उठा और दोनों सींगों से उसने हरि को दबाया तो श्रीकृष्णजी ने भी फुरती से निकल झट पाँव पर पाँव दे उसके सींग पकड़ कर मरोड़ा कि जैसे कोई भीगे चीर को निचोड़े। निदान, वह पछाड़ खाय गिरा और उसका जी निकल गया। इस बीच श्रीराधिकाजी ने आ हरि से कहा कि महाराज बृषभ रूप जो तुमने मारा इसका पाप हुआ, इससे अब तुम तीर्थ न्हाय आवो। तब किसी को हाथ लगावो। इतनी बात के सुनते ही प्रभु बोले कि सब तीर्थों को मैं ब्रज में ही बुलाये लेता हूँ। यों कह गोवर्धन के निकट जाय दो औड़े कुण्ड खुदवाये। तहाँ ही सब तीर्थ देह धर आये और अपना-अपना नाम व धाम कह कर उनमें जल डाल-डाल चले गये। तब श्रीकृष्णचन्द्र उनमें स्नान कर बाहर आये। अनेक गौ दान दे, बहुत से ब्राह्मण जिमाय, शुद्ध भये और उसी दिन से कृष्ण कुण्ड राधा कुण्ड के नाम से वे प्रसिद्ध हुए। यह प्रसंग सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज! एक दिन नारदजी कंस के पास आये और उसका कोप बढ़ाने को उन्होंने बलराम और श्याम के होने, माया के आने और कृष्ण के जीने का भेद समझा कर कहा। तब कंस क्रोध कर बोला नारदजी! तुम सच कहते हो——

दोहा——प्रथम दियौ सुत आनि के, मन परतीत वढ़ाय।
ज्यों ठग कछू दिखाय के सर्वसु ले भजि जाय ।।

इतना कह वसुदेव जी को बुलाय पकड़ बाँधा, और खांड़े पर हाथ धर अकुला कर कंस यों बोला——

चौपाई—मिला रहा कपटी तू मुझे। भला साधु जाना मैं तुझे ।।
दिया नन्द के कृष्ण पठाय। देवी हमें दिखाई आय ।।
मन में कछू कही कछु और। मारूँ अवशि आज इहि ठौर ।।
मित्र सगा सेवक हितकारी। करै कपट पाप अति भारी ।।

ऐसे बक झक कर नारदजी से कहने लगा कि महाराज! हमने कुछ इसके मन का भेद न पाया। हुआ लड़का और कन्या को ला दिया जिसे कहा अधूरा गया सोई जा गोकुल में बलदेव भया। इतना कह क्रोध कर होठ चबाय खड़ग उठाय ज्यों चाहा कि बसुदेव को मारूँ त्यों ही नारद मुनि ने हाथ पकड़ कहा राजा! बसुदेव को तू रख आज, और जिसमें कृष्ण

बलराम आवें सो कर काज । ऐसे समझाय बुझाय जब नारद मुनि चले गये तब कंस ने बसुदेव देवकी को किसी एक कोठरी में मूंद दिया और आपने भयातुर हो केशी नामक राक्षस को बुलाय के कहा ।

चौपाई–महावली तू साथी मेरा । वड़ा भरोसा मुझको तेरा ।।
एक वार तू व्रज में जा । राम कृष्ण हत मुझै दिखा ।।

इतना बचन सुनते ही केशी तो आज्ञा पाय बिदा हो दण्डवत् कर वृन्दावन को गया और कंस ने शलतोष, चाणूर, अरिष्ट, व्योमासुर आदि जितने मन्त्री थे सब को बुला भेजा । वे आये, तिन्हें समझा कर कहने लगा कि मेरा बैरी पास बसै है तुम अपने जी सोच विचार करके मेरे मन का जो शूल खटकता है सो निकालो । मन्त्रीं बोले पृथ्वीनाथ ! आप महाबली हो, किससे डरते हो ? राम-कृष्ण का मारना क्या बड़ी बात है । कुछ चिन्ता मत करो । जिस छल बल से वे यहाँ आवें सोई हम तुम्हें बतावें । पहले तो यहाँ भली भाँति एक ऐसी सुन्दर रङ्गभूमि बनवावें कि जिसकी शोभा सुनते ही देखने को नगर-नगर गाँव-गाँव के लोग उठ धावें । पीछे महादेव का यज्ञ कराओ और होम के लिये बकरे, भैंसे मँगवाओ । यह समाचार सुन सब व्रजवासी भेंट लावेंगे जिसके साथ राम-कृष्ण भी आवेंगे । इन्हें तभी कोई सहज में पछाड़ेगा या कोई और ही बली पौर में मार डालेगा । इतनी बात के सुनते ही––

सो०–कहै कन्स, मन लाय, भलौ मतौ मन्त्री दियौ ।।
लीने मल्ल बुलाय, आदर कर वीरा दियौ ।।

फिर सभा में आय अपने बड़े-बड़े राक्षसों से कहने लगा कि जब हमारे भानजे राम-कृष्ण यहाँ आवें तब तुममें से कोई उन्हें मार डालियो तो मेरे जी का खटका जाय । यों समझाय पुनः महावत को बुलाकर बोला कि तेरा जो सब से मतवाला हाथी है उसे द्वार पर खड़ा करियो । जब वे दोनों आवें और द्वार में पाँव दें तब तू हाथी से चिथा डालियो । किसी भाँति भागने न पावें । जो उन दोनों को मारेगा सो मुँह माँगा इनाम पावेगा । ऐसा सबको समझाया । कार्त्तिक बदी चौदस को शिव का यज्ञ ठहरा । कंस ने साँझ समय अक्रूर को बुलाय अति भाव भक्ति कर घर भीतर ले जाय सिंहासन पर अपने पास बैठाय हाथ पकड़ अति प्यार से कहा कि तुम यदुकुल में सबसे बड़े ज्ञानी धर्मात्मा धीर हो । इसलिए तुम्हें सब जानते हैं, मानते हैं । ऐसा कोई नहीं जो तुम्हें देख सुखी न होय । इससे हमारा काम करो कि एक बेर वृन्दावन जाओ और देवकी के दोनों लड़कों को जैसे बने तैसे यहाँ ले आवो । मेरा मन देखना चाहता है । तुम्हें तो हमारी बात की लाज है अधिक क्या कहेंगे ? जैसे बनै तैसे तुम राम-कृष्ण को ले आवो । इतनी बात कह कर कंस फिर अक्रूर को समझाने लगा कि तुम बृन्दावन में जाय नन्द के यहाँ कहियो कि यज्ञ है, धनुष यज्ञ है और अनेक-अनेक प्रकार के कौतूहल वहाँ होंगे । यह सुन नन्द, उपनन्द, गोपों समेत बकरे भैंसे ले भेंट देने आवेंगे । तिनके साथ देखने को कृष्ण बलदेव भी आवेंगे । यह तो मैंने तुम्हें उनके लाने का उपाय बताय दिया । तुम सुज्ञान हो जो युक्ति बन आवे सो करियो । अधिक तुमसे क्या कहें ।

अक्रूर ने अपने जी में बिचारा कि जो मैं अब भली बात कहूँगा तो यह न मानेगा इससे

मन की भावती बात कहूँ । कीजिये जो जिसे सुहाय । यों सोच बिचार अक्रूर हाथ जोड़ सिर झुका बोला महाराज ! तुमने भला मत किया । यह वचन हमने सिर चढ़ाय मान लिया । कल भोर को जाऊँगा और राम-कृष्ण को ले आऊँगा । ऐसे कह कंस से बिदा माँग अक्रूर अपने घर आया ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागरे कंसासुरसम्वादो नाम सप्तत्रिंशोध्यायः ।।३७।।

अध्याय-३८
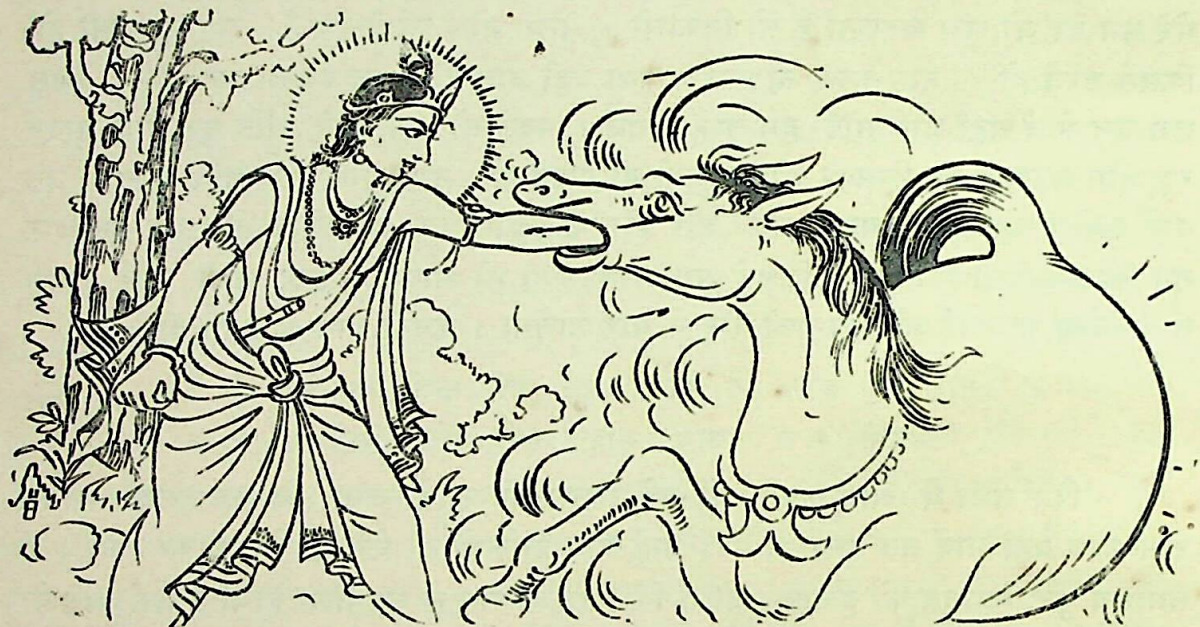
शुकदेव जी बोले कि महाराज ! ज्यों श्रीकृष्णचन्द्र ने केशी को मारा और नारद मुनि की स्तुति की फिर हरि ने ब्योमासुर को हना, वही सब चरित्र कहता हूँ । तुम चित्त दे सुनो । भोर होते ही केशी अति ऊँचा भयानक घोड़ा बन वृन्दावन में आया और लगा लाल आँखें कर नयन चढ़ाय कान पूँछ उठाय टापों से भूमि खोदने और हींस-हींस कर कंधा कँपाय-कँपाय लात चलाने । इसे देखते ही ग्वालबालों ने भय खाय भाग कर श्रीकृष्ण से जा कहा । ये सुनके वे वहाँ आये और उसे देख लड़ने को फेंट बाँध, ताल ठोक गर्जकर बोले, अरे ! तू कंस का भेजा हुआ है और घोड़ा बन आया है, तो और के पीछे क्यों फिरता है, आ मुझसे लड़ जो तेरा बल देखूँ । तेरी मृत्यु तो निकट आन पहुँची है । यह बचन सुन केशी कोप कर अपने मन में कहने लगा कि आज इसका बल देखूँगा और पकड़ कर ईख की भाँति चबाय कंस का कार्य कर आऊँगा । वह मुँह को ऐसे करके दौड़ा कि मानों सारे संसार को खा जायगा । आते ही पहले जो उसने श्रीकृष्ण पर मुँह चलाया, तो उन्होंने एक बेर तो ढकेल कर पीछे को हटाया । जब दूसरी बेर वह फिर सम्हल के मुख फैलाय धाया तब श्रीकृष्ण ने अपना हाथ उसके मुँह में डाल लोह लाट-सा कर ऐसा बढ़ाया कि जिससे उसके दसों द्वार जा रुके, तब तो केशी घबड़ाकर जी में कहने लगा कि अब देह फटती है ।

ऊसने बहुतेरे उपाय हाथ निकालने को किये पर एक भी काम न आया। निदान स्वाँस रुककर पेट फट गया, तो पछाड़ खाय कर गिरा। तब उसके शरीर से लोहू नदी की भाँति बह निकला। तिस समय ग्वालबाल आय आय देखने लगे, और श्रीकृष्णचन्द्र आगे जाय बनमें एक कदम्ब की छाँह तले खड़े हुये। इस बीच बीणा हाथ में लिये नारद मुनि भी आन पहुँचे। प्रणाम कर खड़े हो बीणा बजाय श्रीकृष्णचन्द्र की भूत भविष्य की सब लीला और चरित्र गायकर बोले कि कृपानाथ! तुम्हारी लीला अपरम्पार है। इतनी किस में सामर्थ्य है जो आपके चरित्रों को बखाने। पर तुम्हारी दया से मैं इतना जानता हूँ कि आप भक्तों को सुख देने के अर्थ और साधुओं की रक्षा के निमित्त, दुष्ट असुरों के नाश करने के हेतु बारम्बार अवतार ले संसार में प्रगट हो भूमि का भार उतारते हैं। प्रभु ने नारद मुनि को तो विदा दी। आप सब ग्वालबाल और सखाओं को साथ ले एक बड़ के तले बैठ पहले तो किसी को मन्त्री, किसी को प्रधान, किसी को सेनापति बनाय आप राजा हो राजनीति के खेल खेलने लगे और पीछे से आँख मिचौनी। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि––पृथ्वीनाथ!

दोहा–मार्‌यो केशी ज्यों हरी, सुनी कंस यह वात॥
ब्योमासुर से कहतु हैं, ब्याकुल कम्पित गात॥

चौपाई–अरि क्रन्दन ब्योमासुर वली। तेरी जग में कीरति भली॥
ज्यों राम के पवन को पूत। त्यों ही तू मेरो यह दूत॥
वासुदेव के सुत हरि ल्याव। आन काज मेरौ करि आव॥

यह सुनकर हाथ जोड़ ब्योमासुर बोला महाराज! जो बसावैगो सो करूँगा। आज मेरी देह है आपही के काज, जो जी के लोभी हैं तिन्हें स्वामी के अर्थ जी देते आती है लाज। ऐसे कह कृष्ण-बलदेव पर बीड़ा उठाय कंस को प्रणाम कर ब्योमासुर वृन्दावन को चला। बाट में जाय, ग्वाल का वेष बनाय कर चला-चला वहाँ पहुँचा, जहाँ हरि ग्वालबाल तथा सखाओं के साथ आँख मिचौनी खेल रहे थे। जाते ही दूर से जब उसने हाथ जोड़ श्रीकृष्णचन्द्र से कहा महाराज! मुझे भी अपने साथ खिलाऔ तव हरि ने उसे पास बुला कर कहा तू अपने जी में किसी बात की होंस मत रख, जो तेरा मन मानै सो खेल हमारे संग खेल। यों सुन वह प्रसन्न हो बोला कि बृक मैढ़ें का खेल भला है। श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा बहुत अच्छा, तू बन भेड़िया और सब ग्वालबाल बनें मैंढ़े। सब मिलकर खेलने लगे। तिस समय वह असुर एक को उठा ले जाय और पर्वत की गुफा में रख उसके मुँह पर आड़ी शिला धर बन्द कर चला आवै। ऐसे जब सबको वहाँ रख आया और अकेले श्रीकृष्ण रहे तब ललकार कर बोला कि आज कंस का काज सारूँगा और यदुवंशियों को मारूँगा। यों कह ग्वालबाल का वेष छोड़ सचमुच भेड़िया बन ज्यों हरि पर झपटा त्यों उन्होंने पकड़ गला घोंट मारे घूसों के मार पटका। फिर ग्वालबाल छुड़ाय कर घर आय सुख लिया।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागरे ब्योमासुर वध नामअष्टत्रिंशोऽध्यायः॥३८॥

अध्याय—३९

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज ! कार्तिक बदी द्वादशी को तो केशी और ब्योमासुर मारा गया और त्रयोदशी को भोर के तड़के ही अक्रूर कंस के पास से बिदा हो, रथ पर चढ़ अपने मन में यों बिचारता बृन्दावन को चला कि ऐसा मैंने क्या जप, तप, यज्ञ, दान तीर्थ व्रत किया है जिसके पुण्य से यह फल पाऊँगा ? अपनी जाने तो इस जन्म भर कभी हरि का नाम नहीं लिया । सदा कंस की संगत में रहा । भजन का भेद कहाँ पाऊँगा ! हाँ यदि अगले जन्म में कोई बड़ा पुण्य किया हो तो उस धर्म के प्रताप से यह तो होगा जो कंस ने मुझे श्रीकृष्ण-चन्द्र आनन्दकन्द के लेने को भेजा है । अब जाय उनका दर्शन पाय जन्म सफल करूँगा ।

महाराज ऐसे बिचार कर फिर अक्रूर अपने मन में कहने लगे कि कहीं मुझे वे कंस का दूत तो न समझेंगे । फिर आपही सोचा कि जिनका नाम अन्तर्यामी है वे तो मन की प्रीति मानते हैं और सब मित्र शत्रु को पहिचानते हैं । ऐसा कभी न समझेंगे । वरन् मुझे देखते ही गले लगाय दयाकर अपना कोमल कमल सा कर मेरे सिर पर धरेंगे । तब मैं उस चन्द्र बदन की शोभा इक टक निरख अपने नयन चकोरों को सुख दूँगा कि जिसका ध्यान ब्रह्मा रुद्र आदि सब देवता सदा करते हैं ।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज ! इस भाँति सोच बिचार करते रथ हाँक इधर से तो अक्रूर गये और उधर बन से गौ चराय ग्वालबाल समेत श्रीकृष्ण-बलराम भी आये तो इनसे उनसे वृन्दावन के बाहर ही भेंट भई । हरि छबि दूर से देखते ही अक्रूर रथ से उतर अति अकुलाय दौड़ उनके पाँवों पर जा गिरा और ऐसा मग्न हुआ कि मुँह से बोल न आया । महा आनन्द कर नयनों से जल बरसाने लगा । तब श्रीकृष्ण जी उसे उठाय, अति प्यार से मिल हाथ पकड़ कर लिवाय ले गये । वहाँ नन्दराय अक्रूरजी को देखते ही प्रसन्न हो उठकर मिले और बहुत आदर किया फिर पाँव धुलवाय आसन दिया । जब न्हाय धोय, भोजन खाय, बीड़ा चबाय, बैठे तब नन्दजी उनसे कुशल क्षेम पूछ कर बोले कि तुम यदुवंशियों में बड़े हो सदा साधु से रहे हो । फिर कहो कि कंस दुष्ट के पास कैसे रहते हो और वहाँ के लोगों की क्या गति है, सो भेद समझा के कहो । तब अक्रूर जी बोले——

चौ०—जव से कंस मधुपुरी गयो । तव से सवही को दुख दयौ ।।
पूछौ कहा नगर कुशलात । परजा दुखी रहत दिन रात ।।
जौलों है मथुरा में कंस । तौलौं कहाँ वचै यदुवंस ।।
दोहा—पशु मैंढ़े छेरीन कौ, ज्यों खटकी रिपु होय ।।
त्यों परजा को कंस है, दुख पावैं सव कोय ।।

इतना कह बोले कि तुम कंस का ब्योहार जानते हो हम अधिक क्या कहैं ।

अध्याय-४०

श्रीशुकदेवजी बोले कि पृथ्वीनाथ ! जब नन्दजी बातें कर चुके तब अक्रूर को कृष्ण बलराम सैन से बुलाय अलग ले गये ।

चौ०-आदर कर पूछी कुशलात । कहौ कहा मथुरा को वात ।।
हैं वसुदेव देवकी नीके । राजा बैर परौ तिनही के ।।
अति पापी मामा है कंस । जिन खोयौ सिगरौ यदुवंश ।।

कोई यदुकुल का महा रोग जन्म ले आया है । तिसी ने सब यदुवंशियों को सताया है और सच पूछो तो बसुदेव हमारे लिए इतना दुःख पाते हैं जो हमें न छिपाते तौ वे इतना दुःख न पाते । यों कह श्रीकृष्ण फिर बोले ।

चौपाई--तुम सौं कहा चलति उन कह्यो । तिनको सदा ऋणी हौं रह्यौ ।
करतु होयगें सुरति हमारी । संकट सह पावत दुख भारी ।।

यह सुन अक्रूरजी बोले, कि कृपानाथ तुम सब जानते हो मैं क्या कहूँगा कंस की अनीति । उसकी किसी में नहीं प्रीति । बसुदेव और उग्रसेन के मारने को नित बिचार किया करता है । पर वे आज तक अपने प्रारब्ध से बचे रहे हैं और जब से नारद मुनि आय आपके होने का समाचार बुझाय के कह गये हैं तब से बसुदेवजी को बेड़ी हथकड़ी दे महा दुःख में रक्खा है और कल उसके यहाँ महादेव का यज्ञ है । धनुष धरा है सब कोई देखने को आवेंगे । तुम्हारे बुलाने को मुझे भेजा है । यह कह कर कि तुम जाय राम कृष्ण समेत नन्द को भेंट सहित लिवाय लाओ सो मैं लेने को आया हूँ । इतनी बात अक्रूरजी से सुन राम कृष्ण ने आय नन्दराय से कहा ।

चौपाई--कंस बुलाये हैं सुत तात । कही अक्रूरजी यह वात ।
गोरस मेंढ़े छेरी लेहु । धनुष यज्ञ है ताको देहु ।।
सव मिल चलौ साथ आपने । राजा बोले रहत न वने ।।

जब ऐसे समझाय बुझाय कर श्रीकृष्णचन्द्र जी ने नन्दजी से कहा तब नन्दरायजी ने उसी समय ढिंढोरिये को बुलाय सारे नगर में यों कह डचौढ़ी फिरवाय दी कि कल सबेर ही सब मिल मथुरा को जायँगे राजा ने बुलाया है। इस बात को सुनकर भोर होते ही भेंट लै लै सकल ब्रजवासी आन पहुँचे और नन्दजी भी दूध, दही, माखन, मैंढ़े, बकरे भैंसे लै शकट जुतवाय उनके साथ हो लिए और कृष्ण बलदेव भी ग्वालबाल सखाओं को साथ ले रथ पर चढ़े।

श्रीशुकदेव जी बोले पृथ्वीनाथ! एकाएकी श्रीकृष्ण का चलना सुन सब ब्रज की गोपियाँ अति घबराय व्याकुल हो घर छोड़ हड़बड़ाय उठ धाईं और उठती भगती गिरती पड़ती वहाँ आईं जहाँ श्रीकृष्णचद्र का रथ था। आते ही रथ के चारों ओर खड़ी हो हाथ जोड़ बिनती कर कहने लगीं। हमें किसलिए छोड़ते हो ब्रजनाथ! सर्वस्व दिया है तुम्हारे हाथ। ऐसा तुम्हारा क्या अपराध किया है? जो हमें पीठ दिए जाते हो। यों श्रीकृष्णचन्द्र को सुनाय फिर गोपियाँ अक्रूर की ओर देख बोलीं।

चौपाई——या अक्रूर क्रूर है भारी। जानी कछू न पीर हमारी।।
जा विन हम सव होत अनाथ। ताहि चल्यौ लै अपने साथ।।
कपटी क्रूर कठिन मन भयो। नाम अक्रूर वृथा किन कर्‌यो।।
हे अक्रूर कुटिल मति हीन। क्यों दाहत अवला आधीन।।

ऐसी कड़ी बातें सुनाय, सोच संकोच छोड़, हरि का रथ पकड़ आपस में कहने लगीं कि मथुरा की नारियाँ अति चंचल, चतुर, रूप, गुण युक्त हैं। उनसे प्रीति कर गुण और रस के वश हो वहाँ ही रहेंगे बिहारी, तब काहे को करेंगे सुरत हमारी। हमारे जप तप करने में ऐसी क्या चूक पड़ी थी जिससे श्रीकृष्णचन्द्र बिछुरते हैं। यों आपस में कह फिर से कहने लगीं कि तुम्हारा नाम है गोपीनाथ किसलिए नहीं ले चलते हमें अपने साथ।

चौपाई——तुम विन छिन-छिन कैसे कटै। पलक ओट भये छाती फटै।।
हित लगाय क्यों करत विछोह। निठुर निरदई धरत न मोह।।
चाहि रहौ इकटक हरि ओर। ठगी मृगी सी चन्द्र चकोर।।
परहि नैन ते आँसू टूट। रही विखर लट मुख पै छूट।।

श्रीशुकदेवजी बोले कि राजन्! उस समय गोपियों की यह दशा थी जो मैंने कही और यशोदा रानी ममता कर पुत्र को कंठ लगाय रो-रो अति प्यार से कहती थीं, बेटा जै दिन में तुम वहाँ से फिर आऔ तै दिन के लिए कलेऊ लै जाऔ। वहाँ जाय किसी से प्रीति मत कीजो, वेग अपनी जननी को दर्शन दीजो। इतनी बात सुन श्रीकृष्ण रथ से उतर सबको समझाय बुझाय, माँ से बिदा हो दण्डवत् कर, अशीष ले फिर रथ पर चढ़ चले। तिस काल इधर से तो गोपियों समेत यशोदाजी अति अकुलाय रो-रो कृष्ण-कृष्ण कर पुकारती थीं, और उधर श्रीकृष्ण रथ पर खड़े-खड़े कहते जाते थे कि तुम घर जाओ किसी बात की चिन्ता मत करो, हम चार पाँच दिन में ही फिरकर आते हैं। ऐसे कहते-कहते और देखते-देखते जब रथ दूर निकल गया और धूल आकाश तक छाई, जिसमें रथ की ध्वजा भी नहीं दिखाई, तब निराश हो एक बेर तो सबकी सब नीर बिन मीन की भाँति तड़फड़ाय मूर्छा खाय गिरीं। पीछे धीर धर इधर यशोदा जी तो सब गोपियों को ले वृन्दावन गईं और उधर श्रीकृष्णचन्द्र समेत सब चले

चले यमुना तीर आ पहुचे । तहाँ ग्वालबालों ने जल पिया और हरि ने भी एक बड़की छाँह में रथ खड़ा किया । इधर जब अक्रूरजी नहाने का बिचार कर रथ से उतरे तब श्रीकृष्णचन्द्रजी ने नन्दराय से कहा कि आप सब ग्वालबालों को ले आगे चलिए । चचा अक्रूर स्नान कर लें तो हम भी मिलते हैं । यह सुनकर सब को ले नन्दजी आगे बढ़े और अक्रूर जो कपड़े खोल हाथ पाँव धोय आचमन कर तीर पर जाय नीर में पैठ डुबकी ले पूजा तर्पण जप ध्यान कर फिर डुबकी मार आँखें खोल देखें तो वहाँ रथ समेत श्रीकृष्ण दृष्टि आये ।

चौपाई—पुनि उन देख्यो शीश उठाय । तरु ठिय बैठे हैं यदुराय ।।
करै अचम्भो हिये विचारि । वे रथ ऊपर दूरि मुरारि ।।
बैठे दोऊ वड़ की छाँह । तिन्ह को मैं देखौ जलमाँह ।।
वाहर भीतर भेद न लहों । साँचो रूप कौन सो कहों ।।

महाराज अक्रूरजी तो एक सी ही सूरत बाहर भीतर देख सोचते ही थे, इस बीच पहले तो श्रीकृष्णचन्द्रजी ने चतुर्भु ज हो शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण कर सुर, मुनि, किन्नर गन्धर्व आदि सब भक्तों समेत जल में दर्शन दिया और पीछे शेषशायी रूप में, सो देख अक्रूर और भी भूल रहा ।

•

अध्याय–४१

श्रीशुकदेवजी बोले, कि हे महाराज ! पानी में खड़े अक्रूर को कितनी एक देर में प्रभु का ध्यान करने से ज्ञान हुआ तो हाथ जोड़ प्रणाम कर कहने लगा, कि कर्ता, हरता, भरता तुम्हीं हो भगवान्, भक्तों के हेतु संसार में आय धरते हो वेष अनन्त और सुर नर मुनि हैं तुम्हारे ही अंश । तुम्हीं से प्रगट हो तुम में ऐसे समाते हैं जैसे जल सागर से निकल सागर में समाता है । तुम्हारी महिमा अनूप है, अद्भुत है । कौन कह सके । सदा रहते हो विराट स्वरूप, सिर स्वर्ग, पृथ्वी पाँव, समुद्र पेट, नाभि आकाश, बादल केश, ब्रह्म रोम, अग्नि मुख, दसो दिशा कान, नयन चन्द्र और भानु, इन्द्र भुज, बुद्धि ब्रह्मा, अहंकार रुद्र, गरजन वचन, प्राण पवन, जल वायु, पलक लगना रात दिन, इत्यादि रूप से सदा बिराजते हो । तुम्हें कौन पहिचान सके । इस भाँति स्तुति कर अक्रूरजी ने प्रभु के चरणों का ध्यान कर कहा कृपानाथ ! मुझे अपने चरणों में रक्खो !

•

अध्याय–४२

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! जब श्रीकृष्णचन्द्र ने नट माया की भाँति जल में अनेक रूप दिखाय अक्रूरजी को ज्ञान कराया तथा नीर से निकल तीर पर आ अक्रूरजी ने हरि को प्रणाम किया, तिस काल नन्दलाल ने अक्रूरजी से पूछा काका शीत समय जल के बीच इतनी देर क्यों लगी ? हमें यह अति चिन्ता थी तुम्हारी कि चाचा ने किस लिए बाट चलने

की सुधि बिसारो । कुछ अचरज तो जाकर नहीं देखा यह समझाय के कहो तो हमारे मन की दुविधा जाय ।

चौपाई—सुनि अक्रूर जोर कह हाथा । तुम सव जानत हो व्रजनाथा ।।
भलो दरश दीनों जल माँही । कृष्ण चरित ये अचरज नाहीं ।।
मोय भरोसौ भयौ तिहारौ । वेगि नाथ मथुरा पग धारौ ।।
अव तो और विलम्व न करिये । शीघ्र चलो कारज चित धरिये ।।

इतनी बात के सुनते ही हरि उठ रथ पर बैठ अक्रूर को साथ ले चल खड़े हुए और नन्द आदि जो सब गोप ग्वाल आ गये थे उन्होंने जा मथुरा के बाहर डेरे किए और कृष्ण बलदेव की बाट देख-देख अति चिन्ता कर अपने मन में कहने लगे कि इतनी अबेर नहाने में क्यों लगी और किसलिए अब तक हरि नहीं आये ? इसी बीच आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र भी आय मिले । उस समय हाथ जोड़ कर शिर झुकाय बिनती कर अक्रूरजी बोले कि ब्रजनाथ ! अब चल के मेरा घर पवित्र कीजै और अपने भक्तों को दर्शन दे सुख दीजै । इतनी बात के सुनते ही हरि ने अक्रूर से कहा !

पहले सुधि कंस कौ देहु । तव अपनो दिखलावौ गेहु ।।
सवकी विनती कही बुझाय । तव अक्रूर चल्यौ सिर नाय ।।

चले चले कितनी एक बेर में रथ से उतर कर वहाँ पहुँचे जहाँ कंस सभा किये बैठा था । इनको देखते ही सिंहासन से उठ नीचे आय अति हित कर मिला और बड़े आदर मान से हाथ पकड़ ले जाय सिंहासन पर अपने पास बैठाय उनकी कुशल क्षेम पूछ बोला, जहाँ गये थे वहाँ की बात कहो !

चौपाई—सुनि अक्रूर कही समुझाय । वृज की महिमा कही न जाय ।।

कहो नन्द की करों वड़ाई । वात तुम्हारी शीश चढ़ाई ।।

राम कृष्ण दोऊ हैं आये। भेंट सबै ब्रजवासी लाये।।
डेरा किये नदी के तीर। उतरे गाड़ी भारी भीर।।

यह सुन कंस प्रसन्न हो बोला अक्रूरजी ! आज तुमने हमारा बड़ा काम किया जो राम कृष्ण को ले आये। अब घर जाय विश्राम करो। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज ! कंस की आज्ञा पाय के अक्रूरजी तो अपने घर गये और वह सोच बिचार करने लगा। जहाँ नन्द उपनन्द बैठे थे तहाँ उनसे हलधर और गोविन्द ने पूछा जो हम आपकी आज्ञा पायें तो नगर देख आवें। यह सुन पहले तो नन्दरायजी ने कुछ खाने को मिठाई निकाल दी जो उन दोनों भाइयों ने मिलकर खाय ली। पीछे बोले अच्छा जाऔ पर बिलम्ब मत कीजो। इतना बचन नन्द महर के मुख से निकलते ही आनन्दकन्द दोनों भाई ग्वालबाल सखाओं को अपने साथ ले नगर देखने चले। आगे बढ़ देखें तो नगर के बाहर चारों ओर बन उपवन फूल रहे हैं। बड़े-बड़े सरोवर निर्मल जल से भरे हैं। उनमें कमल खिले हुए हैं जिन पर भौरों के झुण्ड के झुण्ड गूँज रहे हैं और तीर में हंस, सारस आदि पक्षी किलोलें कर रहे हैं। शीतल सुगन्ध समीर मन्द-मन्द बह रही है और बड़ी-बड़ी बावरियों पर पनवाड़ियाँ लगी हुई हैं। बीच-बीच में वर्ण-वर्ण के फूलों की क्यारियाँ कोसों तक फूली हुई हैं। ठौरबठौर इंदारों बावड़ियों पर रहट परोहे चल रहे हैं। माली मीठे-मीठे सुर सों गाय गाय जल सींच रहे हैं।

यह शोभा बन उपवन की निरख हर्ष समेत प्रभु मथुरापुरी में पैठे। वह पुरी कैसी है जिसके चहुँ ओर ताँबे का कोट और पक्की चुआन चढ़ी खाई, स्फटिक के चार फाटक तिनमें अष्टधाती किवाड़ कंचन खचित लगे हुए हैं। नगर में वर्ण-वर्ण के लाल पीले हरे धौले अठखाने सतखाने मन्दिर ऊँचे ऐसे कि घटा से बातें कर रहे हों, जिसके सोने के कलश कलसियों की ज्योति बिजली सी चमक रही, ध्वजा पताका फहराय रही, जाली झरोखों से धूप की सुगन्ध आय रही है। द्वार-द्वार पर केले के खम्भ और सुवर्ण कलश सपल्लव भरे धरे हुए तोरण बन्दनवार बाँधी हुई, घर-घर बाजने बाज रहे हैं और एक ओर भाँति-भाँति के मणिमय कंचन के मन्दिर राजा के न्यारे ही जगमगाय रहे हैं। तिन की शोभा कुछ वर्णी नहीं जाती। ऐसी जो सुहावनी मथुरापुरी तिसे श्रीकृष्ण बलदेव ग्वालबालों को साथ लिये देखते चले।

चौपाई—नील वसन गोरे वलराम। पीताम्वर ओढ़े घनश्याम।।
ये भानजे कंस के दोऊ। इनते असुर वचौ ना कोऊ।।
सुनत हुते पुरुषारथ जिनको। देखहु रूप नैन भर तिनको।।
पूरव जन्म सुकृत कछु कीना। सो विधि यह दरशन फल दीना।।
दो०—पड़ी धूम मथुरा नगर, आवत नन्दकुमार।
सुनि धाये पुर लोग सव, गृह कौ काज विसार।।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज ! इसी रीति से सब पुरवासी क्या स्त्री क्या पुरुष, अनेक प्रकार की बातें कह कर दर्शन कर मग्न होते थे और जिस हाट बाट चौहटे में हो सब समेत कृष्ण बलराम निकलते थे तहीं अपने अपने कोठे पर खड़े इन पर चोआ चन्दन छिड़क आनन्द से फूल बरसाते थे और ये नगर की शोभा देख-देख ग्वालों से कहे जाते

थे भैया कोई भूलियो मत और जो कोई भूले तो पिछले डेरों पर जाइयो । इतमें कितनी एक दूर जाय देखें तो क्या है कि कंस के धोबी धुले कपड़ों की लादियाँ लादे मोटे पोट लिये मद पिये रंगराते कंस के यश गाते नगर के बारह से चले आते हैं । उन्हें देख श्रीकृष्णचन्द्र ने बलदेवजी से कहा कि भैया ! इनके सब चीरछीन लीजिये, और आप पहर, ग्वालबालों को पहराय बचै सो लुटाय दीजिये । ऐसे भाई को सुनाय सब समेत धोबियों के पास जाय हरि बोले---

चौपाई---हमको उजलौ कपड़ा देहु । राजहिं मिलि आवें फिरि लेहु ।।
जो पहिरावन नृप सौं पै हैं । तामें से कछु तुम को दैहैं ।।

इतनी बात के सुनते ही उनमें जो बड़ा धोबी था हँसकर कहने लगा ।

सो०—राखै घरी वनाय, ह्वै आवौ नृप द्वार लौं ।।
तव लीजो पट आय, जो चाहो सो दीजियो ।।

चौपाई---वन वन फिरत चरावत गैया, अहिर जात कामरी उढ़ैया ।
नट कौ भेष वनाय कै आये, नृप अम्वर पहरन मन भाये ।।
जुरिके चले नृपति के पास, पहिरावनि लेवे की आस ।
नेक आस जीवन की जोऊ, खोवन चहत अवहि पुनि सोऊ ।।

यह बात धोबी की सुनकर हरि ने फिर मुस्कराय कर कहा कि हम तो सूधी बात से माँगते हैं तुम उलटा क्यों समझते हो । कपड़े देने से कुछ तुम्हारा न बिगड़ेगा, वरन् यश लाभ होगा । यह बचन सुन रजक झुँझलाय कर बोला कि राजा के बागे पहरने का मुँह तो देख, मेरे आगे से जा नहीं तो अभी मार डालता हूँ । इतनी बात के सुनते ही क्रोध कर श्रीकृष्ण-चन्द्र ने तिरछा कर एक हाथ ऐसा मारा कि शिर भुट्टा सा उड़ गया । तब जितने उसके साथ टहलुए थे सब छोटे मोटे लादियाँ छोड़ अपना जीव ले भागे और कंस के पास जा पुकारे कि श्रीकृष्णचन्द्र ने सब कपड़े ले लिये और आप पहन, भाई को पहरा, ग्वालबालों को बाँट बचे सो लुटाय दिये । तिस समय ग्वालबाल अति प्रसन्न हो लगे उलटे पुलटे वस्त्र पहनने !

दोहा—कटिपटि पग पहरें झगा, सूथन गेरें वाँह ।
वसन भेद जाने नहीं, हँसत कृष्ण मन माँह ।।

जो वहाँ से आगे बढ़े जाते थे तो एक दर्जी ने आ दण्डवत् कर खड़े हो कर जोड़ के कहा महाराज ! मैं कहने को कंस का सेवक कहलाता हूँ पर मन से सदा आपका ही गुण गाता हूँ । दया कर कहिये तो बागे पहराऊँ जिससे तुम्हारा दास कहाऊँगा । इतनी उसके मुख से निकलते ही अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र ने उसे अपना भक्त जान निकट बुलाय के कहा, तू भले समय आया, पहराय दे । तब तो उस ने झटपट ही खोल उधेड़े कतर छाँट सीकर ठीक-ठीक बनाय चुन-चुनकर राम कृष्ण समेत सबको बागे पहरा दिये । उस काल भगवान् उसकी भक्ति देख साथ ले आगे चले ।

चौपाई---तहाँ सुदामा माली आयौ । आदर कर अपने घर लायौ ।।
सब ही कों माला पहिराई । माली के घर भई वधाई ।।

अध्याय–४३

श्रीशुकदेव जी बोले कि––पृथ्वीनाथ ! माली की लगन देख मग्न हो श्रीकृष्ण चन्द्र उसे भक्ति पदार्थ दे वहाँ से आगे जाय देखें तो पास गली में एक कुबड़ी केसर चन्दन से कटोरियाँ भर थाली के बीच धर हाथ में लिये खड़ी है । उससे हरि ने पूछा तू कौन है ? और यह कहाँ ले चली । वह बोली दीनदयाल मैं कंस की दासी हूँ । मेरा नाम कुब्जा है । नित चन्दन घिस कंस को लगाती, और मन से तुम्हारे ही गुण गाती हूँ जिसके प्रताप से आज आपका दर्शन पाया जन्म सफल किया और नयनों का फल लिया । अब दासी का मनोरथ यह है कि जो प्रभु की आज्ञा पाऊँ तो चन्दन अपने हाथों चढ़ाऊँ । उसकी अति भक्ति देख उन्होंने कहा जो तेरी इसमें प्रसन्नता है तो लगाय । इतना बचन सुनते कुब्जा ने बड़े राव चाव से चित लगाय जब राम कृष्ण को चन्दन अरचा तब श्रीकृष्णचन्द्र ने उसके मन की लगन देख दया कर पाँव धर दो अँगुली ठोड़ी के तले लगाय उचकाय उसे सीधी किया । हरी का हाथ लगते ही वह सुन्दरी हुई, और विनती कर प्रभु से कहने लगी, कि कृपानाथ ! जो आपने कृपा कर दासी की देह सूधी की । दया कर चल कर घर पवित्र कीजै, और विश्राम से दासी को सुख दीजै । यह सुन हरि उसका हाथ पकड़ मुसकाराय के कहने लगे ।

तैं श्रम दूर हमारौ कियौ, तिलक सुशीतल चन्दन दियौ ।।
रूप शीलगुण सुन्दर नीको, तेरी प्रीत निरन्तर जीको ।।
आय मिलेंगे कंसहिं मारी, यों कहि आगे चले मुरारी ।।

इधर कुब्जा आपने घर जाय केशर चन्दन चौक पुराय हरि के मिलने की आश मन में रख मङ्गलाचार करने लगी ।

आवें तहँ मथुरा की नारी, करैं अचम्भौ कहैं निहारी ।
धन धन कुवजा तेरौ भाग, जाको विधना दियो सुहाग ।।

ऐसो कहा कठिन तप कियौ, गोपीनाथ भेंट भुज लियौ ।।
हम नीके नहिं देखे हरी, तोको मिले प्रीति अति करी ।
ऐसे तहाँ कहत सब नारी, मथुरा देखत फिरत मुरारी ।।

इसी बीच नगर देखते-देखते सब समेत प्रभु धनुषपौर पर जा पहुँचे। इन्हें देखते ही अपने रङ्ग में राते माते पौरिये रिसाय के बोले कि इधर किधर चले आते हो गँवार ! दूर खड़े रहौ । यह है राजद्वार । द्वारपाल की बात सुनी-अनसुनी कर हरि सब समेत अर्राते वहाँ चले गये, जहाँ तीन ताड़ लम्बा अति मोटा भारी महादेव का धनुष धरा था । जाते ही झट उठाय, चढ़ाय, सहज स्वभाव ही खेंच के तोड़ डाला कि ज्यों हाथी पोदना को तोड़ता है। इतने सब रखवारे जो कंस के बिठाये धनुष की चौकी देते थे सो चढ़ आये । प्रभु ने उन्हें भी मार गिराया । तिस समय पुरवासी तो यह चरित देख बिचार कर निशंक हो आपस में यों कहने लगे कि देखो राजा ने घर बैठे अपनी मृत्यु आप बुलाई । इन दोनों भाइयों के हाथों से अब वह जीता न बचेगा । इधर धनुष टूटने का अति घोर शब्द सुन कंस भय खाय अपने लोगों से पूछने लगा कि यह महाशब्द काहे का हुआ । इसी बीच में कितने एक लोग राजा के जो खड़े दूर से देखते थे वे मूढ़ उधर यों जा पुकारे कि महाराज की दुहाई राम कृष्ण ने आय नगर में बड़ी धूम मचाई, शिव का धनुष तोड़ सब रखवालों को मार डाला । यह सुनते ही कंस ने बहुत से योधाओं को बुलाय के कहा तुम इनके साथ जाओ और कृष्ण को छलबल कर अभी मार कर आवो । इतना बचन कंस के मुख से निकलते ही ये अपने अस्त्र शस्त्र ले वहाँ गये जहाँ दोनों भाई खड़े थे । उन्होंने इन्हें ज्यों ललकारा त्यों उन्होंने इनको भी आय मार डाला । जब हरि ने देखा कि अब यहाँ कंस का सेवक कोई नहीं रहा तब बलराम जी से कहा कि भाई आये बड़ी देर भई अब डेरे पर चलना चाहिये । बाबा नन्द हमारी बाट देख भय करते होंयगे । यों सब ग्वालबालों को साथ ले प्रभु बलराम समेत चलकर डेरे पर आये तो आते ही नन्द महर से यों कहा कि पिता हम नगर में जाय भला कुतूहल देख आये और गोप ग्वालों ने अपने बागे दिखलाये !

तव लखि नन्द कहैं समुझाय । कान्ह तुम्हरी टेव न जाय ।।
ब्रज वन नहीं हमारौ गाँव । यह है कंसराय कौ ठाँव ।।
यहाँ जिन कछू उपद्रव करौ । मेरी सीख पूत मन धरौ ।।

जब ऐसे समझाय चुके तब नन्दलाल बड़े लाड़ से बोले कि पिता भूख लगी । इस पर उन्होंने जो पदार्थ खाने को साथ लाये थे सो निकाल के दिये । कृष्ण बलराम ने ले ग्वालबालों के साथ मिल कर खाय लिया । इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज ! इधर तो ये आय परमानन्द से ब्यालू कर सोये और उधर श्री कृष्ण की बात सुन कंस के चित्त में अति चिन्ता हुई । खड़े खड़े वह मन ही मन कुढ़ता था और अपनी पीर किसी से न कहता था जैसे कि——

दोहा—ज्यों काटहि घुन काठ है, कोऊ न जाने पीर ।
त्यों चिन्ता चित में छई, बुधि बल घटत शरीर ।।

निदान अति घबराय मन्दिर में जाय सेज पर सोया। उसे मारे डर के नींद न आई।

तीन पहर निशि जागत भई। लागी पलक नींद क्षण भई॥
तब सपनों देखौ मन माँहि। फिरे शीश विन धर विनछाँहि॥
कवहूँ नगन रेत में न्हाय। धावै गदहा चढ़ विष खाय॥
बसै मसान भूत संग लिये। रक्त फूल की माला हिये॥
वरत रूख देखे चहुँ ओर। तिन पर वैठे वाल किशोर॥

महाराज! जब कंस ने ऐसे स्वप्न देखा तब तो वह अति ब्याकुल हो चौंक पड़ा और सोच बिचार करता बाहर आय व अपने मन्त्रियों को बुलाय बोला कि अभी रङ्गभूमि को झड़वाय छिड़कवाय सँवार के, उसमें अनेकों जहाँ तहाँ पाटम्बर बिछवाय ध्वजा पताका तोरण बन्दनवार बँधवाय अनेक भाँति के बाजे बजाय सब ब्रजवासियों, वसुदेव आदि यदुवंशियों और जो सब देश-देश के राजा आये तिन्हें रङ्गभूमि में बुलाय बिठाओ। वे आए और अपने-अपने जाय बैठे। इस बीच राजा कंस अति अभिमान भरा अपने सिंहासन पर आन बैठा। उस काल देवता विमानों में बैठ आकाश से देखने लगे।

इति श्री लल्लूलालकृत प्रेमसागरे मथुरापुरीप्रवेश नाम तेतालीसवाँ अध्यायः॥४३॥

अध्याय–४४

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज! भोर ही जब नन्द उपनन्द आदि सब बड़े-बड़े गोप रङ्गभूमि की सभा में गये तब श्रीकृष्णचन्द्र जी ने बलदेवजी से कहा कि भाई! सब गोप आगे आये, अब बिलम्ब न कीजिये, शीघ्र ग्वालबाल सखाओं को साथ ले रङ्गभूमि देखने को चलिये। इतनी बात के सुनते ही बलरामजी उठ खड़े हुये और सब ग्वालबाल सखाओं

से कहा कि भाइयो ! चलो रङ्गभूमि की रचना देख आवें, यह सुनते ही तुरन्त सब सङ्ग हो लिये । निदान, श्रीकृष्णचन्द्र बलराम नटवर भेष किये ग्वालबालों को साथ लिये चलकर रंगभूमि की पौर पर आ खड़े हुए जहाँ दस सहस्र हाथियों का बल बाला गज कुबलिया झूमता था।

देख मतङ्ग द्वार मतवारौ । गजपालहिं वलराम पुकारौ ।।
सुनो महावत वात हमारी । लेहु द्वार ते गज को टारी ।।
जान देहु हमको नृप पासा । नातर ह्वै है गज को नाशा ।।
कहै देत नहिं दोष हमारौ । मत जाने हरि को तू वारो ।।

यह सुन महावत क्रोधकर बोला मैं जानता हूँ । तुम गौ चराय के इतराय गये हो । इसी से यहाँ आय बड़े शूरवीरों की भाँति खड़े हो । धनुष का तोड़ना न समझियो । मेरा हाथी दस सहस्र हाथियों का बल रखता है। जब तक इससे न लड़ोगे तब तक भीतर न जाने पावोगे । तुमने तो बहुत बली मारे हैं, पर आज इसके हाथ से बचोगे तो मैं जानूँगा कि तुम बड़े बली हो !

दोहा—तवहि कोपि हलधर कह्यौ, सुन रे मूढ़ कुजात ।
गज समेत पटकों अवहि, मुख सँभारि कर वात ।।
सोरठा—नेक न लगि है वार, हाथी मरिजैहै अवहि ।
तासों कहत पुकार, अवहुँ मान मेरौ कह्यो ।।

इतनी बात के सुनते ही झुंझला कर गजपाल ने गज पेला । ज्यों ही वह बलदेव जी पर टूटा त्यों ही उन्होंने हाथ घुमाय एक थपेड़ा ऐसा मारा, कि वह सूँड़ सिकोड़ चिंघाड़के पीछे हटा । यह चरित्र देख कंस के बड़े-बड़े जो योद्धा देखते थे, सो अपने जियों ते हार मान मन ही मन कहने लगे कि इन बलवानों से कौन जीत सकेगा और महावत भी हाथी को पीछे हटा जान अति भयमान मन में बिचार करने लगा कि ये बालक न मारे जायँ तो कंस भी मुझे जीता न छोड़ेगा । यों सोच समझ उसने फिर अंकुश मार हाथी को ताता किया, और इन दोनों भाइयों पर ला दिया । उसने आते ही सूँड़ से हरि को पकड़ खुँस खायकर ज्यों दाँतों से दबाया त्यों प्रभु सूक्ष्म शरीर बनाय दाँतों के बीच में बच रहे ।

दोहा—डरपि उठे तिहिकाल सव, सुरमुनि अरु नर नारि ।
दोऊ दशन विच ह्वै कढ़े, वलनिधि हरि दै तारि ।।
चौपाई—हाँक सुनत अति कोप वढ़ायौ । झटकि सूँड़ वहरो गज धायो ।।
रहे उदर तर दवकि मुरारी । भोंजे जानि गज रह्यौ निहारी ।।
पीछे प्रगट फेर हरि टेर्यो । वलदाऊ आगे ते घेरौ ।।
लागे गजहिं खिलावन दोऊ । भोंचकि रहे देख सव कोऊ ।।

महाराज ! उसे कभी बलराम सूँड़ पकड़ खेंचते थे, कभी श्याम पूँछ पकड़ते और वह उन्हें पकड़ने को आता था तब वे अलग हो जाते थे । कितनी एक देर तक उससे ऐसे खेलते रहे जैसे बछड़ों के साथ बालकपन में खेलते थे । निदान हरि ने पूँछ पकड़ फिराय उसे दे पटका और मारे घूसों से मार डाला । हाथी के मरते ही महावत ललकार कर आया । प्रभु ने उसे हाथी के पाँव तले झट मार गिराया और हँसते-हँसते दोनों भाई नटवर वेष किये एक-एक

दाँत हाथों में लिये रंग भूमि के बीच जा खड़े हुए । उस काल नन्दलाल को जिन जिन ने जिस जिस भाव से देखा उस उस को उसी भाव से दृष्टि आये । मल्लों ने मल्ल माना, राजाओं ने राजा जाना, देवताओं ने अपना प्रभु माना, ग्वालबालों ने सखा माना, नन्द उपनन्द ने बालक समझा और पुर की युवतियों ने रूप निधान । कंसादिक राक्षसों ने काल महान देखा ! महाराज ! इनको निहारते ही कंस अति भय मान हो पुकारा अरे मल्लो ! इन्हें पछाड़ मारो, कै मेरे आगे से टालो । इतनी बात जो कंस के मुँह से निकली तो सब मल्ल अति शीघ्रता से शस्त्र संग लिये वर्ण-वर्ण के वेष किये ताल ठोक-ठोक भिड़ने को कृष्ण बलराम के चारों ओर घिर आये । जैसे वे आये तैसे ही ये भी सम्हल कर खड़े भये । तब उनमें से इनकी ओर देख चतुराई कर चाणूर बोला सुनो हमारे राजा कुछ उदास हैं । इससे जी बहलाने को तुम्हारा युद्ध देखा चाहते हैं क्योंकि तुमने बनमें रह सब विद्या सीखी हैं और किसी बात का मन में सोच न कीजै, हमारे साथ मल्ल युद्ध कर अपने राजा को सुख दीजै । श्रीकृष्ण बोले राजाजी ने बड़ी दया कर हमें बुलाया है आज, हम से क्या सरेगा इनका काज । तुम अति बली गुणवान हो, हम बालक अनजान हैं । राजाजी से कुछ हमारा वश नहीं चलता इससे तुम्हारा कहा मानते हैं । हमें बचा लीजो, बल कर पटक न दीजो । अब हमें तुम्हें उचित है जिससे धर्म रहे सो कीजै, मिल कर अपने राजा को सुख दीजै ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागरे कुवलियावध वर्णन नाम चवालीसवाँ अध्याय ।।४४।।

अध्याय–४५

श्रीशुकदेवजी बोले––पृथ्वीनाथ ! ऐसे बात कर चाणूर तो श्रीकृष्ण के सों ही हुआ । मुष्टिक बलरामजी से आय भिड़ा और आपस में मलयुद्ध होने लगा ।

दोहा--शिर सों शिर भुजसों भुजा, दृष्टि दृष्टि सों जोर।
चरण चरण गहि झपट के, लपट-लपट झकझोर ।।

उस काल सब लोग इन्हें देख देख आपस में कहने लगे कि भाइयो ! इस सभा में अति अनीति होती है । देखो कहाँ ये बालक रूप नादान, कहाँ वे मल्ल बज्र समान जो बरजें तो कंस रिसाय, न बरजें तो धर्म नसाय । इससे यहाँ रहना उचित नहीं क्योंकि हमारा कुछ बश नहीं चलता । उधर श्रीकृष्ण और बलराम मल्लों से मल्ल युद्ध करते थे । निदान, इन दोनों भाइयों ने मल्लों को पछाड़ मारा । उनके मरते ही सब मल्ल आ टूटे । प्रभु ने पल भर में तिन्हें भी मार गिराया । तिस समय हरि भक्त तो प्रसन्न हो बाजा बजा कर जयकार करने लगे और देवता आकाश से अपने विमानों में बैठ श्रीकृष्ण का यश गाय कर फूल बरसाने लगे और कंस अति दुःख पाय ब्याकुल हो रिसाय अपने लोगों से कहने लगा अरे ! तुम बाजा क्यों बजाते हो, तुम्हें क्या कृष्ण की जीत भाती है ? यों कह बोला ये दोनों बालक बड़े चंचल हैं, इन्हें पकड़ बाँध सभा से बाहर ले जाओ और देवकी समेत बसुदेव कपटी को पकड़ लावो । पहले उसे मार, पीछे से इन दोनों को भी मार डालो । इतना बचन कंस के मुख से निकलते ही भक्तों के हितकारी मुरारी सब असुरों को क्षण भर में मार उछल के वहाँ जाय चढ़े, जहाँ अति ऊँचे मंच पर झिलम टोप पहने, हाथ में फरी खाँड़ा लिये बड़े अभिमान से कंस बैठा था। वह उनको काल समान निकट देखते ही भय खाय उठ खड़ा हुआ और थर-थर काँपने लगा । मनमें चाहा कि भागूँ पर मारे लाजके भाग न सका । फरी खाँड़ा सँभार चोट करने लगा । उधर कान्हा नन्दलाल अपनी घात लगाये उसकी चोट बचाते थे और सुर, नर, मुनि, गन्धर्व यह महायुद्ध देख भयभीत हो यों पुकारते थे । हे नाथ ! इस दुष्ट को बेग मारौ कितनी एक देर तक मंच पर युद्ध होता रहा । निदान, प्रभु ने सबको दुखित जान उसके केश पकड़ मंच से नीचे पटका । तब सब सभा के लोग पुकारे, श्रीकृष्णचन्द्र ने कंस को मारा । यह शब्द सुन, सुर नर, मुनि सबको अति आनन्द हुआ ।

दोहा---करि अस्तुति पुनि पुनि हरष, वरस सुमनसुर वृन्द ।
मुदित वजावत दुन्दुभी, कवि जय जय नँद नन्द ।।

सोरठा---मथुरा पुर नर नारि, अति प्रफुल्ल सव कौ हियो ।
मनहु कुमुद वनचारु, विकसित हरि शशि मुख निरखि ।।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि धर्मावतार ! कंस के मरते ही जो बलवान आठ भाई उसके थे सो लड़ने को चढ़ आए, प्रभु ने उन्हें भी मार गिराया । जब हरि ने देखा कि अब यहाँ राक्षस कोई नहीं रहा, तब कंस की लोथ को घसीट यमुना तीर पर ले आये और दोनों भाइयों ने बैठ विश्राम लिया । तिसी दिन से उस ठौर का नाम विश्राम घाट हुआ । आगे कंस की रानियाँ, देव रानियाँ, समेत अति ब्याकुल हो रोती पीटती वहाँ आई जहाँ यमुना के तीर दोनों वीर मृतक शरीर लिये बैठे थे और लगीं अपने पति का मुख निरख सुख सुमिर सुमिर गुण गाय गाय ब्याकुल को पछाड़ खाय-खाय गिरने कि इस बीच करुणा-निधान कान्ह करुणा कर उनके निकट आय बोले--

मामी सुनहु शोक नहिं कीजै । मामा को कर पानी दीजै ।।
सदा न कोऊ जीवित रहै । झूँठो जग को अपनी कहै ।।
मातु पिता सुत वन्धु न कोई । जन्म मरण फिरहीं फिरहोई ।।
जो सम्वन्ध जभी लों रहै । तौ ही लों तासों सुख लहै ।।

महाराज जब श्रीकृष्णचन्द्र ने रानियों को ऐसा समझाया तब उन्होंने वहाँ से उठ धीरज धर यमुना तीर पै आ पति को जल दिया और आप प्रभु ने अपने हाथ से कंस को अग्नि दे उसका दाह संस्कार किया ।

इति श्रील्लूलालकृत प्रेमसागरे कंसवधो नाम पैतालीसवां अध्याय ।।४५।।

अध्याय–४६
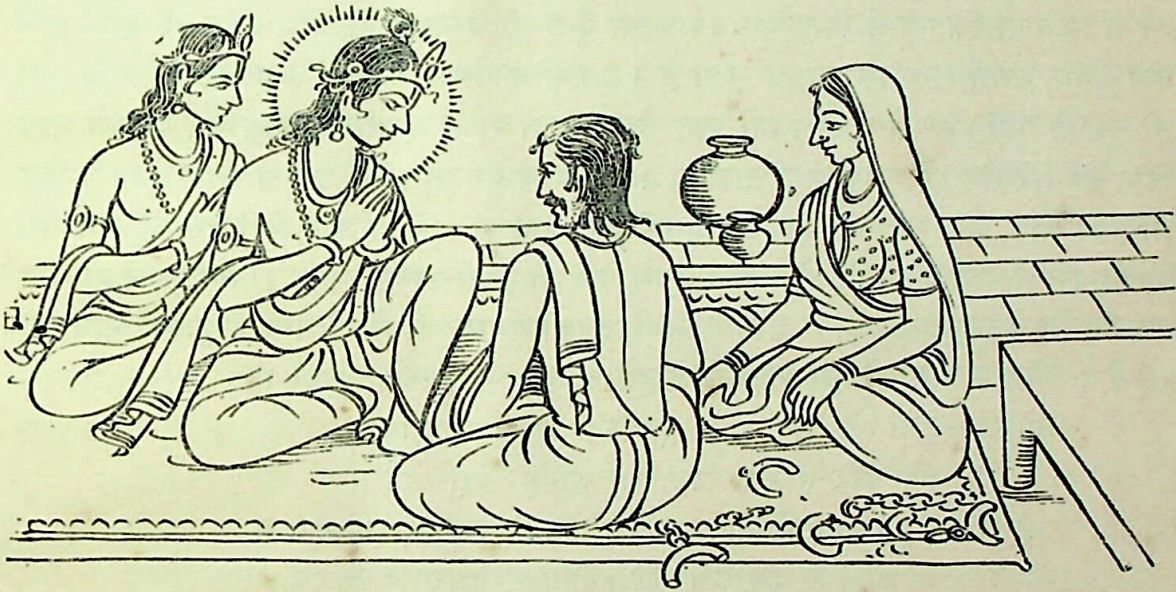
श्रीशुकदेव मुनि बोले कि राजा की रानियाँ तो द्यौरानियाँ समेत वहाँ से न्हाय धोय रोय-रोय राजमन्दिर को गईं और श्रीकृष्ण बलराम बसुदेव देवकी के पास आय उनके हाथ पाँव की हथकड़ियाँ बेड़ियाँ काट, दण्डवत कर, हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हुए । तिस समय प्रभु का रूप देख बसुदेव देवकी को ज्ञान हुआ तो उन्होंने अपने जी में निश्चय कर जाना कि दोनों विधाता हैं । असुरों को मार भूमि का भार उतारने को अवतार ले आये हैं । जब बसुदेव देवकी ने यों जी में जाना तब अन्तर्यामी हरि ने अपनी माया फैला दी । उसने उनकी वह मति हर ली । फिर तो उन्होंने पुत्र समझा । इतने में श्रीकृष्णचन्द्र अति दीनता कर बोले– इसमें हमरा कुछ अपराध नहीं, क्योंकि जबसे आप हमें गोकुल में नन्द के यहाँ रख आये तब से परवश थे, हमारा वश न था । पर मन में सदा यह आता था कि जिसके गर्भ में दस महीने रह जन्म लिया, उसे नेंक भी कुछ सुख न दिया न हम ही ने माता-पिता का सुख देखा । बृथा जन्म पराये यहाँ खोया । तिन्होंने हमारे लिये अति विपत्ति सही, हमसे कुछ उनकी सेवा नहीं

भई । संसार में सामर्थी वेई हैं जो माँ बाप की सेवा करते हैं । हम उनके ऋणी रहे, टहल न कर सके । पृथ्वीनाथ जब श्रीकृष्ण जी ने अपने मन का भेद यों कह सुनाया तब उन्होंने अति आनन्द मान दोनों को हित कर कंठ लगाया और सुखमान पिछला दुःख सब गँवाया । ऐसे माता पिता को सुख दे दोनों भाई वहाँ से चले-चले उग्रसेन के पास आये और हाथ जोड़ कर बोले---

चौपाई---नाना जू अब कीजै राज । शुभ नक्षत्र नीके दिन आज ।।

इतनी बात हरि के मुख से निकलते ही राजा उग्रसेन उठ कर आये, श्रीकृष्ण चन्द्र के पावों पर गिर कहने लगे कि कृपानाथ ! मेरी बिनती सुन लीजिये । जैसे आपने सब असुरों समेत महादुष्ट कंस को मार भक्तों को सुख दिया तैसे ही सिंहासन पर बैठ अब मथुराजी का राज्य कर प्रजा पालन कीजिये । प्रभु बोले, महाराज ! यदुवंशियों को राज्य का अधिकार नहीं । इसको सब कोई जानते हैं । जब राजा ययाति बूढ़े हुए तब अपने पुत्र यदु को उन्होंने बुलाकर कहा कि अपनी तरुण अवस्था मुझे दे और मेरा बुढ़ापा तू ले । यह सुन उसने अपने जी में बिचारा कि जो मैं पिता को युवावस्था दूँगा तो ये तरुण हो भोग करेगा । इसमें मुझे पाप होगा, इससे नाहीं करना ही भला है । यों सोच समझ के उसने कहा कि पिता ! यह तो मुझ से नहीं हो सकेगा । इतनी बात के सुनते ही राजा ययाति ने क्रोध कर यदु को शाप दिया कि तेरे वंश में राजा कोई न होगा । इस बीच पुरु नाम का उसका छोटा बेटा सन्मुख आ हाथ जोड़, बोला कि हे पिता ! अपनी वृद्ध अवस्था मुझे दो और मेरी तरुणाई तुम लो, यह देह किसी काम की नहीं, जो आप के काम आवे तो इससे उत्तम क्या है । जब पुरु ने यों कहा तब ययाति ने प्रसन्न हो अपनी वृद्धावस्था ने उसकी युवावस्था ले, बोला तेरे कुल में राजगद्दी रहेगी । अतएव नानाजी हम यदुवंशी हैं हमें राज्य करना उचित नहीं ।

सोरठा---करौ बैठ तुम राज, दूर करौ सन्देह सब ।
हम करि हैं सब काज, जो आयसु देहौ हमें ।।

चौपाई---जो न मानि हैं आन तुम्हारी । ताहि दण्ड देहें हम भारी ।।
औ कछु चित में शोक न कीजै । नीति सहित परजहि सुख दीजै ।।
यादव जिते कंस के त्रास । नगर छाँड़ि कर गये प्रवास ।।
तिनको अब खोज बुलावौ । सुख दे मथुरा माँहि बसावो ।।
विप्र धेनु सुर पूजन कीजै । इनकी रक्षा में चित दीजै ।।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले, कि धर्मावतार ! महाराजाधिराज भक्त हितकारी श्रीकृष्णचन्द्र ने उग्रसेन को अपना भक्त जान ऐसे समझाय सिंहासन पर बैठाय राज तिलक किया और छत्र फिराया । दोनों भाइयों ने अपने हाथों में चँवर लिया । उस काल सब नगर के बासी अति आनन्द से मग्न हो धन्य धन्य कहने लगे और देवता फूल बरसाने लगे । महाराज उग्रसेन को राज पाट पर बिठाय दोनों भाई बहुत से वस्त्र आभूषण अपने साथ लिवाय वहाँ से चले चले नन्दराय जी के पास आये और सन्मुख हाथ जोड़ खड़े हो अति दीनता कर बोले---हम तुम्हारी क्या बड़ाई करें जो सहस्र जीभें होंय तो भी तुम्हारे गुण का बखान हमसे न हो सकेगा । तुमने हमें अति प्रीति कर अपने पुत्र की भाँति पाला । खूब लाड़-प्यार किया ।

यशोदा मैया भी बड़ा स्नेह करती । अपना हित हम ही पै रखती । सदा निज पुत्र समान जाना कभी मन से भी हमें पराया कर न माना । ऐसे कह फिर श्रीकृष्णचन्द्र बोले हे पिता ! तुम यह बात सुन कर कुछ बुरा मत मानना । अब हम अपने मन की बात कहते हैं कि माता-पिता तो तुम्हें ही कहेंगे पर अब कुछ दिन मथुरा में रहेंगे । अपने जाति भाइयों को देख यदुकुल की उत्पत्ति सुनेंगे और अपनी माता से मिल उन्हें सुख देंगे, क्योंकि उन्होंने हमारे लिये बड़ा दुख सहा है । जो हमें तुम्हारे यहाँ न पहुँचा आते तो वे दुःख न पाते । इतना कह वस्त्राभूषण नन्द महर के आगे धर प्रभु ने निरमोही हो कहा--

चौपाई--मैया सौं पालागन कहियों । हम में प्रेम करे तुम रहियो ।।

इतनी बात श्रीकृष्ण के मुँह से निकलते ही नन्दराय तो अति उदास हो लगे लम्बी-लम्बी श्वास लेने और ग्वालबाल बिचार कर मन ही मन में कहने लगे कि यह क्या अचम्भे की बात कहते हैं । इससे ऐसा समझ में आता है कि अब ये झट पट नहीं जाना चाहते हैं । नहीं तो ऐसे निठुर बचन न कहते महाराज ! निदान, उनमें से सुदामा नाम का सखा बोला भैया ! कन्हैया अब मथुरा में तेरा क्या काम है ? जो निठुराई कर पिता को छोड़ यहाँ रहता है । भला किया कंस को मारा, सब काम सँवारा, अब नन्द के साथ हो लीजिये और वृन्दावन चल राज्य कीजिये । यहाँ का राज्य देख मन में मत ललचावो--वहाँ का सा सुख न पाओगे । सुनो राज्य देख मूरख भूलते हैं और हाथी घोड़े देख फूलते हैं । तुम वृन्दावन छोड़ कहीं मत रहो वहाँ सदा बसन्त ऋतु रहती है---सघन बन और यमुना की शोभा मन से कभी नहीं बिसरती जो यह सुख छोड़ कहा न मान, माता पिता की ममता तज, यहाँ रहोगे तो इसमें क्या बड़ाई होगी । उग्रसेन की सेवा करोगे और रात दिन चिन्ता में रहोगे । जिसे तुमने राज्य दिया उसी के आधीन होना होगा । यह अपमान कैसे सहा जायगा । इससे उत्तम यही है कि नन्द-राय को दुःख न दीजै उनके साथ हो लीजै ।

ब्रज वन नदी श्यामविहारौ । गोधन को मनते न विसारौ ।।
नहीं छाँड़ि हैं हम ब्रजनाथ । चलैं सबै तिहारे साथ ।।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज ! ऐसे कितनी एक बातें कह दस बीस सखा श्रीकृष्ण बलरामजी के साथ रहे और उन्होंने नन्दराय से बुझाकर कहा आप सबको ले निःसन्देह आगे बढ़िये, पीछे से हम भी इन्हें साथ लिये चले आते हैं । इतनी बात के सुनते ही---

सोरठा---व्याकुल सबै अहीर । मानहु पन्नग के डसे ।
हरि मुख लखत अधीर । ठाड़े काढ़े चित्र से ।।

उस समय श्रीकृष्णजी नन्दराय को समझाने लगे कि पिता ! तुम इतना दुख क्यों पाते हो । थोड़े दिन में यहाँ का काज कर हम भी आते हैं । आपको आगे इस लिये बिदा करते हैं कि माता हमारी ब्याकुल होती होगी । तुम्हारे गये से उन्हें कुछ धीरज होगा । नन्दजी बोले कि बेटा एकबार चलो फिर मिलकर चले आइयो ।

महाराज ! जब श्रीकृष्णचन्द्र जी ने ग्वालबालों समेत नन्दमहर को महा ब्याकुल देखा तब मन में बिचारा कि ये बिछड़ेंगे तो जीते न बचेंगे । त्यों ही उन्होंने अपनी माया छोड़ी

जिसने सारे संसार को भुला रक्खा है । उसने आते ही नन्द जी को सब समेत अज्ञान किया, फिर प्रभु बोले पिता ! पिता ! तुम इतने क्यों पछताते हो ? पहले यही बिचारो मथुरा और वृन्दावन में अन्तर ही क्या है ! तुमसे हरि कहीं दूर नहीं जाते जो इतना दुःख पाते हो । बृन्दावन के लोग दुःखी होंगे इसलिये तुम्हें आगे भेजते हैं । जब ऐसे प्रभु ने नन्दमहर को समझाया तब वे धीरज धर बोले––प्रभु जो तुम्हारे ही जी में यों आया तो मेरा क्या बस है । मैं जाता हूँ तुम्हारा हट टाल नहीं सकता । इतना बचन नन्दजी के मुख से निकलते ही हरि ने सब ग्वालबालों समेत नन्दराय जी को बिदा किया । आप दोनों भाई यहाँ रहे । उस काल नन्द सहित गोप ग्वाल ।

चले सकल मग सोचत भारी । हारे सर्बस मनहुँ जुआरी ।।
काहू सुधि, काहू सुधि नाहीं । लट पट चरण परत मग माही ।।
जात बृन्दावन देखत मधुवन । विरह व्यथा बाढ़ी व्याकुल मन ।।

ऐसे कहते ज्यों-त्यों कर बृन्दावन में पहुँचे । इनका आना सुनते ही यशोदारानी अकुला कर दौड़ी आईं और राम कृष्ण को न देख महा ब्याकुल हो नन्दजी से कहने लगीं ।

कहौ कन्थ सुत कहाँ गँवायो । वसन आभूषण लैके आये ।।
कंचन फेंक काँच कर राख्यौ । अमृत छाँड़ि गूढ़ विष चाख्यौ ।।
पारस पाय अन्त जो डारे । फिर गुण सुनहिं कपारहिं मारे ।।

ऐसे तुमने भी पुत्र गँवाये और बसन-आभूषण उनके पलटे ले आये । अब उन बिन धन का क्या करोगे । हे कन्थ ! जिनके पलक ओट भये छाती फटे उन बिन निशि दिन कैसे कटे । जब उन्होंने तुमसे बिछुड़ने को कहा तब तुम्हारा जिया कैसे रहा ? इतनी बात सुन नन्द जी ने बड़ा दुःख पाया और नीचा सिर कर यह बचन सुनाया । सच कहें ये वस्त्र अलंकार कृष्ण ने दिये । पर मुझे यह सुध नहीं किसने लिए और कृष्ण की बात क्या कहूँ सुनकर तू भी दुःख पावेगी ।

दोहा––कंस अपने से द्रोह कियो वे प्रभु त्रिभुवन नाथ ।
जो चाहें सोही करें, या वस मोहि सनाथ ।।
चौपाई–कंस मार मोपै फिर आये । प्रीति करिय कहि वचन सुनाये ।।
वसुदेव के पुत्र वे भए । कर अनुहार हमारी गए ।।
हौ तव महरि अचम्भे परौ । पायन परन हमारी कहौ ।।
अव जनि महरि हरी सुत कहिए । ईश्वर जानि भजन करि रहिए ।।

उसे तो हमने पहले ही नारायण जाना था पर मायावश पुत्र कर माना । महाराज ! जब नन्दराय जी ने सब बात श्रीकृष्ण की कह सुनाई, तिस समय माया वश हो यशोदा रानी कभी तौ प्रभु को अपना पुत्र जान मन ही मन पछताय व्याकुल हो-हो रोती थीं और कभी ज्ञान कर ईश्वर जान जान उनका ध्यान कर गुण गाय-गाय मनके खेद खोती थी और इसी रीति से सब बृन्दावन वासी अनेक अनेक प्रकार की बातें करते । अब मथुरा की लीला कहता हूँ तुम चित्तदे सुनो । जब हलधर और गोविन्द नन्दराय को बिदा कर बसुदेव देवकी के पास आये तब उन्होंने इन्हें देख दुख भुलाय ऐसे सुख माना कि जैसे तपी तप कर अपने तप का फल

पाय सुख माने । आगे बसुदेव जी ने देवकी से कहा कि कृष्ण बलदेव अहेरियों के यहाँ रहे हैं । इन्होंने उनके साथ खाया पिया है और अपनी जाति का ब्यौहार भी नहीं जानते । इससे अब उचित है कि पुरोहित को बुलाय पूछें। जो-जो वह कहैं सो करें। देवकी बोलीं बहुत अच्छा । तब बसुदेव जी ने अपने कुल पूज्य गर्ग मुनिजी को बुलाय भेजा । वे आये, उनसे उन्होंने अपने मन का संदेह सब कहके पूछा कि महाराज ! अब हमें क्या करना उचित है, सो कृपाकर कहिये । गर्ग मुनि बोले पहले सब जाति भाइयों को न्यौत बुलाइए । पीछे जात कर्म कर राम कृष्ण को जनेऊ दीजे । इतना वचन पुरोहित के सुनते ही बसुदेव जी ने नगर में न्यौता भेजा । सब ब्राह्मण और यदुवंशियों को बुलाया । वे आये, तिन्हें अति स्नेह से मान कर बिठाया, उस काल पहले तो बसुदेव जी ने विधि से जात कर्म कर जन्म पत्रिका लिखवाय दस सहस्र गौ, सोने के सींग, ताँबे की पीठ, रूपे का खुर समेत पाटम्बर उढ़ाय ब्राह्मणों को दीं, जो श्रीकृष्ण के जन्म समय संकल्पी थीं। पीछे मङ्गलाचार करवाय, वेद की सब रीति भाँति से कर राम कृष्ण का यज्ञोपवीत किया और उन दोनों भाइयों को कुछ दे विद्या पढ़ने को भेज दिया ! वे चले-चले अवंतिकापुरी के सँदीपन नाम ऋषि जो महा पण्डित काशीपुरी के थे, उसके यहाँ आय दण्डवत कर सन्मुख खड़े हो अति दीनता कर बोले––

हम पर कृपा करौ ऋषिराय । विद्यादान देहु मन लाय ।।

महाराज ! जब श्रीकृष्ण बलराम जी ने सँदीपन से दीनता कर कहा तब तो उन्होंने इन्हें अति प्यार से अपने घर में रक्खा और लगे बड़ी कृपाकर पढ़ावने । कितने एक दिनों में ये चार वेद, छः शास्त्र, नौ ब्याकरण, अठारह पुराण, मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, आगम, ज्योतिष, वैद्यक, कोक, संगीत, पिंगल पढ़ चौदह विद्या निधान हुये । तब एक दिन दोनों भाइयों ने हाथ जोड़ अति विनती कर गुरु से कहा कि महाराज ! कहा है जो अनेक, जन्म अवतार ले, बहुतेरा कुछ दे तो भी विद्या का पलटा नहीं दिया जाय । पर आप हमारी शक्ति देख गुरु दक्षिणा की आज्ञा कीजै तो हम यथा शक्ति दे आशीष ले अपने घर जायँ । इतनी बात कृष्ण बलराम जी के मुख से निकलते ही सँदीपन ऋषि वहाँ से उठ सोच विचार करते घरके भीतर गये और अपनी स्त्री से उनका भेद यों समझाय कर कहा कि ये राम श्रीकृष्ण दोनों बालक हैं सो आदि पुरुष अविनाशी हैं । भक्तों के हेतु अवतार ले भूमि का भार उतारने को संसार मेंआये हैं । मैंने इनकी लीला देख यह भेद जाना क्योंकि पढ़-पढ़ फिर-फिर जन्म लेते हैं तो भी विद्या रूपी सागर की थाह नहीं पाते और देखो इस बाल अवस्था में थोड़े ही दिनों में ये ऐसे अगम अपार विद्या के समुद्र के पार हो गये । जो किया चाहें सो पल भर में कर सकते हैं । इतना कह फिर बोले–––

चौपाई–इनसे कहा माँगिये नीर । सुनिके सुन्दरि कहै अधीर ।।
मृतक पुत्र माँगो तुम जाय । जो हरि हैं तो दैहैं लाय ।।

ऐसे घर में बिचार कर सँदीपन ऋषि स्त्री सहित बाहर आये ! श्रीकृष्ण बलदेवजी के सन्मुख कर जोड़ दीनता कर बोले महाराज ! मेरे एक पुत्र था, तिसे साथ ले मैं कुटुम्ब समेत एक वर्ष पूर्व समुद्र नहाने गया था । जो वहाँ पहुँच कपड़े उतार सब समेत समुद्र में नहाने लगा तो एक सागर की लहर आई उसमें मेरा पुत्र बह गया । सो फिर न निकला । किसी

मगरमच्छ ने निगल लिया। उसका मुझे बड़ा दु:ख है। जो आप गुरु दक्षिणा देना चाहते हो तो वही सुत ला दीजै और हमारे मन का दु:ख दूर कीजै। यह सुन श्रीकृष्ण बलराम गुरुपत्नी और गुरु को प्रणाम कर रथ पर चढ़ उनका पुत्र लाने के निमित्त समुद्रकी ओर चले और चलते-चलते कितनी एक बेर में तीर पर जा पहुँचे। इन्हें क्रोध कर आते देख सागर भयमान मनुष्य शरीर धारण कर बहुत सी भेंट ले नीर से निकल तीर पर डरता काँपता इनके सामने ही आ खड़ा हुआ और भेंट रख दण्डवत कर हाथ जोड़ शिर नाय अति विनय कर बोला——

चौपाई—वड़ो धन्य प्रभु दरशन दियो। कौन काज इत आवन भयो ।।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले हमारे गुरुदेव यहाँ कुटुम्ब सहित नहाने आये थे, तिनके पुत्र को तू तरंग से बहाय ले गया है। तिसे ला दे इसलिये हम यहाँ आये हैं?

चौपाई—सुनत सिन्धु बोल्यो शिर नाय। मैं नहिं लीन्हों वाहि वहाय ।।

तुम सव ही के गुरु जगदीश। राम रूप वाँध्यो हो ईश ।।

तभी से मैं बहुत डरता हूँ और अपनी मर्यादा से रहता हूँ। हरि बोले जो तूने नहीं लिया तो यहाँ से और कौन उसे ले गया। समुद्र ने कहा कृपानाथ! इसका भेद बताता हूँ कि एक शङ्खासुर नाम का असुर शङ्खरूप मुझमें रहता है। सो वो सब जलधर जीवों को दुख देता है और जो कोई तीर पै नहाने को आता है तो उसे पकड़ कर ले जाता है। कदाचित् वह आपके गुरु पुत्र को ले गया हो तो मैं नहीं जानता, आप भीतर पैठ देखिये।

चौपाई—यों सुन कृष्ण हँसे मन लाय। माँझ समुन्दर पहुँचे जाय ।।

देखत ही शंखासुर मार्यो। पेट फाड़ वाहर करि डार्यो ।।

तामें गुरु को पुत्र न पायौ। पछिताने वलभद्र सुनायो ।।

भैया! हमने इसे बिन काज मारा। बलराम जी बोले कुछ चिन्ता नहीं। अब आप इसे धारण कीजे। तब हरि ने उस शंख को अपना आयुध किया। दोनों भाई वहाँ से चले-चले यमपुरी में जा पहुँचे जिसका संयमनी पुरी नाम है और धर्मराज वहाँ का राजा है। इनको देखते ही धर्मराज अपनी गद्दी से उठ आगे आय भाव भक्ति कर ले गया। सिंहासन पर बैठाय पाँव धोय चरणामृत ले बोला, धन्य यह ठौर, धन्य यह पुरी जहाँ आकर प्रभु ने दर्शन दिया और अपने भक्तों को कृतार्थ किया। अब आप आज्ञा कीजै जो सेवक पूर्ण करे। प्रभु ने कहा कि हमारे गुरु पुत्र को ला दे। इतना बचन हरि के मुख से निकलते ही धर्मराज झट बालक को ले आया और हाथ जोड़ कर बोला कि कृपानाथ। आपकी कृपा से यह बात मैंने पहले ही जानी थी कि आप गुरुपुत्र को लैने आवेंगे। इसलिये मैंने यत्न कर रक्खा है, इस बालक को आज तक जन्म नहीं दिया, महाराज! ऐसे कह धर्मराज ने बालक हरि को दिया। प्रभु ने ले लिया और तुरन्त उसे रथ पर बैठाल वहाँ से चल कितनी एक बेर में ला गुरु के सामने ला खड़ा किया और दोनों भाइयों ने हाथ जोड़ के कहा गुरुदेव! अब क्या आज्ञा होती है? इतनी बात सुन और पुत्रको देख सँदीपन मुनि अति प्रसन्न हो श्रीकृष्ण बलराम जी को बहुत सी अशीषें देकर बोले——

चौपाई—अव मैं माँगौं कहा मुरारी। दीनों मोहि पुत्र सुखकारी ।।

अतिसय तुमसो शिष्य हमारो। कुशलक्षेम अव करहि पधारो ।।

जब ऐसे गुरु ने आज्ञा की, तब दोनों भाई बिदा हो दण्डवत कर रथ पर बैठे। वहाँ से चले-चले मथुरापुरी के निकट आये। इनका आना सुन राजा उग्रसेन, बसुदेव समेत नगर-वासी क्या स्त्री, क्या बालक, पुरुष, सब उठ धाये और नगर के बाहर आय भेंटकर अति सुख पाय गाजे बाजे से पाटम्बर के पाँवड़े डालते, प्रभु को नगर में ले गये। उस काल घर घर मङ्गलाचार होने लगे और बधाई बजने लगी।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का शंखासुर वध नामका छियालीसवाँ अध्याय ।।४६।।

अध्याय–४७

श्रीशुकदेवजी बोले कि पृथ्वीनाथ ! जो श्रीकृष्णचन्द्र ने बृन्दावन की सुरत करी सो सब लीला कहता हूँ, तुम चित्त दे सुनो। एक दिन हरि ने बलरामजी से कहा कि भाई ! सब बृन्दावनबासी हमारी सुरत कर अति दुख पाते होंगे क्योंकि जो मैंने उनको अवधि दी थी सो बीत गई। इससे अब उचित है कि किसी को वहाँ भेज दीजै जो जाकर उनको समाधान कर आवै। यों भाई से सम्मति कर हरि ने उद्धव को बुलाय के कहा कि हे उद्धव ! एक तो तुम हमारे सखा हो, दूजे अति चतुर ज्ञानवान और धीर हो, इसलिये हम तुम्हें वृन्दावन भेजना चाहते हैं कि तुम जाकर नन्द यशोदा और गोपियों को ज्ञान दे उनका समाधान कर आवो और माता रोहिणी को ले आवो। उद्धव जी ने कहा कि जो आज्ञा। फिर श्रीकृष्णचन्द्र बोले तुम प्रथम नन्दमहर और यशोदाजी को ज्ञान उपजाय उनके मन का मोह मिटाय ऐसे समझाय कहियो जो वे मुझे निकट जान दुख तजें और पुत्रभाव छोड़ ईश्वर मान भजें। पीछे उन गोपियों से कहियो जिन्होंने मेरे काज छोड़ी है लोक वेद की लाज। रात दिन लीला यश गाती हैं और अवधि की आश किये प्राण मुट्ठी में लिये हैं कि तुम सब भाव छोड़ हरि को भगवान जानकर भजो और विरह दुःख तजो। महाराज ! ऐसे उद्धव को कह कर दोनों भाइयों ने मिलकर एक पाती लिखी जिनमें नन्द यशोदा समेत गोप ग्वालों को तो यथा योग्य दण्डवत् प्रणाम आशीर्वाद लिखा और सब ब्रजवासियों को जोग उपदेश लिख उद्धव के हाथ दी और कहा यह पाती तुम पढ़ सुनाइयो। जैसे बने तैसे उन सबको समझाय शीघ्र आइयो। इतना सँदेशा कह प्रभु ने निज वस्त्र आभूषण मुकुट पहिराय अपने रथ पर बैठाय उद्धवजी को बृन्दावन बिदा किया। ये रथ हाँक कितनो एक बेर में मथुरा से चले-चले बृन्दावन के निकट जा पहुँचे तो वहाँ देखते क्या हैं कि सघन कुन्जों के पेड़ों पर भाँति-भाँति के पक्षी मनभावन बोलियाँ बोल रहे हैं और इधर-उधर काली धौली, पीली गायें घटा सी फिरती हैं और ठोर-ठौर गोपियाँ, ग्वालबाल श्रीकृष्ण का यश गाय रहे हैं। यह शोभा निरख हर्ष से और प्रभु का विहार स्थल जान प्रणाम करते उद्धवजी गाँव के तनिक निकट गये तो किसी ने हरि का रथ पहिचान पास आय इनका नाम पूछ नन्दमहर ते जा कहा कि महाराज ! श्रीकृष्ण का वेष किए उन्हीं का रथ लिए कोई उद्धव नाम का मथुरा ते आया है। इतनी बात के सुनते ही नन्दराय जैसे गोप मण्डल के बीच अथाई पर बैठे थे तैसे ही उठ धाये और तुरत उद्धवजी के निकट आये ! राम कृष्ण का सङ्गी जान अति हितकर मिले और क्षेम पूछ बड़े आदर मान से घर लिवाय ले गये फिर पहले पाँव

धुलवाय आसन बैठने को दिया, पीछे षटरस भोजन बनवाय उद्धवजी की पहुनाई की। जब वे रुचि से भोजन कर चुके तब सुठौर उज्ज्वल श्रेष्ठ शैया बिछवा दी, तिस पर पान खाय जाय उन्होंने पौढ़कर अति सुख पाया और मार्ग का सब श्रम गँवाया। कितनी एक बेर में जो उद्धवजी सोकर उठे तो नन्द महर उनके पास जा बैठे और पूछने लगे कि कहो उद्धवजी! शूरसेन के पुत्र हमारे परम मित्र बसुदेव जी कुटुम्ब समेत आनन्द से तो हैं? और हम से कैसी प्रीति रखते हैं? यों कह फिर बोले––

कुशल हमारे सुत की कहौ। जिनके सङ्ग सदा तुम रहौ॥
कवहुँ वे सुधि करत हमारी। उन विन दुख पावत हम भारी॥
सब ही सों आवन कह गये। बीती अवधि बहुत दिन भये॥

नित उठ यशोदा दही बिलोय-बिलोय माखन निकाल हरि के लिए रखती हैं। उसकी और ब्रजयुवतियों की जो उनके प्रेम रङ्ग में रंगी हैं, सुरत कभी कान्हा करते हैं कि नहीं?

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि पृथ्वीनाथ! इसी रीति से समाचार पूछते और श्रीकृष्णचन्द्र की पूर्व लीला गाते-गाते नन्दरायजी तो प्रेम से भीज इतना कह प्रभु का ध्यान कर अवाक हुये कि––

महावली कंसादिक मारे। अव काहे मोहिं कृष्ण विसारे॥

इस बीच अति ब्याकुल हो देह की सुध-बुध बिसारे मन मारे रोती यशोदा रानी उद्धवजी के निकट आय राम कृष्ण की कुशल पूछ प्रेम बिभोर हो बोलीं, कहो उद्धव जी! हरि हम बिन वहाँ कैसे इतने दिन रहे और क्या संदेशा भेजा है, कब आय दर्शन देंगे। इतनी बात सुनते ही पहले उद्धवजी ने नन्द यशोदा को कृष्ण बलराम की पाती पढ़ सुनाई पीछे समझा कर कहने लगे कि जिस के घर में भगवान ने जन्म लिया और बाल लीला का सुख दिया तिनकी महिमा कौन कह सके। तुम बड़े भाग्यवान हो क्योंकि जो आदि पुरुष अविनाशी शिव बिरंचि का कर्ता न जिसके माता न पिता न भाई न बन्धु तिन्हें अपना पुत्र मानते हो और सदा उनके ध्यान में मन लगाये रहते हो वह तुम से कब दूर रह सकता है। कहा है––

चौपाई–सदा समीप प्रेमवश हरी। जनके हेत देह निज धरी॥
जाके वैरी मित्र न कोई। ऊँच नीच कोऊ किन होई॥
जोई भक्ति भजन मन भरे। सोई हरि सों मिलि अनुसरे॥

जैसे भृङ्गी कीट को ले जाता है और अपना रूप देता है और जैसे कमल फूल में भौंरी मुद जाती है और फिर भौंरा रात भर उसके ऊपर गूँजता रहता है उसे छोड़ और कहीं नहीं जाता है, तैसे ही जो हरि से हित करता है और उनका ध्यान धरता है तिसे वे ही अपना बना लेते हैं और सदा उसके ही पास रहते हैं। यों कह फिर उद्धवजी बोले कि अब तुम हरि को पुत्र कर मत मानो। वे अन्तर्यामी भक्त हितकारी प्रभु आय दर्शन दे तुम्हारा मनोरथ पूरा करेंगे। तुम किसी बात की मन में चिन्ता मत करो।

महाराज! इसी रीति से अनेक तरह की बातें कहते और सुनते सुनते जब सब रात ब्यतीत भई और चार घड़ी पिछली शेष रही तब नन्दराय से उद्धव जी ने कहा कि महाराज अब दधि मथने की बिरियाँ हुई जो आप की आज्ञा पाऊँ तो यमुना स्नान कर आऊँ। नन्दमहर

बोल बहुत अच्छा। इतना कह व तो वहाँ बैठे सोच बिचार करते रहे और उद्धव उठ झट रथमें बैठ यमुना तीर पर आये । वस्त्र उतार देह शुद्ध करी पीछे नीर में निकट जाय रज शिर चढ़ाय हाथ जोड़ कालिन्दी की स्तुति कर आचमन कर जल में पैठ और नहाय धोय सन्ध्या तर्पण से निश्चिन्त हो लगे जप करने । उस समय सब ब्रजयुवतियाँ भी उठीं और अपना-अपना घर झार बुहार लीप पोत धूप दीप कर लगीं दही मथने ।

दोहा—दधि मथ के माखन लियौ, कियौ गेह कौ काम ।
तब सब मिलि पानी को चलीं, सुन्दर ब्रज की बाम ।।

इति श्री लल्लूलालकृत प्रेमसागर का उद्धव-संदेश नाम का सैंतालिसवाँ अध्याय ।।४७।।

अध्याय—४८

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे पृथ्वीनाथ ! जब उद्धवजी जप कर चुके तब नदी से निकल, वस्त्र आभूषण पहन, रथ में बैठ जो कालीदह, कालिन्दी तीर से नन्दगेह की ओर चले तो गोपियाँ, जो जल भरने को निकली थीं, तिन्होंने रथ दूर से पन्थ में आता देखा । देखते ही आपस में कहने लगीं कि, यह रथ किसका चला आता है । इसे देख लो, आगे पाव न बढ़ाओ । यह सुन उनमें से एक गोपी बोली कि, सखी ! कहीं वही कपटी अक्रूर तो नहीं आया जिसने श्रीकृष्णचन्द्र को ले जाय मथुरा में बसाया और कंस को मरवाया । इतनी सुन एक और उनमें से बोली वह विश्वासघाती फिर काहे को आया । एक बार तो हमारे जीवन मूल को ले गया, अब क्या जीव लेगा । महाराज ! इस भाँति की आपस में अनेक-अनेक बात कह रहीं थीं । इतने में जो रथ निकट आया तो कुछ एक दूर से उद्धवजी को देख कर आपस में कहने लगीं कि सखी, यह तो कोई श्यामवर्ण, कमल नयन, मुकुट सिर पर दिये बन माला गले में डाले पीताम्बर पहिरे, पीत पट ओढ़े श्रीकृष्णचन्द्र सा बैठा हमारी ओर देखता चला आता है । तब तिनही

में से एक गोपी ने कहा कि सखी ! यह तो कल नन्दजी के यहाँ आया है । उद्धव इसका नाम है और श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सन्देशा इसके हाथ कह पठाया है । इतनी बात के सुनते ही गोपियाँ एकान्त ठौर देख सोच संकोच छोड़ दौड़-दौड़ कर उद्धवजी के निकट गईं और हरि का हितू जान दण्डवत् कर कुशल क्षेम पूछ हाथ जोड़ रथ के चारों ओर घेर के खड़ी हुईं । उनका व्यवहार देख उद्धवजी भी रथसे उतर पड़े । तब सब गोपियाँ उन्हें एक पेड़ की छाया में बैठाय आप भी चारों ओर घेर बैठीं और अति प्यार से कहने लगीं ।

जैसे फलहीन तरुवर को पक्षी छोड़ जाता है, तैसे ही हरि हमें छोड़ गये । हमने उन्हें अपना सर्वस दिया तो भी हमारे न हुए महाराज ! जब प्रेम में मग्न हो इसी ढब की बातें बहुत सी गोपियों ने कहीं तब उद्धवजी उनके प्रेम की दृढ़ता देख ज्यों ही प्रणाम करने को उठना चाहते थे त्यों ही किसी गोपी ने एक भौंरे को फूल पर बैठते देख उसके मिस उद्धव से कहा अरे मधुकर ! तूने माधव के चरण कमल का रस पिया है तिसी से तेरा नाम मधुकर हुआ और कपटी का मित्र है इसलिए तुझे अपना दूत बनाकर भेजा है । तू हमारे चरण मत परस क्यों कि हम जानती हैं जितने श्याम वर्ण हैं उतने कपटी हैं । जैसा तू है तैसा श्याम । इससे तुम हमें मत करो प्रणाम । जो तू फूल फूल का रस लेता फिरता है और किसी का नहीं होता वैसे वे भी प्रीतकर किसी के नहीं होते । ऐसे गोपी कह रही थी कि भौंरा आया । उसे देख ललिता नाम की गोपी बोली——

अहो भ्रमर तुम विलग रहौ । यह तुम जाय मधुपुरी कहौ ।।

जहाँ कुबजा सी पटरानी और श्रीकृष्णचन्द्र बिराजते हैं वहाँ एक जन्म की हम क्या कहें, तुम्हारी तो जन्म-जन्म की यही चाल है । बलि राजा ने सर्वस दिया तिसे पाताल पठाया, और सीता सी सती को बिन अपराध घर से निकाला । जब उनकी यह दशा देखी तो हमारी क्या चली है, कह, फिर सब गोपी मिल हाथ जोड़ उद्धव से कहने लगी कि उद्धवजी हम अनाथ हैं । श्रीकृष्ण के पास तुम अपने साथ ले चलो । श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज इतना बचन गोपियों के मुख से निकलते ही उद्धवजी ने कहा कि जो संदेशा श्रीकृष्णचन्द्रजी ने लिख भेजा है सो समझा कर कहता हूँ, तुम चित्त दे सुनो । लिखा है तुम भोग की आस तज योग करो, तुमसे बियोग कभी न होगा और तब ऐसे कहा कि——

निश दिन करिये मेरा ध्यान । प्रिय नहिं कोई तुमहिं समान ।।

इतना कह फिर उद्धवजी बोले जो हैं आदि पुरुष अविनाशी हरी, तिनसे तुमने प्रीति निरन्तर करी, जिन्हें सब कोई अलख, अगोचर, अभेद बखाने, तिन्हें तुमने अपने कंथ कर माने । पृथ्वी, पवन, पानी, तेज, आकाश का है जैसे देह में निवास ऐसे प्रभु तुम में बिराजते पर माया के प्रभाव से न्यारे दिखाई देते हैं, उनका सुमिरन ध्यान करो । वे सदा अपने भक्तों के वश रहते और पास रहने से होता है ज्ञान ध्यान का नाश । इसलिये हरि ने किया है दूर जाय के बास और मुझे यह भी श्रीकृष्ण ने समझाय के कहा है कि तुम्हें वेणु बजाय बन में बुलाया और जब देखा तुम्हारे शरीर में मदनवीर का प्रकाश, तब हमने तुम्हारे साथ मिल कर किया था रासविलास ।

चौपाई—जब तुम सूरत दीन दिखाई । अन्तर्ध्यान भये यदुराई ।।

फिर जो तुम ने ज्ञानकर ध्यान हरि का मन में किया त्यों ही तुम्हारे चित्त की भक्ति ज्ञान देख प्रभुने आय दर्शन दिया, महाराज ! इतना बचन सुन गोपी बोलीं

चौपाई–गोपी तबै कहैं सतराय । सुनी वात अवरहु अरगाय ।।
ज्ञान योग विधि हमहि सुनावै । ध्यान छोड़ आकाश वतावै ।।
जिनकी लीला में मन रहै । तिनको को नारायण कहै ।।
वालापन ते जिन सुख दियौ । सो यों अलख अगोचर भयौ ।।
जो सवगुण युत रूप सरूपा । सो क्यों निर्गुण होय निरूपा ।।
जो तुम में प्रिय प्रान हमारे । सो क्यों सुनि है वचन तिहारे ।।
एक सखी कछू कहै विचारि । उद्धव की कीजै मनुहारि ।।
इनसों सखी कछू नहिं कहिये । सुनके वचन देख मुख रहिये ।।
एक कहति अपराध न याको । यह आयो पठवौ कुवजा को ।।
अव कुवजा जो जाहि सिखावै । सोई वाकौ गायो गावै ।।
कवहुँ श्याम कहैं नहिं ऐसी । कही आय ब्रज में इन जैसी ।।
ऐसीं वात सुनै को भाई । उठत शूल सुन सही न जाई ।।
कहत भोग तजि योग अराधो । ऐसौ कैसे कहि हैं माधो ।।
जप तप संयम नेम अपार । यह सव विधवा कौ ब्यौहार ।।
युग युग जीवहु कुँवर कन्हाई । शीश हमारे पर सुख दाई ।।
आछत पती विभूत लगाई । कहौ कहाँ की रीति चलाई ।।
हमको नेम योग व्रत एही । नन्द नन्दन पद सदा सनेही ।।
ऊधो तुम्हें दोष को लावै । यह सव कुब्जा नाच नचावै ।।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज ! जब गोपियों के मुख से ऐसे प्रेम रस साने बचन सुने तब योग कथा कह के उद्धव मन ही मन पछताय सकुचाय मौन साध शिर नवाय रह गये । फिर एक गोपी ने पूछा कहो, बलभद्र जी तो कुशल क्षेम से हैं और बालापन की प्रीति बिचार कभी हमारी सुधि करते हैं कि नहीं ? यह सुन उन्हीं में से किसी और गोपी ने उत्तर दिया कि तुम तो हो अहीरी गँवारी, और मथुरा की हैं सुन्दर नारी, तिनके वश हो राम बिहारी रहते हैं अब हमारी सुध क्यों करेंगे । जब से वहाँ जाके छाये, सखी तब से पिय भये पराये । जो पहले हम ऐसा जानतीं तो काहे को जाने देती । अब पछताये कुछ हाथ नहीं आता । इससे उचित है कि सब दुःख छोड़ अवधि की आस करि रहिये जैसे आठ महीने पृथ्वी बन पर्वत मेघ की आस किये तपन सहते हैं और तिन्हें आय मेघ ठण्डा करता है तैसे हरि भी आय मिलेंगे ।

बन पर्वत और यमुना तीर में जहाँ जहाँ श्रीकृष्ण बलराम ने लीला करी तहाँ तहाँ वहीं ठौर देख सुध आती है । हे सखी ! प्राणपति हरि के दर्शन कहाँ, यों कह बोलीं ।

दोहा–दुख सागर यह ब्रज भयो, नाम नाव विच धार ।।
बूड़हि विरह वियोग जल, कृष्ण करें कब पार ।।

चौपाई–गोपीनाथ क्यों सुधि विसराई । लाज न कछू नाम की आई ।।

इतनी बात सुन उद्धवजी मन ही मन बिचार करने लगे कि धन्य है गोपियों को और इतनी दृढ़ता को जो सर्वस्व छोड़ श्रीकृष्णचन्द्र के ध्यान में लीन हो रही हैं। महाराज ! उद्धवजी तो उनका प्रेम देख मन ही मन सराहते थे और उस काल सब गोपी उठ खड़ी भईं और उद्धवजी को बड़े आदर मान से अपने घर लिवाय ले गईं। उनकी प्रीति देख उन्होंने भी वहाँ जाय भोजन किया और विश्राम कर श्रीकृष्ण की कथा सुनाय उन्हें बहुत सुख दिया। तब सब गोपी उद्धवजी की पूजा कर बहुत भेंट आगे धर हाथ जोड़ अति बिनती कर बोलीं, उद्धव जी ! तुम हरि से जाय कहियो, कि नाथ ! आगे तो तुम बड़ी कृपा करते थे, हाथ पकड़ अपने साथ-साथ लिये फिरते थे। अब ठकुराई पाय नगर नारी कुबजा के कहे से योग लिख भेजा है। हम अबला अपवित्र अबतक गुरुमुख भी नहीं हुई, हम ज्ञान क्या जानें ?

दोहा—हरि संदेश नाहीं पठ्यौ, मोय दियौ उपदेश।
उद्धव माधव पै चल्यौ, करै गोप कौ भेष।।

चौपाई—उनसों बालापन की प्रीति। जाने कहाँ योग की रीति।
वे हरि क्यों न योग दै जात। यह न है सन्देश की बात।।
उद्धव यों कहियो समझाय। प्राण जात है राखें आय।।

महाराज ! इतनी बात कह सब गोपियाँ तो हरि का ध्यान कर मग्न हो रहीं और उद्धव जी उन्हें दण्डवत कर वहाँ से उठे और रथ पर बैठ गोवर्द्धन में आये। वहाँ कई एक दिन रहे फिर वहाँ से जो चले तो जहाँ-जहाँ श्रीकृष्णचन्द्रजी ने लीला करी थी तहाँ-तहाँ गये और दो चार दिन सब ठौर रहे। निदान, कितने एक दिन पीछे फिर बृन्दावन में आये और नन्द यशोदा जी के पास जा हाथ जोड़ कर बोले कि आपकी प्रीति देख-देख मैं इतने दिन ब्रज में रहा अब आज्ञा पाऊँ तो मथुरा को जाऊँ। उतनी बात के सुनते ही यशोदा रानी दूध, दही, माखन और बहुत सी मिठाई घर में जाय ले आईं और उद्धवजी को दे के कहा कि, यह तो तुम श्रीकृष्ण बलराम को देना, और बहन देवकी से यों कहना कि मेरे श्रीकृष्ण बलराम को भेज दें। विरमाय न राखें। इतना सन्देश कह नन्दरानी अति ब्याकुल हो रोने लगीं। तब नन्दजी बोले कि उद्धवजी हम तुमसे अधिक क्या कहें। तुम आप चतुर गुणवान् महा सुजान हो। हमारी ओर से प्रभु से जाय कहियो कि वे ब्रजवासियों का दुख बिचार वेग आवें। इतना कहते-कहते आँसू भर लिये और जितने ब्रजवासी क्या पुरुष क्या स्त्री वहाँ खड़े थे सो भी सब रोने लगे। तब उद्धवजी ने उन्हें ढाढ़स बँधाय बिदा हो रोहिणी को साथ ले मथुरा को चले और कितनी एक बेर चले चले श्रीकृष्ण के पास आ पहुँचे।

उन्हें देखते ही श्रीकृष्ण बलदेव उठकर मिले और बड़े प्यार से इनकी कुशल क्षेम पूँछ बृन्दावन के समाचार पूछने लगे। कहो उद्धवजी ! नन्द यशोदा समेत सब ब्रजवासी आनन्द से तो हैं और कभी हमारी सुरत करते हैं कि नहीं। उद्धवजी बोले कि महाराज ! ब्रज की महिमा और ब्रजवासियों का प्रेम मुझसे कुछ कहा नहीं जाता। उनके तो तुम ही हो प्रान, निश दिन करते हैं वे तुम्हारा ही ध्यान और ऐसे देखी गोपियों की प्रीति जैसी होती है पूरण भजन की रीति। आप का कहा योग का उपदेश जा सुनाया, पर मैंने भजन का भेद उन्हीं से पाया। इतना समाचार कह उद्धव जी बोले कि दीनदयाल मैं अधिक क्या कहूँ।

आप अन्तर्यामी घट-घट की जानतं हो । थोड़े ही में समझिये कि ब्रज में क्या जड़, क्या चैतन्य, सब आप के दर्शन पर्शन बिन महा दुखी हैं । केवल अवधि की आस कर जी रहे हैं । इतनी बात्त के सुनते ही जब दोनों भाई उदास हो रहे तब उद्धवजी तो श्रीकृष्णचन्द्र जी से बिदा हो नन्द यशोदा का संदेशा बसुदेव देवकी को पहुँचाय अपने घर को गये और रोहिणी जी श्रीकृष्ण बलराम से मिल अति आनन्द मान निज मन्दिर में गईं !

इति श्री लल्लूलालकृत प्रेमसागर का उद्धव-गोपी संवादनाम का अड़तालीसवाँ अध्याय ।।४८।।

अध्याय—४९
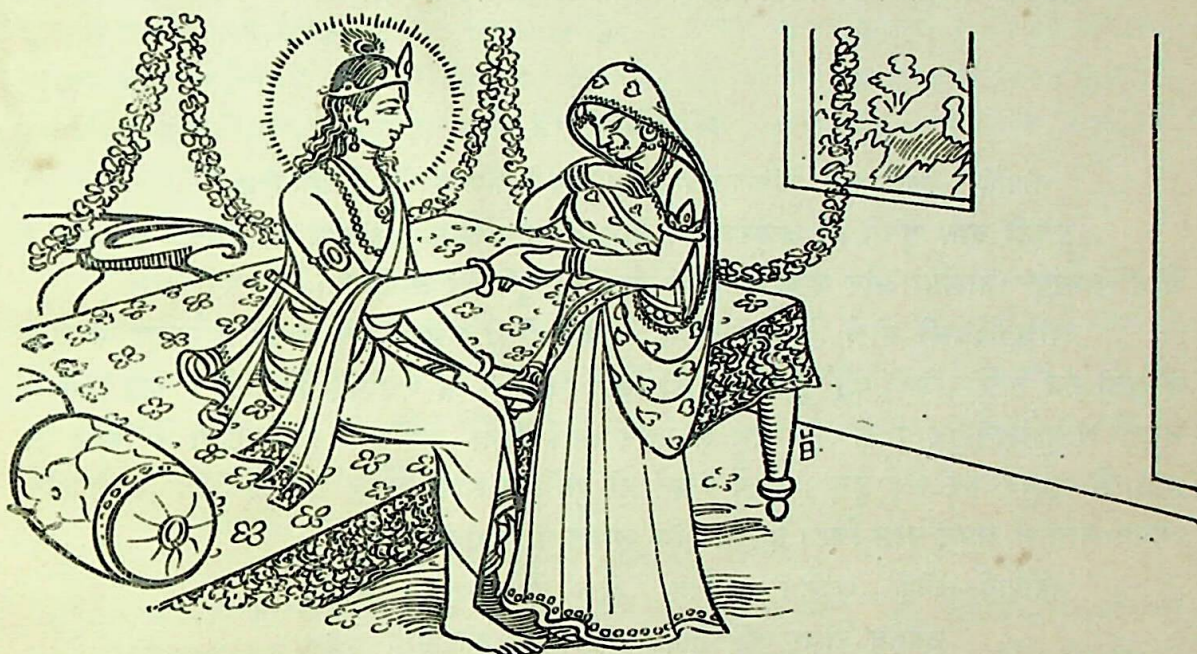
श्रीशुकदेवजी मुनि बोले कि महाराज ! एक दिन श्रीकृष्ण बिहारी भक्त हितकारी कुब्जा की प्रीति बिचार अपना प्रण पालने को उद्धवजी को साथ ले उसके घर गये ।

चौपाई—जव कुब्जा जान्यो हरि आये । पाटम्बर पाँवड़े विछाये ।।
अति आनन्द लगे उठि आगे । पूरब पुण्य पुँज जनु जागे ।।
उद्धव को आसन बैठारी । मन्दिर भीतर गए मुरारी ।।

वहाँ जाय देखें चित्रशाला में उज्वल बिछौना बिछा है । उसपर एक फूलों से सँवारो अच्छी सेज बिछी है । तिस पर हरि जा विराजे और कुब्जा एक और मन्दिर में जाय सुगन्ध उबटन लगाय न्हाय धोय अपनी चोटी कर सुथरे कपड़े पहन नख-शिख से श्रृंगार कर पान खाय सुगन्ध लगाय कर ऐसे बनठन के श्रीकृष्णचन्द्र के निकट आई कि जैसे रति अपने पति के पास आई होय और लाज से घूँघट किए प्रथम मिलन का भय उर में लिये चुपचाप एक ओर खड़ी हो रही । देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकंद ने उसे हाथ से अपने पास बिठाय लिया और उसका मनोरथ पूर्ण किया ।

चौपाई—तव उठि उद्धव के ढिंग आये । भई लाज हँसि नैन लगाये ।।

महाराज ! यों कुब्जा को सुख दे ऊधवजी को साथ ले श्रीकृष्णचन्द्र फिर अपने घर आये और बलरामजी से कहने लगे कि भाई हमने अक्रूरजी से कहा था कि तुम्हारा घर देखने जावेंगे सो पहले तो वहाँ चलिये । पीछे उन्हें हस्तिनापुर को भेज वहाँ के समाचार मँगवाइये । इतना कह दोनों भाई अक्रूर के घर गये । वह प्रभु को देखते ही अति सुख पाय प्रणाम कर हाथ जोड़ विनती कर बोले कृपानाथ ! बड़ी कृपा की जो दर्शन दिया और मेरा घर पवित्र किया । यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र बोले काका इतनी क्यों करते हो । हम तो आपके लड़के हैं । यों कह फिर सुनाया कि काका आपके पुण्य से असुर तौ सब मार गये । पर एक ही चिन्ता हमारे जी में है कि पाण्डु बैकुण्ठ सिधारे और दुर्योधन के साथ पाँच भाई हैं दुखी हमारे ।

इति श्री लल्लूलालकृत प्रेमसागर का उनचासवाँ अध्याय ।।४९।।

अध्याय–५०

चौपाई––कुन्ती फूफी अधिक दुख पावै । तुम विन जाय कौन समझावै ।।

इतनी बात सुनते ही अक्रूरजी ने हरि से कहा आप इस बात की चिन्ता न कीजै । मैं हस्तिनापुर जाऊँगा और उन्हें समझाय वहाँ की सुधि ले आऊँगा ।

श्रीशुकदेवजी बोले कि पृथ्वीनाथ ! जब ऐसा बचन श्रीकृष्णजी ने अक्रूर के मुख से सुना तब उन्हें पाँडवों की सुधि लेने को विदा किया । वे रथ पर बैठ चले । कई दिन में मथुरा से हस्तिनापुर पहुँचे और रथ से उतर जहाँ राजा दुर्योधन अपनी सभा में बैठा था तहाँ वो जुहार कर खड़े हुए । इन्हें देखते ही दुर्योधन सभा समेत उठकर मिला और अति आदर मान से अपने पास बिठा इनकी क्षेम कुशल पूँछ बोला :

चौपाई––नीके शूरसेन वसुदेव, नीके हैं मोहन वलदेव,
उग्रसेन राजा कहि हेत, नाहिंन काहू की सुधि लेत ।।
पुत्रहिं मार करत हैं राज । तिन्हें न काहू सो है काज ।।

ऐसे दुर्योधन ने कहा तब अक्रूर चुप हो रहा और मन ही मन में कहने लगा कि यह पापियों की सभा है यहाँ मुझे रहना उचित नहीं क्योंकि जो मैं रहूँगा तो ऐसी-ऐसी अनेक बातें कहेंगे । सो मुझसे कब सुनीं जायेंगी । इससे यहाँ रहने में लाभ नहीं । यों विचार अक्रूरजी वहाँ से उठ विदुर को साथ ले पाँडु के घर गये । जहाँ जाय देखें तो कुन्ती पति के शोक से महा ब्याकुल होय रो रहीं हैं । उसके पास जा बैठे और लगे समझाने कि, माई बिधना से कुछ किसी का वश नहीं चलता । इससे मनुष्य को चिन्ता करना उचित नहीं क्योंकि चिन्ता किये से कुछ हाथ नहीं आता । केवल चित्त को दुख देना है । महाराज ! जब समझाय बुझाय अक्रूर जी ने कुन्ती से कहा तब वह सोच समझ चुप हो रही और इनकी कुशल पूछ बोली हे अक्रूरजी ! हमारे माता पिता और भाई बसुदेवजी कुटुम्ब सहित भले हैं और श्रीकृष्ण बलराम कभी युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव इन अपने पाँचों भाइयों की सुध करते हैं ? यह तो यहाँ दुःख समुद्र में पड़े हैं । वे इनकी रक्षा कब आय करेंगे ? हमसे अब तो इस अन्धे धृतराष्ट्र का दुःख सहा नहीं जाता, क्योंकि वह दुर्योधन की मति से चलता है । इन पाँचों को मारने का

उपाय करता है । कई बेर तो विष घोल दिया सो मेरे भीमसेन ने पी लिया । इतना कह पुनि कुन्ती बोली कहो अक्रूरजी ! जब सब कौरव यों बैर कर रहे हैं तब ये बालक किसका मुख देखें और इन नीचों से बच कैसे होंय सयाने ? यह दुःख बड़ा है । ज्यों हिरनी झुण्ड से बिछुड़ कर पावे त्रास त्यों मैं भी सदा रहती हूँ उदास––

चौपाई––जिन कन्सादिक असुरन मारे । सोई हैं मेरे रखवारे ।
भीम युधिष्ठिर अर्जुन भाई । इनको दुख तुम कहियो जाई ।।

ऐसे दीन हो कुन्ती ने बचन कहे । उन्हें सुनकर अक्रूर ने नयन भर लिए और समझा कर कहने लगे कि तुम चिन्ता मत करो । ये जो पाँचों पुत्र तुम्हारे हैं सो महाबली यशी होंगे । श्रीकृष्ण-बलराम ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है कि फूफी से कहियो कि किसी बात से दुःख न पावें । हम बेग ही तुम्हारे निकट आते हैं । इतना कह अक्रूर जी कुन्ती को समझाय बुझाय आशा भरोसा दे बिदा हो बिदुर को साथ ले धृतराष्ट्र के पास गये और उनसे कहा कि तुम बड़े होके ऐसी अनीति क्यों करते हो, जो पुत्र के वश हुए अपने भाई का राजपाट ले भतीजों को दुःख देते हो । यह कहाँ का धर्म है, जो ऐसा अधर्म करते हो ।

लोचन गए न सूझै हिये । कुल वहि जाय पाप के किये ।।

तुमने क्यों भाई का राज्य लिया और भीम युधिष्ठिर को क्यों दुःख दिया ? इतनी बात के सुनते ही धृतराष्ट अक्रूर का हाथ पकड़ बोले कि क्या करूँ ? मेरा कहा कोई नहीं सुनता । ये सब अपनी-अपनी मति से चलते हैं । इससे इनकी बातों में कुछ नहीं बोलता । एकान्त बैठा चुपचाप अपने प्रभु का भजन करता हूँ । यह सुन अक्रूरजी दण्डवत कर हस्तिनापुर से चले-चले मथुरा नगर में आये ।

दोहा––उग्रसेन वसुदेव सों, कही पाँडु की वात ।
कुन्ती के सुत अति दुखित, भए क्षीण सव गात ।।

फिर श्रीकृष्ण बलरामजी के पास जा हाथ जोड़ बोले कि महाराज ! आपकी फूफी और पाँचों भाई कौरवों के हाथ से महा दुखी हैं । आप अन्तर्यामी हैं । वहाँ की व्यवस्था और बिपत्ति और कुन्ती का कहा सन्देशा सुनाय विदा हो अपने घर गये और सब समाचार सुन श्रीकृष्ण बलदेव फूफी का विचार करने लगे ।

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे पृथ्वीनाथ ! यह जो मैंने ब्रजवन मथुरा का यश गाया सो पूर्वार्द्ध कथा कही अब आगे उत्तरार्द्ध कहूँगा, सोई चित्त दे सुनों ।

इति श्री लल्लूलालकृत प्रेमसागर का पचासवाँ अध्याय ।।५०।।

अध्याय–५१

श्रीशुकदेवजी बोले कि––महाराज ! ज्यों श्रीकृष्णचन्द्र समोद जरासंध को जीत, कालयवन को मार, मुचकुन्द को तार ब्रज को तज द्वारका में जाय बसे सोई मैं सब कथा कहता हूँ । राजा उग्रसेन राजनीति से मथुरापुरी का राज्य करते थे और श्रीकृष्ण बलराम सेवक की भांति उनके आज्ञाकारी थे । इस से राजा प्रजा सब सुखी थे । पर एक कंस की रानियाँ ही अपने पति के शोक से महा दुखी थीं । एक दिन वे दोनों बहनें अति चिन्ता कर आपस में

कहने लगीं कि अब अनाथ होय यहाँ रहना भला नहीं । इससे अपने पिता के घर चल रहिये सो अच्छा है । हे महाराज ! ये दोनों रानियाँ ऐसे आपस में सोच बिचार कर रथ मँगवाय,

उस पर चढ़, मथुरा से चलीं-चलीं मगध देश में अपने पिता के यहाँ आईं और जैसे श्रीकृष्ण बलराम ने सब असुरों समेत कंस को मारा तैसे उन दोनों ने रो रो समाचार अपने पिता से सब कह सुनाया । सुनते ही जरासन्ध अति क्रोध कर सभा में आया और कहने लगा कि ऐसा बली कौन यदुकुल में उपजा जिन्होंने सब असुरों समेत महाबली कंस को मार मेरी बेटियों को राँड़ किया । मैं अभी अपना सब कटक ले चढ़ जाऊँ और यदुवंशियों समेत मथुरापुरी को जलाय श्रीकृष्ण बलराम को जीत बाँध न लाऊँ तो मेरा नाम जरासन्ध नहीं । इतनी कह उसने तुरन्त ही चारों ओर के राजाओं को पत्र लिखे कि तुम अपने अपने दल ले हमारे पास आवो । हम कंस का बदला ले यदुवंशियों को निरवंश करेंगे । जरासन्ध का पत्र पाते ही सब राजा आये और यहाँ जरासन्ध ने अपनी सेना ठीक-ठीक बना रक्खी थी । निदान, सब असुर दल साथ ले जरासन्ध ने जिस समय मगध देश से मथुरापुरी को प्रस्थान किया तिस समय उसके सङ्ग तेईस अक्षौहिणी सेना थी । महाराज ! जिस काल जरासन्ध सेना साथ ले धोंसा दे चला उस काल दशौ दिशाओं के दिग्पाल लगे थर-थर काँपने, और सब देवता मारे डर के लगे भागने । पृथ्वी लगी डगमग हिलने । निदान, कितने ही एक दिनों में चला-चला वहाँ जा पहुँचा और उसने चारों ओर से मथुरापुरी को घेर लिया । तब नगर निवासी श्रीकृष्णचन्द्र के पास जाय पुकारे कि महाराज ! जरासन्ध ने आय चारों ओर, से नगर घेर लिया । अब क्या करें ? इतनी बात के सुनते ही हरि कुछ सोच बिचार करने लगे इतने में बलरामजी ने प्रभु से कहा कि महाराज ! आपने भक्तों के दुःख दूर करने हेतु अवतार लिया है । अब अग्नि तनु धारण कर असुर रूपी बन को जलाय भूमि का भार उतारिये । यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र उनको साथ ले उग्रसेन के पास गये और कहा कि महाराज ! हमें तो लड़ने की आज्ञा दीजिये और आप सब यदुवंशियों को साथ ले गढ़ की रक्षा कीजै । इतना कहकर माता पिता के निकट आये ।

नगर निवासी ब्याकुल हो कहने लगे कि हे कृष्ण ! अब इन असुरों के हाथ से कैसे बचें । तब हरि ने माता पिता समेत सबको भयातुर देख समझ के कहा तुम किसी बात की चिन्ता मत करो । यह असुर दल शीघ्र नष्ट होगा । फिर उनसे बिदा हो प्रभु जो आगे वढ़े तो देवताओं ने रथ शस्त्र भर इनके लिए भेज दिए । वे आय इनके सामने ही खड़े हुए ।

निकसे दोऊ जन यदुराय । पहुँचे शीघ्र असुरदल जाय ।।

जहाँ जरासन्ध खड़ा था तहाँ जा निकले । देखते ही जरासन्ध श्रीकृष्णचन्द्र से अति अभिमान कर कहने लगा, अरे ! तू मेरे सोंही से भाग जा, मैं तुझे क्या मारूँ ? तू मेरे बल में मेरे समान नहीं जो मैं तुझ पर शस्त्र चलाऊँ । किन्तु बलराम को मैं देख लेता हूँ । श्रीकृष्णचन्द्र बोले अरे मूरख ! जो सूरमा होते हैं बड़ा बोल नहीं बोलते । सबसे दीनता करते हैं जो अपने मुँह अपनी बड़ाई करते हैं सो क्या कुछ भले कहाते हैं ।

यह सुन जरासन्ध ने जो क्रोध किया तो श्रीकृष्ण बलदेव चल खड़े हुए । इनके पीछे वह अपनी सब सेना लेना ले धाया और उनसे यों पुकार के कह सुनाया अरे दुष्टों ! मेरे आगे से कहाँ भाग जाओगे । बहुत दिन जीते बचे । तुमने अपने मन में क्या समझा है । अब जीते न रहने पाओगे । जहाँ सब असुरों समेत कंस गया है तहाँ ही सब यदुवंशियों समेत तुम्हें भी भेजूंगा । जरा दूर जाय दोनों भाई फिर खड़े हुए । श्रीकृष्णजी सब शस्त्र लिए और बलराम ने हल मूसल । ज्यों ही असुर दल उनके निकट गया त्यों ही दोनों बीर ललकार के ऐसे टूटे कि जैसे हाथियों के यूथ पर सिंह टूटे और लगा लोहा बजने । उस काल मारू बाजा बजता था सोई मानो मेघ गरजता था । सब देवता अपने विमानों पर बैठ आकाश से देख-देख प्रभु का यश गाते और इन्हीं की जीत मनाते थे और उग्रसेन समेत यदुवंशी अति चिन्ता करते थे कि श्रीकृष्ण बलराम को असुर दल में क्यों जाने दिया । इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि पृथ्वीनाथ ! जब लड़ते-लड़ते असुरों की बहुत सी सेना कट गई तब बलदेवजी ने रथ से उतर जरासन्ध को बाँध लिया । इतने में श्रीकृष्ण जी ने बलराम से कहा कि भाई इसे जीता छोड़ दो । मारौ मत, क्योंकि यह जीता जायेगा तो फिर असुरों को साथ ले आवेगा तिन्हें मार हम भूमिका भार उतारेंगे और जो जीता न छोड़ेंगे तो जो राक्षस भाग गये हैं सो हाथ न आवेंगे । ऐसे बलदेवजी को समझाय प्रभु ने जरासन्ध को छुड़वाय दिया । वह अपने लोगों में गया जो रण से भाग के बचे थे ।

चौपाई—चहुँ दिशि चितै कहै पछिताय । सिगरी सेना गई विलाय ।
भयौ दुःख अति कैसे जीजै । अव सव छोड़ तपस्या कीजै ।।

तब मन्त्री बोला क्या हुआ जो अबकी लड़ाई में हारे फिर अपना दल जोड़ लायेंगे और सब यदुवंशियों समेत श्रीकृष्ण बलदेव को स्वर्ग पठायेंगे ! तुम किसी बात की चिन्ता मत करो महाराज ! ऐसे समझाय बुझाय जो असुर रण से भाग के बचे थे तिन्हें जरासन्ध मन्त्री के साथ घर ले पहुँचा और वह फिर कटक जोड़ने लगा ।

श्रीकृष्ण बलराम भक्त हितकारी उग्रसेन के पास आय दण्डवत कर हाथ जोड़ बोले कि महाराज ! आपके पुण्य प्रताप से असुरों को मार भगाया । अब निर्भय राज कीजै । इतनां सुन राजा उग्रसेन ने अति आनन्द मान बड़ी बड़ाई की और धर्मराज कहने लगे ।

कितने एक दिन पीछे फिर जरासन्ध उतनी ही सेना ले फिर चढ़ आया और श्रीकृष्ण बलदेवजी ने पुनि ऐसे ही मार भगाया। ऐसे तेईस अक्षौहिणी सेना ले जरासन्ध सत्रह बेर आया और प्रभु ने मार हटाया।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! इसी बीच नारद मुनि जी के जो कुछ जी में आई तो वे एकाएकी उठकर कालयवन के यहाँ गये। इन्हें देखते ही वह सभा समेत उठ खड़ा हुआ और उसने दण्डवत कर हाथ जोड़ पूछा कि महाराज! आपका आना यहाँ कैसे हुआ?

चौपाई——सुनि कै नारद कहैं विचारि। मथुरा में वलभद्र मुरारि॥
तो विन तिन्हैं हनै नहिं कोय। जरासन्ध सो कछु नहिं होय॥
तू है अजर अमर अति वली। वालक वासुदेव के छली॥

यों कह फिर नारदजी बोले कि जिसे मेघवर्ण कमलनयन अति सुन्दर बदन पीताम्बर पहरे पीत पट ओढ़े देखे तिसका पीछा बिना मारे मत छोड़ियो। इतना कह नारद मुनि चले गये और कालयवन अपना दल जोड़ने लगा। उसने तीस करोड़ मलेच्छ इकट्ठे किये जिनके मोटे भुजा, लम्बे गले, बड़े दाँत, मैले वेष, भूरे केश, नयन लाल घुँघची से, तिन्हें साथ ले डंका दे, मथुरापुरी पर चढ़ आया और उसे चारों ओर से घेर लिया। उस काल श्रीकृष्णचन्द्र जी ने उसका ब्यौहार देखकर अपने मन में बिचारा कि यहाँ रहना भला नहीं, क्योंकि आज यह चढ़ आया है और कल को जरासन्ध भी चढ़ आवे तो प्रजा दुख पावेगी। इससे यहाँ न रहिये, सब समेत अन्त जाय बसिये। हरि ने यों बिचार कर विश्वकर्मा को बुलाय समझाय के कहा कि तुम अभी जाके समुद्र के बीच एक नगर बनावो। ऐसा कि जिससे सब यदुवंशी सुख से रहें यह भेद न जानें कि ये हमारे घर नहीं है और पलभर में सबको वहीं ले पहुँचावो। इतनी बात सुनते ही विश्वकर्मा ने जा समुद्र के बीच शुद्ध धरती के ऊपर बारह योजन का नगर जैसा श्रीकृष्ण ने कहा था तैसा ही रात में बनाय उसका नाम द्वारिका रख, आय हरि से कहा। फिर प्रभु ने उसे आज्ञा दी कि इसी समय तू यदुवंशियों को यहाँ से ऐसे पहुँचाय दे कि कोई यह भेद न जाने कि हम कहाँ आये और कौन ले आया?

इतना बचन प्रभु के मुख से ज्यों निकला त्यों रातों रात ही उग्रसेन, बसुदेव समेत विश्वकर्मा ने सब यदुवंशियों को ले पहुँचाया और श्रीकृष्ण बलराम जी वहाँ पधारे इस बीच समुद्र की लहर का शब्द सुन सब यदुवंशी चौंक पड़े और अति अचरज कर आपस में कहने लगे कि मथुरा में समुद्र कहाँ से आया तब हरि बलरामजी से बोले कि अब चल के प्रजा की रक्षा कीजै और कालयवन का वध कीजै। इतना कह दोनों भाई वहाँ से चले-चले ब्रज मण्डल में आये।

इति श्री लल्लूलालकृत प्रेमसागर का इक्यावनवाँ अध्याय॥५१॥

अध्याय—५२

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज! ब्रजमण्डल में आते ही श्रीकृष्णजी ने बलराम जी को तो मथुरा में छोड़ा और आप रूप के सागर पीताम्बर पहने, पीतपट ओढ़े, सब शृंगार

किये कालयवन के दल में जाय उसके सन्मुख हो निकले । वह इन्हें देखते ही अपने मन में कहने लगा कि हो न हो यह ही श्रीकृष्ण है । नारद मुनि ने जो चिन्ह बताये थे सो सब इसमें पाये जाते हैं । इसी ने कंसादिक असुर मारे, जरासन्ध की सेना हनी । ऐसे मन ही मन बिचार के यों कहा—

चौपाई—कालयवन यों कहै पुकारी । काहे भागे जात मुरारी ।।
आय पर्‍यो अब मोसों काम । ठाढ़े रहो करौ संग्राम ।।
जरासन्ध हों नहीं हों कंस । यादव दल को करौ विध्वंस ।।
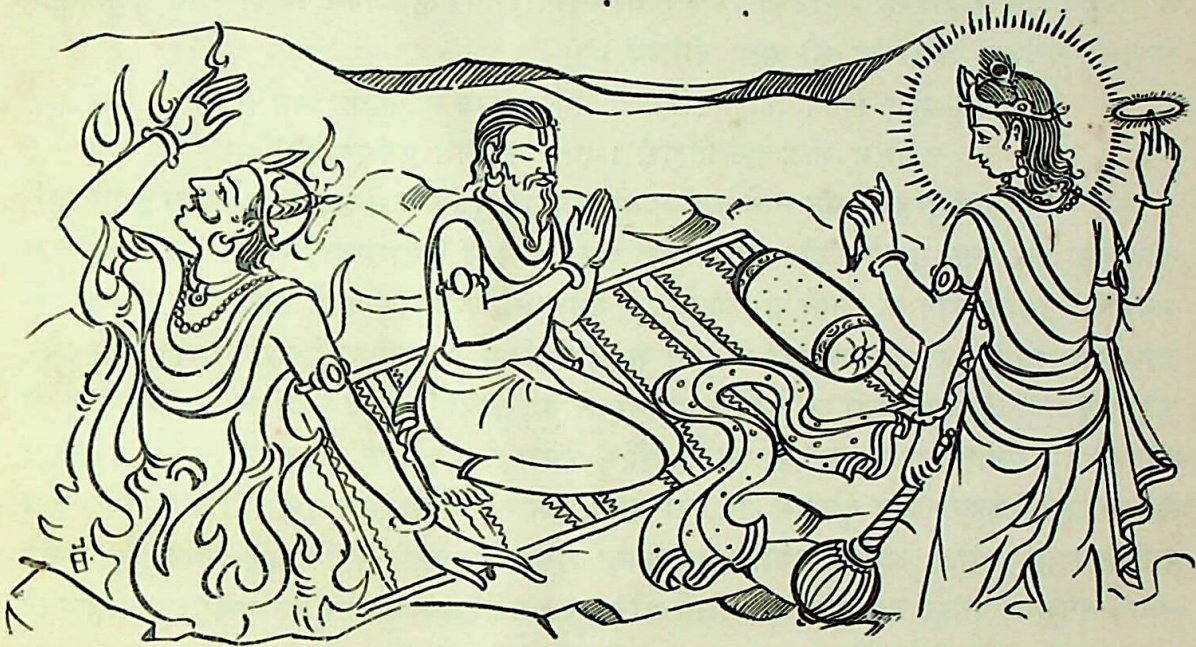
हे राजन् ! यों कह कालयवन अति अभिमान कर अपनी सब सेना को छोड़ अकेला श्रीकृष्णचन्द्र के पीछे धाया पर मूरख ने प्रभु का भेद न पाया । आगे-आगे तो हरि भागते थे और एक हाथ के अन्तर से पीछे पीछे वह दौड़ा जाता था । जब भागते-भागते अधिक दूर निकल गये तब प्रभु एक पहाड़ की गुफा में घुस गये । वहाँ जाकर देखा तो एक पुरुष सोया पड़ा है । यह झट अपना पीताम्बर उसे उढ़ाय आप अलग एक ओर छिप रहे । पीछे से कालयवन भी दौड़ता हाँफता उस अति अँधेरी कन्दरा में जा पहुँचा और पीताम्बर ओढ़े उस पुरुष को सोता देख इसने अपने जी में जाना कि यह कृष्ण ही छल कर सो रहा है । महाराज ! ऐसे मन ही मन बिचार, क्रोधकर उस सोते हुए के एक लात मार कालयवन बोला अरे कपटी ! क्या साधू की भाँति निश्चिन्ताई से सो रहा है । उठ मैं तुझे अभी मारता हूँ । यों कह इसने उसके ऊपर से पीताम्बर झटक हटा लिया । तब वह नींद से चौंक पड़ा और जो उसने इसको क्रोधकर देखा तो वह जलकर भस्म हो गया । इतनी बात के सुनते ही राजा परीक्षित ने कहा—

चौपाई—यह शुकदेव कहौ समुझाय । क्यों वह रह्यौ कन्दरा जाय ।।
ताकी दृष्टि भस्म क्यों भयौ । कौने वाहि महा वर दयो ।।

श्रीशुकदेव मुनि बोले पृथ्वीनाथ ! इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय मान्धता का बेटा मुचकुन्द अतिबली महाप्रतापी जिसका अरिदलदलन यश नौ-नौ खण्ड में छाय रहा था। एक समय सब देवता असुरों के सताये निपट घबराये मुचकुन्द के पास आये, और दीनता कर इन्होंने कहा महाराज ! असुर बहुत बढ़े हैं अब तिनके हाथ से बच नहीं सक्ते। आप हमारी रक्षा करो। यही रीति परम्परा से चली आई है कि जब-जब सुर, मुनि, ऋषि, अबल हुए हैं, तब-तब उनकी सहायता क्षत्रियों ने कीहै। इतनी बात सुनते ही मुचकुन्द इनके साथ हो लिया और जाके असुरों से युद्ध करने लगा उनसे लड़ते लड़ते कितने ही युग बीत गये। तब देवताओं ने मुचकुन्द से कहा कि महाराज ! आपने हमारे लिये बहुत श्रम किया अब कहीं बैठ विश्राम लीजिये और देह को सुख दीजिये।

चौपाई—वहुत दिनन कीनों संग्राम। गयो कुटुम्व सहित घन धाम ।।
रह्यौ न कोऊ तहाँ तिहारौ। ताते अव निज घर पगु धारौ ।।

और जहाँ तुम्हारा मन माने तहाँ जावो, यह सुन मुचकुन्द ने देवताओं से कहा कृपानाथ! मुझे कृपा कर ऐसा एकान्त ठौर बतावो कि जहाँ जाय मैं निश्चिन्ताई से सोऊँ और कोई न जगावे। इतनी बात के सुनते ही प्रसन्न हो देवताओं ने मुचकुन्द से कहा कि महाराज ! आप धौलागिरि पर्वत की कन्दरा में जाय शयन कीजिये। वहाँ तुम्हें कोई न जगावेगा और जो कोई जाने अनजाने वहाँ जा तुम्हें जगावेगा तो वह तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही जलकर राख हो जावेगा। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा से कहा कि महाराज ! ऐसे देवताओं से बर पाय मुचकुन्द उस गुफा में सो रहा था। इससे उसकी दृष्टि पड़ते ही कालयवन जल कर क्षार हो गया। आगे करुणानिधान कान्ह भक्त हितकारी ने मेघवर्ण, चन्द्रमुख, कमल नयन, चतुर्भुज, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म लिये और मुकुट मकराकृत कुण्डल बनमाला और पीताम्बर पहने मुचकुन्द को दर्शन दिया। यह स्वरूप देखते ही वह साष्टांग प्रणाम कर खड़ा हो हाथ जोड़ बोला कि कृपानिधान ! जैसे आपने इस महा अँधेरी कन्दरा में आय उजाला कर तम दूर किया तैसे दयाकर भेद बताय मेरे मन का भी भ्रम दूर कीजै। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि मेरे तो जन्म कर्म और गुण हैं घने वे किसी भाँति न जायँ गिने, कोई कितना ही गिने। पर मैं इस जन्म का भेद कहता हूँ, सो सुनों। अब के बसुदेव के यहाँ जन्म लिया। इससे बासुदेव मेरा नाम हुआ और मथुरापुरी से सब असुरों समेत कंस को मैंने ही मार भूमि का भार उतारा और सत्रह बेर तेईस अक्षौहिणी सैना ले जरासन्ध युद्ध करने को चढ़ आया सो भी मुझसे हारा और यह कालयवन तीस करोड़ म्लेच्छ की भीड़ भाड़ ले लड़ने को आया था सो वह तुम्हारी दृष्टि से जल मरा। इतनी बात प्रभु के मुख से सुनकर मुचकुन्द को ज्ञान हुआ, बोला, कि महाराज ! आपकी माया अति प्रबल है। उसने सारे संसार को मोहा है। इसी से किसी की सुधि बुधि ठिकाने नहीं रहती।

चौपाई—करत कर्म सब के सुख हेतू। ताते भारी दुख सह लेतू ।।

जो इस संसार में आया है सो इस अंधकूप से बिना आपकी कृपा निकल नहीं सकता, इससे मुझे भी चिन्ता है कि मैं कैसे ग्रह रूपी कूप से निकलूँगा। श्रीकृष्ण बोले सुन मुचकुन्द ! बात तो ऐसी है कि जैसे तूने कहा, पर मैं तेरे तरने का उपाय बताये देता हूँ, सो तूं कर।

तैंने राज्य, हाट, भूमि, धन व स्त्री के लिये अधिक अधर्म किये हैं जो बिन तप किये न छूटेंगे। इससे उत्तर दिशा में जाय तू तपस्या कर। वहीं अपनी देह त्याग। फिर ऋषि के घर जन्म लेगा, तब तू मुक्ति पदार्थ पावेगा। महाराज! इतनी बात जो मुचकुन्द ने सुनी तो जाना कि अब कलयुग आया। यह समझ प्रभु से बिदा हो दण्डवत कर परिक्रमा दे, मुचकुन्द तो बदरीनाथ को गया और श्रीकृष्णजी ने मथुरा में आय बलराम से कहा कि--

चौपाई--कालयवन को कियौ निकन्द। वदरी वन पठयौ मुचकुन्द।।
कालयवन की सेना घनी। तिन घेरी मथुरा आपनी।।
आवहुं तहाँ मलेच्छन मारैं। सकल भूमि कौ भार उतारैं।।

ऐसे कह हलधर को साथ ले श्रीकृष्णचन्द्र मथुरापुरी से निकल यहाँ आये जहाँ कालयवन का दल पड़ा था और आते ही दोनों उससे युद्ध करने लगे। निदान, लड़ते-लड़ते सब म्लेच्छों की सेना प्रभु ने मारी तब बलदेवजी से कहा भाई! अब मथुरापुरी की सब सम्पत्ति ले द्वारिका को भेज दीजिये। बलरामजी बोले बहुत अच्छा। तब श्रीकृष्णचन्द्र ने मथुरा का सब धन निकलवा भैंसों, छकड़ों, ऊँटों हाथियों पर लदवाय द्वारिका को भेज दिया। उस बीच जरासन्ध तेईस अक्षौहिणी सेना ले मथुरापुरी पर चढ़ आया। तब श्रीकृष्ण बलराम अति घबराय के निकले और उसके सन्मुख आ दिखाई दे उसके मन का सन्ताप मिटाने को भाग चले तब मन्त्री ने जरासन्ध से कहा महाराज! आपके प्रताप के आगे ऐसा कौन बली है जो ठहरे। देखो वे दोनों भाई कृष्ण बलराम छोड़ के सब धन धाम अपना प्राण लेके तुम्हारे त्रास के मारे नंगे पाँवों भगे चले जाते हैं। इतनी बात मन्त्री से सुन जरासन्ध भी यों पुकार कर कहता हुआ सेना ले उनके पीछे दौड़ा।

चौपाई--काहे डर के भाजे जात। ठाड़े रहौ करौ कछु वात।।
परत उठत कम्पत क्यों भारी। आई ढिग अव मृत्यु तुम्हारी।।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी मुनि बोले कि पृथ्वीनाथ! जब श्रीकृष्ण और बलदेवजी ने भाग के लोक रीति दिखाई तब जरासन्ध के मन से पिछला सब शोक गया, और अति प्रसन्न हुआ। आगे श्रीकृष्ण बलराम भगते-भगते एक गौतम नामक पर्वत जो ग्यारह योजन ऊँचा था तिसपर चढ़ गये, और उसकी चोटी पर जाय खड़े भये।

चौपाई--देख जरासन्ध कहै पुकारी। शिखर चढ़े वलभद्र मुरारी।।
अव किमि हमसों जाय पलायँ। पा पर्वत को देहु जलाय।।

इतना बचन जरासन्ध के मुख से निकलते ही असुरों ने उस पहाड़ को घेरा। नगर-नगर गाँव-गाँव से काठ किवाड़ लाय उसके चारों ओर चुन दिया तिसपर कूड़ा गूदढ़, घी, तेल से भिगो-भिगो डाल कर आग लगा दी। जब वह आग पर्वत की चोटी तक लगी। तब उन दोनों भाइयों ने वहाँ से इस भाँति द्वारका की बाट ली कि किसी ने उन्हें जाते भी न देखा और पहाड़ जल कर भस्म हो गया। उस काल जरासन्ध श्रीकृष्ण बलराम को उस पर्वत के संग जल मरा जान अति सुख मान सब दल साथ ले मथुरापुरी में आया और वहाँ का राज्य ले नगर ढिंढोरा दे उसने अपना थाना बैठाय जितने उग्रसेन बसुदेव के पुराने मन्दिर थे सो सब ढहवाये और अपने आप अपने नये मन्दिर बनबाये। इतनी कथा सुनाय श्री

शुकदेव जी ने राजा से कहा कि महाराज ! इस रीति से जरासन्ध को धोखा दे श्रीकृष्ण बलरामजी तो द्वारिका जाय बसे, और जरासन्ध भी मथुरा नगरी से चल सब सेना ले अति आनन्द करता निशंक हो अपने घर आया ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का जरासन्ध-विजय नाम का बावनवाँ अध्याय ।।५२।।

अध्याय—५३
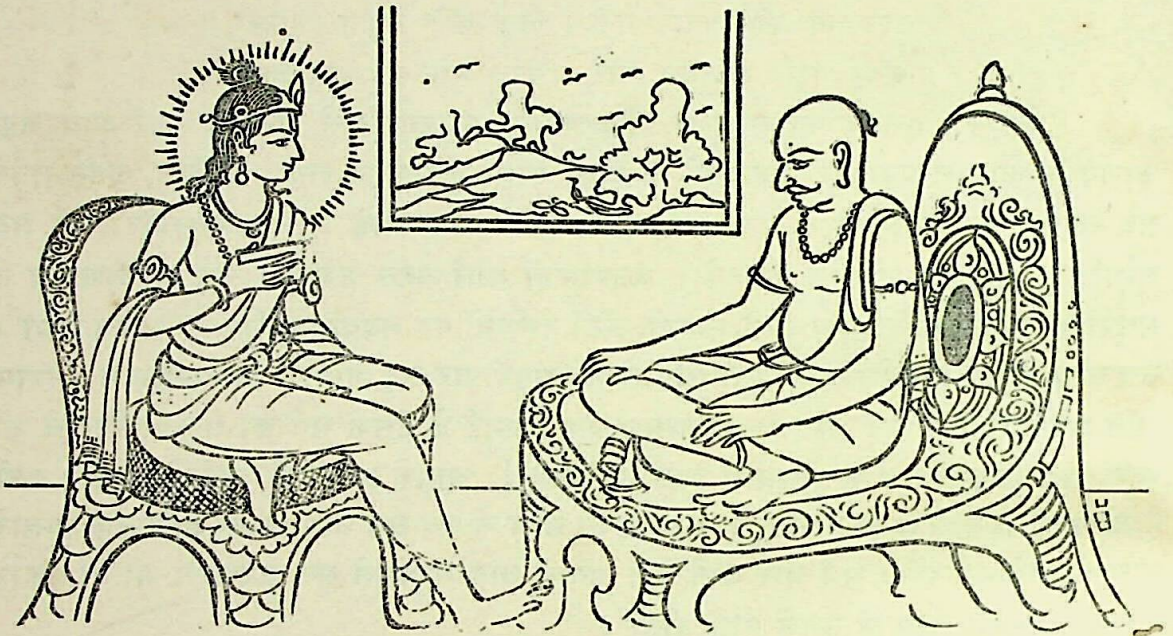
श्री शुकदेव मुनि बोले कि महाराज ! आगे की कथा सुनिये कि जब कालयवन को मार, मुचकुन्द को तार, जरासन्ध को धोखा दे बलदेवजी को साथ ले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ज्यों द्वारिका को गये त्यों सब यदुवंशियों के जी में जी आया और नगर में सुख छाया । सब चैन आनन्द से पुरवासी रहने लगे । इसमें कितने एक दिन पीछे एक दिन कई एक यदुवंशियों ने राजा उग्रसेन से कहा कि महाराज ! अब कहीं बलरामजी का ब्याह किया चाहिये क्योंकि ये समर्थ हुए । इतनी बात के सुनते ही उग्रसेन ने एक ब्राह्मण को बुलाय अति समझाय बुझाके कहा कि देवता ! तुम कहीं जाकर अच्छा कुल देख बलरामजी की सगाई कर आवो । इतना कह रोरी अक्षत रुपया नरियल दे बिदा किया । वह चला-चला आर्त देश में राजा रैवत के यहाँ गया और उनकी कन्या रेवती से बलरामजी की सगाई कर लग्न ठहराय उसके ब्राह्मण के साथ टीका लिवाय द्वारिका में राजा उग्रसेन के पास ले आया और उसने वहाँ का सब ब्यौरा कह सुनाया । सुनते ही राजा उग्रसेन ने अति प्रसन्न हो उस ब्राह्मण को बुलाया जो टीका ले आया था । मङ्गलचार करवाय टीका लिया, और बहुत सा धन दे उसे बिदा किया । पीछे आप सब यदुवंशियों को साथ ले बड़ी धूमधाम से आर्त देश में जाय बलरामजी को ब्याह लाये ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि ने राजा से कहा कि पृथ्वीनाथ ! इस रीति से तो यदुवंशी ब्याह कर लाये और श्रीकृष्णजी आपही भाई को साथ ले कुँडिनपुर में जाय भीष्मक नरेश की बेटी रुक्मिणी, शिशुपाल तथा राक्षसों से युद्ध कर, छीन लाये । उसे घर

में लाय ब्याह किया। यह सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से पूछा कि कृपासिन्धु भीष्मक सुता रुक्मिणी को श्रीकृष्णचन्द्र कुंडिनपुर में जाय असुरों को मार किस रीति से लाये सो तुम मुझे समझा कर कहो। श्रीनशुकदेव जी बोले कि महाराज! आप मन लगाय सुनिये। मैं सब भेद वहाँ का समझा कर कहता हूँ कि कुंडिनपुर नाम का एक नगर था। तहाँ भीष्मक नामक नरेश, जिसका यश छा रहा चहुँदेश थे उनके यहाँ जाय श्री सीताजी ने अवतार लिया। कन्या के होते ही राजा भीष्मक ने ज्योतिषियों को बुलाय भेजा। उन्होंने आय लग्न साध उस लड़की का नाम रुक्मिणी धर कर कहा कि महाराज! हमारे बिचारों में ऐसा आता है कि यह कन्या अति सुशील स्वभाव, रूप निधान, गुणों में लक्ष्मी समान होगी और आदि पुरुष से ब्याही जायगी। इतना बचन ज्योतिषी के मुख से निकलते ही राजा भीष्मक ने अति सुख मान बड़ा आनन्द किया और बहुत सा धन ब्राह्मणों को दिया। आगे वह लड़की चन्द्रकला की भाँति दिन-दिन बढ़ने लगी, और बाल लीला कर माता पिता को सुख देने लगी इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने कहा कि महाराज! जब यह सखियों के सङ्ग खेलती थी और दिन-दिन छबि उसकी दूनी होती थी उस बीच एक दिन नारदजी कुँडिनपुर आये और रुक्मिणी को देख श्रीकृष्णचन्द्र जी के पास द्वारिका में जाय उन्होंने कहा कि महाराज! कुण्डिनपुर में जो भीष्मक के घर पर कन्या रूप गुण-शील की खानि लक्ष्मी के समान जन्मी है, सो तुम्हारे योग्य है। यह भेद नारद मुनि से सुन पाया तभी से रात दिन अपना मन उस पर लगाया। महाराज, इसी रीति कर के तो श्रीकृष्णचन्द्र जी ने रुक्मिणी का नाम गुण सुना और जैसे रुक्मिणी ने प्रभु का नाम और यश सुना सो कहता हूँ कि एक समय देश-देश के कितने याचकों ने जाय कुण्डिनपुर में श्रीकृष्णचन्द्र का यश गाया। जैसे प्रभु ने ब्रज में जन्म लिया और गोकुल बृन्दावन में जाय ग्वालबालों के संग मिल बाल चरित्र किया और असुरों को मार भूमि का भार उतार यदुवंशियों को सुख दिया तैसे ही गाय सुनाया।

हरि के चरित्र सुनते ही सब नगर निवासी अति आश्चर्य कर आपस में कहने लगे, कि जिनकी लीला हमने कान से सुनी, तिन्हें कब नयनों से देखेंगे। इस बीच याचक किसी ढब से राजा भीष्मक की सभा में जाय प्रभु का चरित्र और गुण गाने लगे उस काल––

चौपाई––चढ़ीं अटा रुक्मिणी सुन्दरी। हरि चरित्र ध्वनि श्रवणन परी॥
अचरज कर भूलि मन रहै। फेर उझकि कै देखन चहै॥
सुनके कुंवरि रही मन लाय। प्रेमलता उर उपजी आय॥
भई मगन विह्वल सुन्दरी। वाकी सुधि बुधि हरिगुण हरी॥

यों कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, पृथ्वीनाथ! इस भाँति श्री रुक्मिणी जी ने प्रभु का यश और नाम सुना तो उसी दिन से रात दिन आठ पहर चौंसठ घड़ी सोते जागते बैठते खड़े, चलते, फिरते, खाते-पीते, खेलते उन्हीं का ध्यान किए रहैं और गुण गाया करें। तिन भोर ही उठ स्नान कर मिट्टी की गौर बनाय रोरी अक्षत पुष्प, चढ़ाय, धूप-दीप कर, मनाय हाथ जोड़ शिर नवाय कर कहा करै––

मो पर गौरि कृपा तुम करौ। यदुपति पति दै मम दुख हरौ॥

इस रीति से सदा रुक्मिणी रहने लगी। एक दिन राजा भीष्मक उसे देख अपने मन

में चिन्ता कर कहने लगे कि अब यह हुई ब्याहने योग, इसे शीघ्र ही न दीजै तो हँसेंगे लोग। कहा है कि जिस के घर में कन्या बड़ी होय तिस का दान, जप, तप करना वृथा है क्योंकि किये से तब तक कुछ धर्म नहीं होता, जब तक कन्या के ऋण से नहीं उबार होय। यों बिचार राजा भीष्मक अपनी सभा में आये। तब मन्त्री कुटुम्ब के लोगों को बुलाय बोले भाइयो! कन्या ब्याह के योग्य हुई। इसके लिए कहीं बर ढूँढ़ना चाहिये। इतनी बात के सुनते ही उन लोगों ने अनेक अनेक नरेशों के कुल, गुण, रूप और पराक्रम कह सुनाए। पर राजा भीष्मक के चित्त में किसी की बात कुछ न आई। तब उसका बड़ा बेटा जिसका नाम रुक्म था सो कहने लगा कि पिता! नगर चन्देरी का राजा शिशुपाल अति बलवान है और सब भाँति से हमारे समान है। इससे रुक्मिणी की सगाई वहाँ कीजै और जगत में यश लीजै। महाराज! उसकी भी बात राजा ने सुनी अनसुनी की तब रुक्मेश नाम उसका छोटा लड़का बोला--

चौपाई--रुक्मिणी पिता कृष्ण को दीजै। वासुदेव से नाता कीजै।।
यह सुन भीष्मक हरषे गात। कही पूत तैं नीकी वात।।
तू वालक सवसों अति ज्ञानी। तेरी वात भली हम मानी।।

कहा है कि--

दोहा--छोटे बड़ेन पूछ के, कीजै मन परतीत।
सार वचन गहि लीजिये, यही जगत की रीति।।

ऐसे कह फिर राजा भीष्मक बोले कि यह तो रुक्मेश ने भली बात कही। यदुवंशियों में राजा शूरसेन बड़े यशी और प्रतापी हुए। तिन्हीं के पुत्र बसुदेवजी हैं सो कैसे हैं कि जिनके घर में आदि पुरुष, अविनाशी, सकल देवन के देव श्रीकृष्णचन्द्र ने जन्म ले महाबली कंसादिक राक्षसों को मारा और भूमि का भार उतार यदुकुल को उजागर किया और सब यदुवंशियों समेत प्रजा को सुख दिया। ऐसे जो द्वारिकानाथ श्रीकृष्णचन्द्र हैं उन्हें रुक्मिणी दें तो जगत में यश और बड़ाई लें। इतनी बात के सुनते ही सब सभा के लोग अति प्रसन्न हो बोले कि महाराज! यह तो तुमने भली बिचारी ऐसा बर घर कहीं और न मिलेगा। इससे उत्तम यही है कि श्रीकृष्णचन्द्र जी को रुक्मिणी ब्याह दीजै। महाराज! जब सभा के लोगों ने यह कहा तब राजा भीष्मक का बड़ा बेटा जिसका नाम रुक्म था सो निपट झुंझलाय कर बोला--

चौपाई--समझ न बोलत महा गँवार। जानत नाहिं कृष्ण व्यवहार।।
सौलह वर्ष नन्द के रह्यौ। तव अहीर सव काहू कह्यौ।।
कामरि ओढ़ी गाय चराई। वन वन वैठि छाछ जिन खाई।।

वह तो गँवार ग्वाल है उसकी जाति पाँति का क्या ठिकाना और जिसके माँ बाप का ही भेद नहीं जाना जाता उसे हम पुत्र किसका कहें। कोई नन्द गोप का जानता है, कोई बसुदेव का कर मानता है। पर आजतक यह भेद किसी से न पाया कि कृष्ण किसका बेटा है। इसी से जो जिसके मन आता है सो कहता है। हम राजा हैं जिसे सब कोई जानता मानता है और यदुवंशी राजा कब भये? क्या हुआ जो थोड़े दिनों से बल प्राप्त कर उन्होंने बड़ाई पाई। पहला कलङ्क तो छूटेगा नहीं। वह उग्रसेन का चाकर कहाता है, उससे सगाई कर क्या हम कुछ संसार में यश पावेंगे? कहा है ब्याह, बैर और प्रीति समान से ही करिये तो शोभा पाइये

और जो कृष्ण को देंगे तो लोग कहेंगे ग्वाल का सारा, तिससे सब जायगा नाम और यश हमारा। महाराज ! यों कह फिर रुक्म बोला कि नगर चन्देरी का राजा शिशुपाल बड़ा बली और प्रतापी है। उसके डर से सब राजा थर-थर काँपते हैं और परम्परा से उसके घर राजगद्दी चली आती है। इससे अब उत्तम यही है कि रुक्मिणी उसी को दीजे और मेरे आगे फेर कृष्ण का नाम न लीजै। इतनी बात के सुनते ही सब सभा के लोग मारे डर के मन ही मन पछता-पछता के चुप हो रहे और राजा भीष्मक तब भी कुछ न बोला इतने में रुक्म ने ज्योतिषियों को बुलाय शुभ दिन लग्न ठहराय एक ब्राह्मण के हाथ राजा शिशुपाल के यहाँ टीका भेज दिया। वह ब्राह्मण टीका लिये चलता-चलता नगरी चन्देरी में जाय राजा शिशुपाल की सभा में पहुँचा। देखते राजा ने प्रणाम कर जब ब्राह्मण से पूछा कि कहो देवता ! आपका आना कहाँ से हुआ और यहाँ किस मनोरथ के लिये आये हो, तब तो उसे विप्र ने आशीष दे अपने आने का सब ब्यौरा कहा। सुनते ही राजा शिशुपाल ने अपने पुरोहित को बुलवाय टीका लिया और उस ब्राह्मण को बहुत सा द्रव्य दे विदा किया। तब जरासन्ध आदि अनेक नरेशों को न्यौत बुलाया जो अपने-अपने दल ले आये। तब वह भी अपनी कटक ले ब्याहने चला। उस ब्राह्मण ने राजा भीष्मक से कहा, महाराज ! मैं शिशुपाल को टीका दे आया। वह बड़ी धूम धाम से बारात ले ब्याहने आता है। आप अपना कार्य आरम्भ कीजै। यह सुन राजा भीष्मक पहले तो निपट उदास हुए। पीछे कुछ सोच समझ मन्दिर में जाय उन्होंने पटरानी से कहा। वह सुन कर लगीं मङ्गलाचार गाने और कुटुम्ब की रानियों को बुलाय मङ्गलाचार करवाय ब्याह की रीति भाँति करने। फिर राजा ने बाहर आ प्रधान और मन्त्रियों को आज्ञा दी कि कन्या के विवाह में जो जो वस्तु चाहिए सो-सो इकट्ठी करो। राजा की आज्ञा पाते ही मन्त्री और प्रधान ने सब वस्तु बात की बात में मँगवाय लाय धरीं। लोगों ने देखा सुना तो यह चरचा नगर में फैली कि रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्णचन्द्र से होता था सो दुष्ट रुक्म ने होने न दिया, अब शिशुपाल से होगा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि पृथ्वीनाथ ! नगर में यह घर-घर बात हो रही थी और राज-मन्दिर में नारियाँ गाय बजाय के रीति भाँति करती थीं, ब्राह्मण वेद पढ़-पढ़ टेहलें करावते थे। ठौर-ठौर दुन्दुभी बजाते थे दरवाजे दरवाजे पर सपल्लव केला के खम्भ गाड़-गाड़ सोने के कलश भर-भर लोग धरते थे और तोरण बन्दन बार बाँधते थे और नगर निवासी न्यारे हीं हाट बाट चौहटे झार बुहार पाट से पाटते थे। इस भाँति घर और बाहर में धूम मच रही थी कि उसी समय दो चार सखियों ने जा रुक्मिणी से कहा कि——

चौपाई——तोहि रुक्म शिशुपाल दई। अव तू रुक्मिनि रानी भई॥
बोली सोच नाय के शीश। मन वच प्रण मेरे जगदीश॥

इतनी कह रुक्मिणी ने अति चिन्ता कर एक ब्राह्मण को बुलाय हाथ जोड़ उसकी बहुत बिनती और बड़ाई कर अपना मनोरथ उसे सब सुनाय के कहा कि महाराज ! मेरा संदेश द्वारिका में ले जावो और द्वारिकानाथ को सुनाय उन्हें साथ ही ले आवो तो मैं बड़ा गुन मानूँगी और यह जानूँगी कि तुमने ही दया कर मुझे श्रीकृष्ण वर दिया। इतनी बात

के सुनते ही वह ब्राह्मण बोला कि अच्छा तुम सन्देश कहो, मैं लेकर जाऊँगा और श्रीकृष्णचन्द्र जी को सुनाऊँगा। वे कृपानिधान हैं जो कृपा कर मेरे सङ्ग आवेंगे तो ले आऊँगा। इतना बचन ज्यों ब्राह्मण के मुख से निकला त्यों रुक्मिणी ने एक पाती प्रेम रङ्गराती लिख उसके हाथ दी और कहा कि श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द को पाती दे मेरी ओर से कहियो कि उस दासी ने कर जोड़ अति विनती कर कहा है कि आप अन्तर्यामी हैं, घट घट की जानते हैं जिससे रहे लाज सो कीजै काज और दासी को आप वेग दर्शन दीजै। महाराज! ऐसे कह सुन जब रुक्मिणी ने उस ब्राह्मणको विदा किया, तब वह प्रभु का ध्यान कर नाम लेता द्वारिका को चला।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि राजा! ऐसी जो सुहावनी द्वारिका-पुरी तिसे देखता-देखता वह ब्राह्मण राजा उग्रसेन की सभा में आशीष दे पूछने लगा कि श्री-कृष्णचन्द्रजी कहाँ विराजे हैं, तब किसी ने हरि का मन्दिर बताय दिया, यह जो द्वार पर जाय खड़ा हुआ।

कहिये आप कहाँ ते आये। कौन देश की पाती लाये।।

यह बोला मैं ब्राह्मण हूँ और कुण्डिनपुर का रहने वाला हूँ। राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी जी की चिट्ठी श्रीकृष्ण को देने आया हूँ। इतनी बात सुनते ही पौरियों ने कहा महाराज! आप मन्दिर में पधारिये श्रीकृष्णचन्द्र सों ही सिंहासन पर बिराजते हैं यह बचन सुन ब्राह्मण जो भीतर गया तो हरि ने देखते ही सिंहासन से उतर दण्डवत कर अति आदर मान किया और सिंहासन पर बैठाय चरण धोय चरणामृत लिया और ऐसे सेवा करने लगे जैसे कोई अपने इष्टदेव की सेवा करे। निदान प्रभु ने सुगन्ध उबटन लगाय नहलवाय धुलवाय पहले तो उसे षटरस भोजन करवाये। फिर बीड़ा दे केशर चन्दन से चरच फूलों की माला पहिराय मणिमय मन्दिर में ले जाय एक सुथरे जड़ाऊ छपरखट पै लिटाया। महाराज! वह भी बाट का हारा थका तो था ही, लेटते ही सुख पाय सो गया। श्रीकृष्णजी कितनी एक बेर तक तो उसकी बात सुनने की अभिलाषा किये वहाँ बैठे मन ही मन बिचार करते रहे कि अब उठे अब उठे। निदान, जब देखा कि न उठा तो आतुर हो उसके पैताने बैठ लगे पाँव दबाने, इसमें उसकी नींद टूटी तो वह उठ बैठा, तब हरिने उसकी क्षेम कुशल पूछी--

चौपाई--नीके राज देश तुम जानो। हम से भेद कहो आपनो।।
कौन काज यहाँ आवन भयो। दरश दिखाय हमें सुखदयो।।

ब्राह्मण बोला कि कृपानिधान! आप मन दे सुनिये मैं अपने आने का कारण कहता हूँ कि महाराज कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक की कन्या ने जब से आपका नाम और गुण सुना है तभी से वह निश दिन तुम्हारा ही ध्यान किये रहती है और कोमल चरणों की सेवा किया चाहती है। संयोग भी आय बना था पर बात बिगड़ गई। प्रभु बोले सो क्या? ब्राह्मण ने कहा--दीनदयाल! एक दिन राजा भीष्मक ने अपने सब कुटुम्बी और सभा के लोगों को बुलाय के कहा कि भाइयो कन्या ब्याह ने योग्य भई, अब इसके लिए वर ठहराना चाहिए। इतना बचन राजा के मुख से निकलते ही उन्होंने अनेक राजाओं के कुल, गुण नाम और पराक्रम कह सुनाया पर इनके मन में एक न आया, तब रुक्मकेश ने

आपका नाम सुनाया। तो प्रसन्न हो राजा ने उसका कहना मान लिया और सबसे कहा, कि भाइयो मेरे मन में तो इसकी बात पत्थर की लकीर हो चुकी है, तुम क्या कहते हो। वे बोले महाराज! ऐसा बर, घर जो त्रिलोक में ढूँढिएगा तो न पाइयेगा। इससे अब उचित यही है कि बिलम्ब न कीजै, शीघ्र श्रीकृष्णचन्द्र जी से रुक्मिणी का विवाह कर दीजै। महाराज, यही बात ठहर चुकी थी। इससे रुक्म ने भाँजी मार रुक्मिणी की सगाई शिशुपाल से की, अब वह सब असुरदल साथ ले ब्याह को चला आता है।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि पृथ्वीनाथ!, ऐसे उस ब्राह्मण ने समाचार सुनाय रुक्मिणी जी की चिट्ठी हरि के हाथ दी। प्रभु ने अति हित से पाती ले छाती से लगाय ली और पढ़कर प्रसन्न हो ब्राह्मण से कहा देवता तुम किसी बात की चिन्ता मत करो मैं तुम्हारे साथ चल असुरों को मार उनका मनोरथ पूरा करूँगा। यह सुन कर ब्राह्मण को तो धीरज हुआ पर रुक्मिणी का ध्यान कर चिन्ता करने लगे।

इति श्री लल्लूलालकृते प्रेमसागरे का रुक्मिणी संदेश स्वीकरण नामक त्रेपनवाँ अध्याय ।।५३।।

●

अध्याय—५४

श्रीशुकदेवजी बोले राजन्! श्रीकृष्णचन्द्र ने उस ब्राह्मण को ढाँढस बँधाकर कहा—

जैसे घिसते काठ ते, कढ़हिं ज्वाला जारि। ऐसे सुन्दरि लाय हैं दुष्ट असुर दल मारि ।।

इतना कहा, फिर स्वच्छ वस्त्र आभूषण पहन राजा उग्रसेन के पास जाय, हाथ जोड़ कहा—महाराज! कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक ने अपनी कन्या देने का पत्र लिख कर पुरोहित के हाथ मुझे अकेला बुलाया है। जो आपकी आज्ञा पाऊँ तो उनकी बेटी ब्याह कर लाऊँ।

चौपाई—सुन कर उग्रसेन यों कहै। दूर देश कैसे मन रहै।
तहाँ अकेले जात मुरारी। मत काहू सों उपजै रारी।।

तब तुम्हारा समाचार हमें यहाँ कौन पहुँचावेगा। यों कह पुनि उग्रसेन बोले कि अच्छा जो वहाँ जाना चाहते हो तो अपनी सब सेना साथ ले, दोनों भाई जावो और ब्याह कर शीघ्र चले जावो। तुम चिरंजीव हो तो सुन्दरी बहुत आय रहेंगी। आज्ञा पाते ही श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि महाराज! तुमने सच कहा, पर मैं आगे चलता हूँ आप कटक समेत बलरामजी को पीछे भेज़ दीजियेगा। ऐसा कह हरि उग्रसेन, वसुदेव से बिदा हो उस ब्राह्मण के निकट आये और रथ समेत अपने दारुक सारथी को बुलाया। वह प्रभु की आज्ञा पाते ही चार घोड़े का रथ तुरन्त जोत लाया। तब श्रीकृष्णचन्द्र उस पर चढ़े और ब्राह्मण को पास बिठाय द्वारिका से कुण्डिनपुर को चले। जो नगर के बाहर निकले तो देखते हैं कि दाहिनी ओर तो मृगों के झुण्ड चले जाते हैं और सन्मुख से सिंह सिंहनी अपना भक्ष्य लिए गर्जते आते हैं। यह शुभ शकुन देख ब्राह्मण बोला कि महाराज! इस समय इस शकुन के देखने से मेरे बिचार में आता है कि जैसे सिंह अपना काज साध के आते हैं तैसे ही तुम भी अपना काज सिद्ध कर आवोगे। श्रीकृष्णचन्द्र बोले आपकी कृपा से। इतना कह हरि वहाँ से आगे बढ़े और कुण्डिनपुर में जा पहुँचे, तो वहाँ देखें कि ठौर-ठौर ब्याह की सामिग्री धरी है। तिससे नगर की छबि कुछ और ही हो रही है।

घर घर में आनन्द हो रहे हैं। महाराज! यह तो नगर की शोभा थी और राज मन्दिर में जो कुतूहल हो रहा था उसका वर्णन कोई क्या करे। वह देखते ही बनि आवै। आगे श्रीकृष्णचन्द्र ने नगर देख राजा भीष्मक की बाड़ी में डेरा किया, वहाँ शीतल छाँहू में बैठ ठंडे हो उस ब्राह्मण से कहा कि देवता पहले आने का समाचार रुक्मिणी जी को जा सुनावो जो वे धीरज धरें। पीछे वहाँ का भेद हमें आ बताओ। जो हम फिर उसका उपाय करें। ब्राह्मण बोला कृपानाथ आज ब्याह का पहला दिन है, राज मन्दिर में बड़ी धूम-धाम हो रही है, मैं तो जाता हूँ और रुक्मिणी को अकेली पाय के आने का भेद कहूँगा। यों कह वह ब्राह्मण वहाँ से चला। महाराज! इधर से हरि तौ चुपचाप अकेले पहुँचे और उधर से राजा शिशुपाल जरासन्ध समेत सब असुर दल लिए इस धूमधाम से आया कि जिसके बोझ से लगा शेषनाग डगमगाने और पृथ्वी हिलने। उनके आने की सुधि पाय राजा भीष्मक मन्त्री और कुटुम्ब के लोगों समेत आगे बढ़ गये और बड़े आदर मान से आगौनी कर सबको पहरानी पहराय रतनजटित वस्त्र आभूषण और हाथी घोड़े दे उन्हें नगर में आन जनबासा दिया। फिर खाने पीने का सामान किया। इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव मुनि बोले कि महाराज! अब अन्तर कथा कहता हूँ आप चित्त लगाय सुनिये कि जब श्रीकृष्ण द्वारिका से चले तिसी समय यदुवंशियों ने जाय वहाँ राजा उग्रसेन से कहा कि महाराज! हमने सुना है कि कुण्डिनपुर में राजा शिशुपाल जरासन्ध समेत सब असुर दल ले ब्याहने गया है और हरि अकेले गये हैं। इससे हम जानते हैं कि वहाँ श्रीकृष्णजी से और उनसे युद्ध होगा। यह बात जानते भी हम अजान हो हरि को छोड़ यहाँ कैसे रहें। महाराज! मन तो मानता नहीं, आगे जो आप आज्ञा कीजै सो करें। इस बात को सुनते ही राजा उग्रसेन ने अति घबराय बलरामजी को

निकट बुलाय समझाय के कहा कि तुम हमारी सब सेना ले श्रीकृष्ण के पहुँचते न पहुँचते शीघ्र कुण्डिनपुर में जाओ और उन्हें संग लेकर आवो। राजा की आज्ञा को पाते ही बलदेव छप्पन करोड़ यादव जोड़ संग ले कुण्डिनपुर को चले। और सब दल लिये चले-चले कुण्डिनपुर हरि के पहुँचते ही बलरामजी भी जा पहुँचे। यह सुनाय फिर शुकदेवजी बोले कि महाराज! श्रीकृष्णचन्द्र इस भाँति कुण्डिनपुर पहुँच चुके थे, पर रुक्मिणी ने आने का समाचार न पाया––

चौपाई––विलख वदन चितवे चहुँ ओर। जैसे चन्द्र मलिन भयं भोर॥
अति चिन्ता सुन्दरि जिय बाढ़ी। देखें ऊँच अटा पै ठाढ़ी॥
चढ़ि चढ़ि उझकै खिड़की द्वार। नयनन ते छोड़े जलधार॥

दोहा––विलख वदन अति मलिन मन, लेत उसास निसास।
व्याकुल वर्षा नयन जल, सोचति कहति उदास॥

कि अब तक क्यों नहीं हरि आये। उनका तो नाम है अन्तर्यामी। ऐसी मुझसे क्या चूक पड़ी जो उन्होंने मेरी सुधि न ली। क्या ब्राह्मण वहाँ न पहुँचा कि हरि ने मुझे कुरूप जान मेरी प्रतीत न करी, कै जरासन्ध का आना सुन प्रभु न आये। कल ब्याह का दिन है और असुर आय पहुँचा है जो वह कल मेरा कर गहेगा तो यह पापी जीव हरि बिन कैसे रहेगा। जप, तप, नेम, धर्म कुछ आड़े न आया। अब––

चौपाई––ले वरात आया शिशुपाल। कैसे विरमें दीन दयाल॥

इतनी बात जब रुक्मिणी के मुख से निकली तब एक सखी ने तो कहा कि दूर देश बिन पिता बन्धु की आज्ञा हरि कैसे आवेंगे और दूसरी बोली जिनका नाम है अन्तर्यामी दीनदयालु वे बिन आये न रहेंगे। रुक्मिणी! तू धीरज धर, व्याकुल न हो, मेरा मन यह हामी भरता है कि अभी आय कोई कहता है कि हरि आये। महाराज! ऐसे दोनों आपस में बातें कर रही थीं कि उसी समय ब्राह्मण ने जाय आशीष दे कहा कि श्रीकृष्णचन्द्र ने आय राजबाड़ी में डेरा किया और सब दल लिए बलदेवजी पीछे आते हैं। ब्राह्मण को देखते और इतनी बात सुनते ही रुक्मिणी के जी में जी आया और इन्होंने उसका ऐसा सुख माना कि जैसे तपस्वी तप का फल पाय सुख माने। आगे श्री रुक्मिणी जी हाथ जोर शिर झुकाय उस ब्राह्मण से बोलीं कि आपने मुझे प्राण दान दिया, मैं इसके पलटे क्या दूँ? जो त्रिलोकी की माया दूँ तो भी तुम्हारे ऋण से उद्धार न हो। ऐसे कह मन मार सकुचाय रहीं। तब वह ब्राह्मण अति सन्तुष्ट हो आशीर्वाद दे कर वहाँ से उठ राजा भीष्मक के पास गया और उसने श्रीकृष्ण के आने का ब्यौरा सब समझा के कहा। सुनते ही प्रणाम कर राजा भीष्मक उठ धाया और चला चला वहाँ आया जहाँ बाड़ी में कृष्ण बलराम सुख धाम बिराजते थे। आते ही साष्टांग प्रणाम कर सन्मुख खड़े हो हाथ जोड़ के राजा भीष्मक ने कहा कि–––

चौपाई––मेरे मन वस तुम ही हरी। कहा कहों जो दुष्टन करी॥

अब मनोरथ पूर्ण हुआ जो आपने दर्शन दिया! यों कह प्रभु को डेरे करवाय राजा भीष्मक तो अपने घर आया और चिन्ता कर ऐसे कहने लगा–––

चौपाई––हरि चरित्र जानें नहिं कोई। का जाने कव कैसी होई॥

और यहाँ श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी जो थे तहाँ नगर निवासी क्या स्त्री क्या पुरुष आय शिर नाय-नाय प्रभु का यश गाय गाय सराहि सराहि आपस में यों कहते थे रुक्मिणी के योग्य वर श्रीकृष्ण ही है। बिधना करे यह जोरी जुरे। चिरंजीव रहैं। इस बीच दोनों भाइयों के जी में जो कुछ आया तो उस नगर को देखने चले। उस समय ये दोनों भाई जिस हाट बाट चौहट में होके जाते थे तहीं नर-नारियों के ठट्ट लग जाते थे और इनके ऊपर चोबा चन्दन गुलाब नीर छिड़क फूल बरसाय हाथ बढ़ाय-बढ़ाय प्रभु को देख आपस में यों कह-कह बताते थे।

चौपाई—नीलाम्बर ओढ़े बलराम। पीताम्बर पहने घनश्याम ॥
कुण्डल चपल मुकुट सिर धरे। कमल नयन चाहत मन हरे ॥

और यह देखते जाते थे। निदान सब नगर और राजा शिशुपाल का कटक देख ये तो अपने दल में आये और इनके आने का समाचार सुन राजा भीष्मक का बड़ा बेटा अति क्रोध कर अपने पिता के निकट आकर कहने लगा कि सच कहो श्री कृष्ण को यहाँ किस कारण बुलाया गया है। यह भेद हमने न पाया बिन बुलाये कैसे आया।

ब्याह काज है यह सुखधाम। इसमें इनका है क्या काम ॥

ये दोनों कपटी कुटिल जहाँ जाते हैं, तहाँ ही उत्पात मचाते हैं। जो तुम अपना भला चाहो तो मुझसे सत्य कहो, ये किस के बुलाये आये। महाराज! रुक्म ऐसे पिता को धमकाय वहाँ से उठ सात पाँच करता वहाँ गया जहाँ राजा शिशुपाल और जरासन्ध अपनी सभा में बैठे थे और उनसे कहा कि यहाँ राम कृष्ण आये हैं। तुम अपने सब लोगों को जता दो जो सावधानी से रहैं। इन दोनों भाइयों का नाम सुनते ही राजा शिशुपाल तो हरि-चरित्र को लख ब्यवहार जुहार लगा मन ही मन बिचार करने और राजा जरासन्धने कहा कि सुनो यहाँ ये दोनों जाते हैं तहाँ कुछ न कुछ उपद्रव मचाते हैं। ये महाबली और कपटी हैं। इन्होंने ब्रज में कंसादिक बड़े-बड़े राक्षस सहज स्वभाव ही मारे हैं। इन्हें तुम जानो बारे, ये कभी लड़कर नहीं हारे। श्रीकृष्ण ने सत्रह बेर मेरा दल हना। जब मैं अठरहवीं बेर चढ़ आया तब भाग पर्वत पर चढ़ा जो मैंने उसमें आग लगाई तो यह छलकर द्वारिका को चला गया।

इससे अब ऐसा कुछ उपाय कीजिए जिससे हम सबों की पत रहे। इतनी बात जब जरासन्ध ने कही तब रुक्म बोला कि ये क्या वस्तु है जिनके लिए तुम इतने भयभीत हो। इन्हें तो भली भाँति से जानता हूँ कि बन-बन नाचते गाते वेणु बजाते धेनु चराते फिरते थे। ये बालक गँवार, युद्ध विद्या की रीति क्या जाने, तुम किसी बात की चिन्ता अपने मन में मत करो हम यदुवंशियों समेत कृष्ण बलराम को क्षण भर में मार हटावेंगे।

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज! उसी दिन रुक्म तो जरासन्ध और शिशुपाल को समझाय, बुझाय ढाढ़स बँधाय अपने घर आया और उन्होंने सात पाँच कर रात गँवाई। भोर होते ही इधर राजा शिशुपाल और जरासन्ध तो ब्याह का दिन जान बरात निकालने की धूम धाम में लगे और इधर राजा भीष्मक के यहाँ भी मङ्गलाचार होने लगे। इतने में रुक्मिणीजी ने उठते ही एक ब्राह्मण के हाथ श्रीकृष्णचन्द्र से कहला भेजा कि, कृपानिधान! आज

ब्याह का दिन है । दो घड़ी दिन रहे नगर के पूर्व देवी का मन्दिर है तहाँ मैं पूजा करने जाऊँगी। आगे एक पैंहर दिन चढ़े सखी सहेली और कुटुम्बी स्त्रियाँ आईं। उन्होंने आते ही पहले तो आँगन में गज मोतियों का चौक पुरवाय, कंचन की जड़ाऊ चौकी बिछाय तिस पर रुक्मिणी को बिठाय, सात सुहागनों से तेल चढ़वाय, पीछे सुगन्ध उबटन लगाय, नहलवाय धुलाय, उसे सोलह शृंगार करवाय, आभूषण पहराय ऊपर से सारी चोली चढ़ाय बनी बनाय बिठाया। इतने में घड़ी चार एक दिन पिछला रह गया उस काल रुक्मिणी अपनी सब सखी सहेलियों को साथ ले गाजे बाजे से देवी की पूजा करने को चली तो राजा भीष्मक ने अपने लोग रखवाली को उसके साथ कर दिये। यह समाचार पाय कि राजकन्या नगर के बाहर देवी पूजने चली हैं, राजा शिशुपाल ने भी श्रीकृष्णचन्द्र के डर से अपने बड़े-बड़े सामंत शूर-वीर योद्धाओं को बुलाय सब भाँति ऊँच नीच समझाय बुझाय रुक्मिणी जी की चौकसी को भेज दिया। वे भी आय अपने अस्त्र-शस्त्र सँभाल राज कन्या के सङ्ग हो लिये। तिस बिरियाँ रुक्मिणी सब शृंगार किये सखी सहेलियों के झुण्ड लिये कितनी एक बेर में चली देवीं के मन्दिर में पहुँची। वहाँ जाय हाथ पाँव धोय, आचमन कर श्रद्धा समेत वेद की विधि से देवी की पूजा की। पीछे ब्राह्मणियों को इच्छानुसार भोजन करवाय, सुथरी तीयल पहराय रोरी की खोर काढ़, अक्षत लगाय उन्हें दक्षिणा दी और उनसे आशीष ली। आगे देवी की परिक्रमा दे हरि के मिलन की चिन्ता किये जो वहाँ से निश्चिन्त हो चलने को हुई तो श्रीकृष्णचन्द्र भी अकेले रथ पर बैठ वहाँ पहुँचे जहाँ रुक्मिणी के साथ सब शूर अस्त्र से जकड़े खड़े थे। इतनी कथा कह श्री-शुकदेवजी बोले—

दोहा—पूजि गौरि जब ही चली, एक कही अकुलाय।
सुनि सुन्दरि आये हरी, देख ध्वजा फहराय॥

वह बात सखी से सुन प्रभु के रथ की ओर देख-देख राजकन्या अति आनन्द कर फूली अङ्ग न समाती थी और सखी के हाथ पर हाथ दिये मोहनी रूप किये हरि के मिलने की आशा किये कुछ-कुछ मुस्कराती हुई ऐसे सब के बीच मन्दगति से जाती थी जिसकी शोभा कुछ वर्णी नहीं जाती। आगे सब रखवाले श्रीकृष्ण को देखते ही भूले से खड़े हो गये और अन्तर पट उनके हाथ से छूट पड़े। इतने में मोहनी रूप से रुक्मिणी जी को जो उन्होंने देखा तो और भी मोहित हो ऐसे शिथिल हुए कि जिन्हें अपने तन मन की भी सुध न रही।

सो०—भ्रकुटी धनुष चढ़ाय, अंजन वरुनी पहल के।
लोचन वाण चलाय, मारे पै जो वचि सके॥

महाराज! उस काल सब राक्षस तो चित्र से खड़े-खड़े देखते ही रहे, और श्री-कृष्णचन्द्रजी सब के बीच रुक्मिणी के पास जा रथ बढ़ाय खड़े हुए। प्राणपति को देखते ही उसने सकुच कर मिलने को जो हाथ बढ़ाया तो प्रभु ने बाँये हाथ से उठाय उसे रथ पर बैठाया।

चौपाई—काँपउ अति सकोच तन भारी। छाँड़ि सवन हरि संग सिधारी॥
ज्यों वैरागी छोड़े गेह। कृष्ण चरण सों करै सनेह॥

महाराज रुक्मिणी जी ने जप, तप, ब्रत पुण्य किया, फल पाया और पिछला दुःख सब

गँवाया । बैरी अस्त्र शस्त्र लिये खड़े मुख देखते ही रहे । प्रभु उनके बीच से रुक्मिणी को ले ऐसे चले कि--

दोहा--ज्यों वहु झुण्डिन स्यार के परै सिंह भहराय ।
अपनौ भक्षण लेइ कै, चलै निडर घर राय ।।

आगे श्रीकृष्णचन्द्र के चलते ही बलराम भी धोंसा दे सब दल साथ ले जा मिले ।

इति श्री लल्लूलालकृते प्रेमसागरे का रुक्मीणीहरण नाम का चौवनवाँ अध्याय ।।५४।।

अध्याय—५५

श्रीशुकदेवजी बोले कि--महाराज ! कितनी एक दूर जाय श्रीकृष्णचन्द्र जी ने रुक्मिणी को सोच संकोच युक्त देखकर कर कहा कि सुन्दरी ! अब तुम किसी बात की चिन्ता मत करो । मैं शङ्खध्वनि कर तुम्हारे मन का डर हरूँगा और द्वारका में पहुँच वेद की विधि से बरूँगा । यों कह प्रभु ने उसे अपनी माला पहराय बाँई ओर बैठाय ज्यों शङ्खध्वनि करी त्यों शिशुपाल और जरासन्ध के साथी चौंक पड़े । यह बात सारे नगर में फैल गई कि हरि रुक्मिणी को हर ले गये । इतने में रुक्मिणी हरण अपने उन लोगों के मुख से सुन जो चौकसी को राजकन्या के सङ्ग गये थे शिशुपाल और जरासन्ध अति क्रोध कर झिलम टोप पहन पेटी बाँध सब अस्त्र लगाय अपना-अपना कटक ले के श्रीकृष्ण के पीछे चढ़ दौड़े और उनके निकट जाय आयुध सँभाल कर ललकारा कि अरे ! भागे क्यों जाते हो, खड़े रहो, अस्त्र पकड़, लड़ो । जो क्षत्रिय शूर बीर हैं, क्षेत्र में पीठ नहीं देते ! महाराज ! इतनी बात के सुनते ही यादव फिर सन्मुख हुए अरु लगे दोनों ओर से शस्त्र चलने । उस काल रुक्मिणी अति भयमान घूँघट की ओट किए आँसू भर लम्बी-लम्बी स्वासें लेती थीं और प्रीतम का मुख निरख-निरख मन ही मन बिचार यों कहती थी कि ये मेरे लिए इतना दुख पाते हैं । अन्तर्यामी प्रभु रुक्मिणी के मन का भेद जान बोले कि सुन्दरी तू क्यों डरती है । तेरे देखते ही देखते सब असुर दल को मारि भूमि का भार उतारता हूँ । तू अपने मन में किसी बात की चिन्ता मत कर । इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि राजन् ! उस काल देवता अपने-अपने विमानों में बैठ आकाश से देखते क्या हैं कि--

दोहा---यादव असुरन सों लरत । होय महा संग्राम ।।
ठाड़े देखत कृष्ण हैं, करत युद्ध वलराम ।।

मारू बाजा बजता है । कढ़खेत कढ़खा गाते हैं । चारण यश बखानते हैं । अश्वपति अश्वपति से, रथी से रथी, पैदल से पैदल, भिड़ रहे हैं । इधर शूरबीर पिलपिल के मरते हैं और कायर खेत को छोड़ अपना जी ले-ले भगते हैं । घायल खड़े झूमते हैं, कबन्ध हाथों में तलवार लिये चारों ओर घूमते हैं और लोथों पर लोथ गिरती हैं, तिनसे लोहू की नदी बह चली है । तिसमें जहाँ हाथी जो मरे पड़े सो टापू से जान पड़ते हैं और घोड़े मगर से । महादेव भूत प्रेत पिशाच सङ्ग लिये शिर चुन-चुन लोथ खेंच-खेंच लाते और फाड़ खाते हैं । गृद्ध, श्रृगाल कूकुर, आपस में लड़-लड़ लोथें खेंच-खेंच लाते और फाड़ खाते हैं और कौवे

आँखें निकाल-निकाल धड़ों से ले जाते हैं। निदान, देवताओं के देखते ही देखते बलरामजी ने सब असुर दल यों काट डाला ज्यों किसान खेत को काट डाले। आगे जरासन्ध और शिशुपाल सब दल कटाय कई घायल सङ्ग ले भाग के एक ठौर जा खड़े रहे। तहाँ शिशुपाल ने बहुत पछताय-पछताय, शिर डुलाय जरासन्ध से कहा कि अब तो अपयश पाय और कुल को कलंक लगाय संसार में जीना उचित नहीं। इससे आप आज्ञा दो तो मैं रण में जाय लड़ मरूँ।

चौपाई---नातर हौ रहिहों वनवास। लेऊँ जोग छाँड़ि सव आस।।
गई आज पत अव क्यों जी जै। राख प्राण यों अपयश लीजै।।

इतनी बात सुन जरासन्ध बोला कि, महाराज! आप ज्ञानवान हो और सब बातें जानते हो। मैं तुम्हें क्या समझाऊँ। जो ज्ञानी पुरुष हैं सो गई बात का सोच नहीं करते। यश अपयश पराधीन है। जैसे काष्ठ की पुतली को नटुआ नचाता है, त्यों नाचती है, ऐसे मनुष्य कर्ता के वश में हैं, वह जो चाहता है सो करता है। इससे सुख दुख में हर्ष शोक न कीजै। सब स्वप्न सा जान लीजै। मैं तेईस तेईस अक्षौहिणी ले मथुरापुरी पर सत्रह बेर चढ़ गया और इसी कृष्ण ने सत्रह बेर मेरा दल हना। मैंने कुछ सोच न किया और अठारहवीं बेर इसका दल मारा तब कुछ हर्ष भी न किया। यह भाग कर पहाड़ पर चढ़ा। मैंने इसे वहीं पर फूंक दिया, जानिये फिर यह क्यों कर जिया? इसकी गति कुछ जानी नहीं जाती। इतना कह फिर जरासन्ध बोला महाराज! अब उचित यह है कि इस समय को टाल दीजै। कहा है प्राण बचे तो पीछे सब हो रहता है। जब जरासन्ध ने ऐसे समझाय के कहा तब उसे कुछ धीरज हुआ और जितने घायल योधा बचे थे, तिन्हें साथ ले अछताय पछताय जरासन्ध के सङ्ग हो लिया। ये तो यहाँ से यों हार के चले और शिशुपाल का घर था तहाँकी बात सुनो कि पुत्र के आवने को बिचार शिशुपाल की माँ जो मङ्गलाचार करने लगी तौ सन्मुख छींक भई और दाहिनी आँख फड़कने लगी। यह अशगुन देख उसका माथा ठनका कि इस बीच किसी ने आय कहा कि तुम्हारे पुत्र की सब सेना कट गई और दुलहन भी नहीं मिली। वहाँ से भाग अपना जीव लिये आता है। इतनी बात को सुनते ही अब शिशुपाल की महतारी अति चिन्ता कर अवाक् हो रही। आगे शिशुपाल और जरासन्ध का भागना सुन रुक्म अति क्रोध कर अपनी सभा में आन बैठा और सब को सुनाय कहने लगा कि कृष्ण मेरे हाथ से बच कर कहाँ जा सकता है? अभी जाय उसे मारूँ, रुक्मिणी को जा ले न आऊँ, तो मेरा नाम रुक्म नहीं, तो फिर कुण्डिनपुर में नहीं आऊँ। महाराज! ऐसे कह पैज कर रुक्म सेना ले कृष्णचन्द्र से लड़ने को चढ़ धाया और उसने यादवों का दल जा घेरा, उस काल उसने अपने लोगों से कहा कि तुम तो यादवों को मारो और मैं आगे जाय श्रीकृष्ण को जीता पकड़ लाता हूँ। इतनी बात के सुनते ही उसके साथी तो यदुवंशियों से युद्ध करने लगे और वह रथ बढ़ाय श्रीकृष्णचन्द्र के निकट जाय ललकार कर बोला---अरे कपटी गँवार! तू क्या जाने राज ब्यवहार। बालापन में जैसे तूने दूध दही की चोरी करी, तैसे तूने यहाँ भी आय सुन्दरी हरी।

व्रज वासी हम नहीं अहीर। ऐसे कह कर लीने तीर ।।
विष के बुझे लिए उन वान। खेंच धनुष शर छोड़े तान ।।

उन बाणों को आते देख श्रीमधुसूदन ने बीच ही में काटा। फिर रुक्म ने और बाण चलाये। प्रभु ने वह भी काट गिराये और अपना धनुष सँभाला कई एक बांण मारे कि रथ के घोड़ा समेत सारथी उड़ गया और धनुष उसके हाथ से कट भूमि में गिरा। पुनि जितने आयुध उसने लिये हरि ने सब काट गिरा दिये। तब तो वह अति झुंझलाय, फरी खाँड़ा उठाय रथ से कूद श्रीहरि की ओर झपटा। निदान जाते ही उसने हरि के रथ पै गदा चलाई, कि प्रभु ने झपट उसे पकड़ बाँधा और चाहा कि मारें इतने में रुक्मिणी बोली---

मारो मत भैया है मेरो, छांड़ौ नाथ तिहारौ चेरो ।।
मूरख अन्ध कहा यह जाने, लक्ष्मी कांतहि मानुष माने ।।

इतना कह, फिर कहने लगीं कि साधु जड़ और बालक का अपराध मन में नहीं लाते, जैसे कि सिंह श्वान के भूकने पर ध्यान नहीं करता और जो तुम उसे मारोगे तौ होगा मेरे पिता को शोक, यह करना तुम्हें नहीं है योग। जिस ठौर तुम्हारे चरण परते हैं तहाँ के सब प्राणी आनन्द में रहते हैं। यह बड़े अचरज की बात है कि तुम सा सगा रहते राजा भीष्मक पुत्र का दुख पावे। महाराज! ऐसे कह एक बार तो रुक्मिणी जी यों बोली कि महाराज! तुमने भला हित सम्बन्धी से किया जो पकड़ बाँधा और खड्ग हाथ में ले मारने को उपस्थित हुए, पुनि व्याकुल हो घबराय आँख डबडबाय बिलख-बिलख पाओं पड़ गोद पसार कहने लगी।

वन्धु भीख प्रभु मोकों देव। इतना यश तुम जग में लेव ।।

इतनी बात के सुनने से और रुक्मिणी जी की ओर देखने से हरि का सब कोप शान्त हुआ। तब उन्होंने उसे जीव से तो नहीं मारा पर सारथी को सैन करा उसने झट उसकी पगड़ी उतार, ढूँढ़ना चढ़ाय, डाढ़ी और शिर मूँड़, सात चोटी रख, रथ के पीछे बाँध लिया। इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! रुक्म की तौ हरि ने यहाँ यह व्यवस्था की और बलदेवजी ने वहाँ सब असुर दल को मार भगाया व भाई से मिलने को चले। निदान, कितनी एक देर में प्रभु समीप आय पहुँचे और रुक्म को बँधा देख हरि से अति झुंझलाय के बोले कि तुमने यह क्या काम किया जो साले को बाँधा। तुम्हारी कुटेव नहीं जाती---

वाँध्यौ याहि करी बुधि थोरी। वस तुम कृष्ण सगाई तोरी ।।
यों यदुवल की लीक मिटाई। अव हमसों को करै सगाई ।।

जिस समय यह युद्ध करने को आपके सन्मुख आया, तब तुमने इसे समझाय उलटा क्यों न फेर दिया महाराज! ऐसे कह बलरामजी ने रुक्म को तो खोल समझाय बुझाय शिष्टाचार से विदा किया। फिर, हाथ जोड़ अति विनती कर बलराम सुखधाम रुक्मिणी से कहने लगे कि हे सुन्दरी! तुम्हारे भाई की जो यह दशा हुई इसमें कुछ हमारी चूक नहीं। यह उसके पूर्व जन्म के किए कर्म का फल है और क्षत्रियों का धर्म भी यही है, कि भूमि धन, स्त्रियों के काज करते हैं युद्ध। तुम अपने भाई के बिरूप होने की चिन्ता मत करो क्योंकि ज्ञानी लोग जीव को अमर और देह को नाशवान कहते हैं। इस लेखे देह की पत जाने से कुछ जीव की पत नहीं गई।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि, धर्मावतार जब बलरामजी ने रुक्मिणी को समझाया तब––

घूंघट ओट वदन की करें। मधुर वचन हरि सों उच्चरें॥
सन्मुख ठाड़े हैं वलदाऊ। कहो कन्थ रथ वेग चलाऊ॥

इतना बचन रुक्मिणी के मुख से निकलते ही इधर तौ श्री हरि ने रथ द्वारिका को हाँका और उधर रुक्म अपने लोगों में जाय अति चिन्ता कर कहने लगा कि मैं कुण्डिनपुर में यह पैज करके आया था कि अभी जाय हरि बलराम को सब यदुवंशियों समेत मार, रुक्मिणी को ले आऊँगा। सोई मेरा प्रण पूरा न हुआ और उल्टी अपनी पत खोई। अब जीवित न रहूँगा। इस देश और गृहस्थाश्रम को छोड़ बैरागी हो कहीं जाय मरूँगा। जब रुक्म ने ऐसा कहा तब उसके लोगों में से कोई बोला महाराज! तुम महावीर हो और बड़े प्रतापी हो। तुम्हारे साथ वे जीते बच गये सो उनके भले दिन थे। अपने प्रारब्ध के बल से निकल गये, नहीं तो आप के सन्मुख हो कोई शत्रु कब जीता बच सकता है। तुम ज्ञानी हो ऐसी बात क्यों बिचारते हो। कभी हार होती है कभी जीत। पर शूरवीर का धर्म है कि साहस नहीं छोड़े। भला रिपु आज बच गया फिर मार लेंगे, महाराज! जब यों उनने रुक्म को समझाया तब वह यह कहने लगा कि सुनो––

हरि सों हार मेरी पत गई। मेरे मन अति लज्जा भई॥
जीवित नहीं कुण्डिनपुर जाऊं। वरन और ही गाँव वसाऊं॥
यों कह इन इक नगर वसायो। सुत दारा धन तहाँ वसायो॥
ताको धर्‌यो भोजकटु नाम। ऐसे रुक्म वसायो ग्राम॥

महाराज! उधर रुक्म तौ राजा भीष्मक से बैर कर रहा और उधर श्रीहरि और बलदेव चले द्वारिका के निकट आय पहुँचे।

उस काल घर-घर मंगलाचार हो रहे थे। राजा उग्रसेन भी सब यदुवंशियों समेत गाजे बाजे से अगारी जाय रीति भाँति कर सुख धाम बलराम श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द को नगर में ले आये। उस समय के बनाव की छबि कुछ वर्णी नहीं जाती। क्या स्त्री क्या पुरुष सब ही के मन आनन्द छाय रहा था। प्रभु के सोंही आय-आय सब भेंट दे दे भेंटते थे और नारियाँ अपने-अपने द्वारों, चौबारों कोठों पर से मंगल गीत गाय-गाय आरती उतार फूल बरसाती थीं। श्रीहरि और बलदेव जी यथायोग्य सबकी मनुहार करते जाते थे। निदान, इसी रीति से चले राज मन्दिर में जा बिराजे, जहाँ राजा उग्रसेन, शूरसेन, बसुदेव आदि सब बड़े यदुवंशी बैठे थे और प्रणाम कर इन्होंने उनके आगे कहा कि महाराज! युद्ध जीत जो कोई सुन्दरी लाता है, राक्षसी विवाह कहाता है। इतनी बात के सुनते ही शूरसेनजी ने पुरोहित को बुलाय के उसे समझा के कहा कि तुम श्रीकृष्णचन्द्र के विवाह का दिन ठहरा दो। उसने झट पत्री खोल भला महीना, दिन, बार, नक्षत्र, देख शुभ सूर्य चन्द्रमा बिचार ब्याह का दिन ठहरा दिया। तब राजा उग्रसेन ने अपने मन्त्रियों को तो यह आज्ञा दी कि तुम ब्याह का सामान इकट्ठा करो और आप बैठ पत्र लिखकर पाँडव आदि सब देश-देश के राजाओं को

ब्राह्मण के हाथ भिजवाये। महाराज चिट्ठी पाते ही सब राजा प्रसन्न हो-हो उठ धाये। और साथ ब्राह्मण, पण्डित भाट भिखारी भी लिए। वह समाचार पाय राजा भीष्मक ने बहुत वस्त्र-अस्त्र, जड़ाऊ आभूषण और रथ, हाथी, घोड़े, दास दासियों के डोले एक ब्राह्मण को दे कन्या दान का संकल्प मन ही मन ले अति बिनती कर द्वारका भेज दिया। इधर देश-देश के नरेश आये और उधर राजा भीष्मक का पठाया सब सामान लिए वह ब्राह्मण भी आया, उस समय की शोभा द्वारिकापुरी की कुछ वर्णी नहीं जाती ! जब ब्याह का दिन आया तो सब रीति भाँति कर वर कन्या को मण्डप के नीचे लेजा बैठाया और सब बड़े-बड़े झुण्ड यदुवंशियों के भी आ बैठे, उस बिरियाँ :

पण्डित जहाँ वेद उच्चारें। रुक्मिणी सङ्ग हरि भाँवरि डारें ॥
ढोल दुन्दुभी भेरि बजावें। हरषहिं देव पुष्प बरसावें ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! जो जन हरि रुक्मिणी का चरित्र पढ़ेगा और सुनेगा और पढ़ सुन के सुमिरन करेगा, सो भक्त मुक्ति फल पावेगा। पुनि जो फल पाता है अश्वमेधादि यज्ञ, गौ आदि दान गङ्गादि तीर्थ के करने में, सोई फल मिलता है हरि कथा सुनने में।

इति श्री लल्लूलालकृते प्रेमसागरे का रुक्मिणी-विवाह नामक पचपनवाँ अध्याय ॥५५॥

●

अध्याय—५६
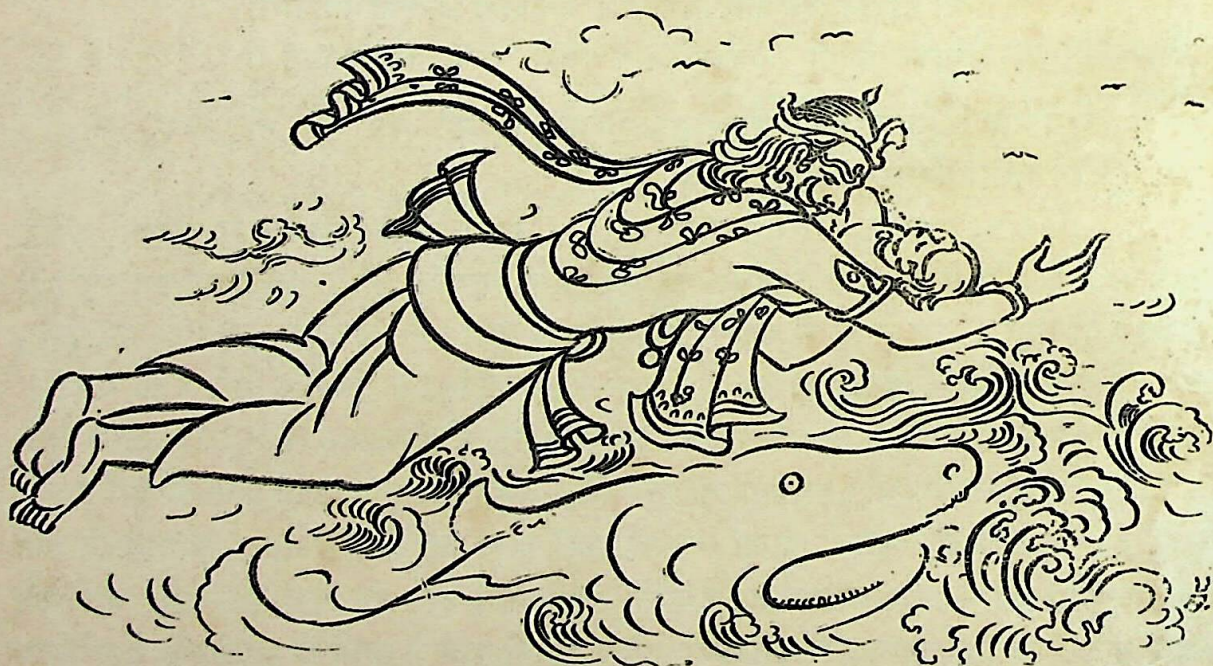
श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज ! एक दिन श्रीमहादेवजी अपने स्थान के बीच ध्यान में बैठे थे कि एकाएकी कामदेव ने आ सताया तो हर का ध्यान छूटा और लगे अज्ञान हो पार्वती जी के साथ क्रीड़ा करने। इतने में कितनी एक बेर पीछे शिवजी को केलि करके जब ज्ञान हुआ, तब क्रोध कर कामदेव को जाय भस्म किया।

'आज' स्वर्ण-जयन्ती वर्ष सं० २०२७

नव-निकुञ्जमें श्यामा-श्याम

दोहा—काम बली जब शिव दह्यो, तब रति धरत न धीर ।।
पति बिन अति तड़फत परी, विह्वल विकल शरीर ।।

तब पार्वती ने उसे समझाय कर कहा—

हे रति ! तू चिन्ता मत कर, तेरा पति तुझे जिस भाँति मिलेगा, उसका भेद सुन मैं कहती हूँ कि पहले वह श्रीकृष्ण के घर में जन्म लेगा और उसका नाम प्रद्युम्न होगा—पीछे उसे शंबर ले जाय समुद्र में बहा देगा, फिर वह मच्छ के पेट में ही शंबर की रसोई में आवेगा । तू वहीं जाय के रह, जब वह आवे तब उसे ले पालियो । पुनि वह शंबर को मार तुझे साथ ले द्वारिका में सुख से जाय बसेगा।

शिव रानी यों रति समझाई । तब तन धर शंबर ग्रह आई ।।
नित वह बीच रसोई रहै । निश दिन मारग पिय को लखै ।।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इधर रति तो पिया के मिलने की आशा कर यों रहने लगी और उधर रुक्मिणी जी को गर्भ रहा और दस महीनों के पूरे दिनों का पुत्र भया । यह समाचार पाय ज्योतिषियों ने अपनी लग्न साधी । श्रीशुकदेवजी ने कहा कि महाराज ! इस बालक के शुभ ग्रह देख हमारे बिचार में यों आता है कि रूप, गुण, पराक्रम में यह श्रीकृष्णजी के समान होगा । पर बालकपन भर जल में रहेगा । पुनि रिपु को मार स्त्री समेत आ मिलेगा । यों कह श्रीकृष्णजी से चतुर ज्योतिषी तो दक्षिणा ले विदा हुये और घर में मङ्गलाचार होने लगे। आगे श्री नारद मुनि ने आय उसी समय समझाय शंबर से कहा कि तू किस नींद में सोता है । तुझे चैन है या नहीं। वह बोला क्यों ? उन्होंने कहा तेरे बैरी का प्रद्युम्न नाम से श्रीकृष्णचन्द्र के घर में जन्म हो चुका । नारदजी तो राजा शंबर को यों चेताय चले गये और शंबर ने सोच बिचार कर मन ही मन में यह उपाय ठहराया कि पवन रूप हो वहाँ जाय उसे हर लाऊँ और समुद्र में बहाऊँ तो मेरे मन की चिन्ता मिटे और निर्भय हो रहूँ। यह बिचार शंबर वहाँ से उठ अदृश्य हो चला । श्रीहरि के मन्दिर में आया कि जहाँ रुक्मिणी अन्तरपुर में हाथों में दबाये छाती से लगाये बालक को दूध पिलाती थीं और चुपचाप दृष्टि लगायके खड़ा रहा। ज्यों बालक पर से रुक्मिणी जी का हाथ अलग हुआ, त्यों ही असुर ने अपनी माया फैला उसे उठाय ऐसे ले गया कि जितनी स्त्रियाँ वहाँ बैठी थीं तिनमें से किसी ने न देखा न जाना कि कौन किस रूप में आया, क्यों कर उठाय ले गया बालक को । वहाँ बालक न देख रुक्मिणीजी अति घबराई और रोने लगीं । उनके रोने का शब्द सुन सब यदुवंशी क्या स्त्री क्या पुरुष घिर आए और तरह-तरह की बातें कह-कह चिन्ता करने लगे । इस बीच नारद मुनि ने आय उसको समझा कर कहा कि तुम बालक के पाने की कुछ चिन्ता मत करो । उसे किसी बात का डर नहीं । वह कहीं जाय पर उसे काल न ब्यापेगा और बालापन व्यतीत कर एक सुन्दरी साथ ले तुम्हें आय मिलेगा । महाराज ! ऐसे सब यदुवंशियों को भेद बताय नारद मुनि जब बिदा हुए तब वे भी सोच समझ सन्तोष कर रहीं । अब आगे की कथा सुनिये कि शंबर जब प्रद्युम्न को ले गया तो उसने उन्हें समुद्र में डाल दिया । वहाँ एक मछली उन्हें निगल गई, उस मछली को एक और बड़ी मछली निगल गई । इस बीच एक मछुए ने जाय समुद्र में जाल फेंका सो वह मीन जाल में आय फँसी । धीमर उस मत्स्य को खैंच अति प्रसन्न

होते अपने घर आया । निदान, वह मछली उसने जाय राजा शंबर को भेंट दी । राजा ने ले अपने रसोई घर में भेज दी । रसोई करनेवाली ने जो उस मछली को चीरा तो उसमें से एक और मछली निकली । उसका पेट फाड़ा तो एक लड़का श्याम वर्ण अति सुन्दर उसमें से निकला, उसने देखते ही अति अचरज किया और वह लड़का ले जाय रति को दिया, उसने महा प्रसन्न हो ले लिया । यह बात शंबर ने सुनी तो रति को बुलाय के कहा कि इस लड़के को अच्छी भाँति से पाल ! इतनी बात राजा की सुन रति उस लड़के को ले निज मन्दिर में आई । उस काल नारद जी ने रति से कहा——

अव तू याहि पाल चित लाय, तो पति प्रद्युम्न प्रगटौ आय ।।
शम्वर मार तोहि ले जाय, वालापन यहि ठौर विताय ।।

इतना भेद बताय नारदमुनि चले गये और रति चित लगाय पालने लगी । ज्यों-ज्यों वह बालक बढ़ता था, त्यों-त्यों पति के मिलने का चाव होता था । कभी वह उसके रूप को देख प्रेम करके हिय से लगाती थी, कभी दृग, मुख, कपोल चूम आप ही बिहँसि-बिहँसि उसके गले लगती थी कि——

ऐसौ नेम संयोग वनायौ मछली माँहि कन्त मैं पायौ ।।

आगे जब प्रद्युम्न जी पाँच वर्ष के हुए तब रति अनेक भाँति के वस्त्र आभूषण पहनाय अपने मन की साध पूरी करने लगी और नयनों को सुख देने लगी । उस काल वह बालक जो रति का अंचल पकड़ पकड़ माँ-माँ कहने लगा तो वह हँस कर बोली हे कन्त ! तुम यह क्या कहते हो । मैं तुम्हारी नारी हूँ । गौरी की आज्ञा है कि तुम शंबर के घर में जाय रहो । तेरा पति श्रीकृष्ण के घर में जन्म लेगा, सो मछली के पेट में से तेरे पास आवेगा और नारद जी भी कह गये थे कि तेरा स्वामी तुझे आय मिलेगा । तभी से मैं तुम्हारे मिलने की आश किये, यहाँ बास कर रही हूँ । तुम्हारे आने से मेरी आशा पूरी भई । ऐसे कह रति ने फिर पति को सब धनुष विद्या सिखाई । जब वे धनुष विद्या में निपुण हुए, तब एक दिन रति ने कहा कि स्वामी अब यहाँ रहना उचित नहीं, क्योंकि तुम्हारी माता श्री रुक्मिणीजी तुम बिन ऐसे दुख पाय अकुलाती हैं, जैसे बच्छ बिन गाय । इससे अब उचित यह है कि असुर शंबर को मार मुझे सङ्ग ले चलौ । द्वारिका में चल माता पिता का दरशन कीजै ! इस रीति की बातें सुनते-सुनते प्रद्युम्न जी जब सयाने हुए तब एक दिन खेलते-खेलते राजा शंबर के पास गये, वह इन्हें देखते ही अपने लड़के के समान लाड़ कर बोला कि इस बालक को मैंने अपना लड़का कर पाला है । इतनी बात के सुनते ही प्रद्युम्न जी ने अति क्रोध कर कहा कि मैं बालक नहीं हूँ, बैरी हूँ तेरा, अब तू लड़ कर देख बल मेरा । यों सुनाय ताल ठोंक सन्मुख हुए, तब हँस कर शंबर ने कहा कि भाई यह मेरे लिए दूसरा प्रद्युम्न कहाँ से आया ? क्या दूध पिलाय मैंने सर्प बढ़ाया जो ऐसी बातें करता है । इतना कह फिर बोला अरे बेटा तू कहता है ये बैन, तुझे यमदूत आये हैं लैन । महाराज ! इतनी बात शंबर के मुख से सुनते ही बोला प्रद्युम्न मेरा ही नाम, मुझसे आज तू कर संग्राम । तैंने तो मुझे सागर में बहाया, पर अब मैं अपना बैर लेने आया । तूने अपने घर में अपना काल बढ़ाया अब कौन किसका बेटा कौन किसका बाप ।

दोहा––सुनि शम्वर आयुध गहे वढ़्यो क्रोध मन भाव,
मनहुं सर्प की पूँछ पर पड़्यो अंधेरे पाँव ।।

आगे शंबर अपना दल मँगवाय, प्रद्युम्न को बाहर ले आया । क्रोध कर गदा उठाय मेघ की भाँति गर्ज कर बोला, देख, अब तुझे काल से कौन बचाता है । इतना कह जो इसने झपट के गदा चलाई तो , प्रद्युम्न जी ने सहज ही काट गिराई । फिर उसने रिसाय कर अग्नि-बाण चलाये, उन्होंने जलबाण छोड़ बुझाय गिराये । तब तौ शंबर ने महा क्रोध कर जितने आयुध उसके पास थे सब प्रहार किये और उन्होंने काट काट गिराये । जब कोई आयुध इनके पास न रहा तब क्रोध कर आय प्रद्युम्नजी से आय लिपटा और दोनों में मल्ल युद्ध होने लगा । कितनी एक बेर पीछे से प्रद्युम्न जी उसे आकाश को ले उड़े । वहाँ जाय खड्ग से उसका सिर काट गिराय दिया और फिर असुर दल का वध किया । शंबर को मरा सुन रति ने सुख पाया और उस समय पर एक बिमान स्वर्ग से आया । उस पर रति पति दोनों चढ़ बैठ और द्वारिका को जाय रहे । विमान से उड़ अचानक दोनों रनबास में गये । उन्हें देख सब सुन्दरी चौंक उठीं और यों समझ कि श्रीकृष्ण एक सुन्दर नारि सँग ले आये हैं, सकुच रहीं । पर यह भेद किसी ने न जाना कि प्रद्युम्न हैं । सब कृष्ण ही कृष्ण कहती थीं । इतने में प्रद्युम्न जी ने कहा कि हमारे माता पिता कहाँ है ? तब रुक्मिणी जी अपनी सखियों से कहने लगी कि ऐ सखी यह हरि की अनुहार कौन है । वे बोलीं हमारी समझ में तो ऐसा आता है कि हो न हो यह श्रीकृष्णजी का पुत्र है । इतनी बात के सुनते ही रुक्मिणीजी की छाती से दूध की धार बह निकली और बाईं आँख फड़कने लगी व मिलने को मन घबराया । पर बिना पति की आज्ञा मिल न सकी । उस काल वहाँ नारद जी ने आय पूर्व कथा कह सबके मन का संदेह मिटाया । तब तो रुक्मिणी जी ने शीघ्र दौड़ कर पुत्र का सिर चूम उसे छाती से लगाया और रीति भाँति से ब्यौहार कर बेटे बहू को घर में लिया । उस समय क्या स्त्री क्या पुरुष सब यदुवंशियों ने आय मङ्गलचार कर अति आनन्द किया । घर-घर बधाई बजने लगी और सारी द्वारिकापुरी में सुख छाय गया । इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज ऐसे प्रद्युम्न जन्म ले बालकपन अन्त बिताय, रिपु को मार, रति ले द्वारिकापुरी में आये तब घर-घर मङ्गल आनन्द हुए बधाए ।

इति श्री लल्लूलालकृत प्रेमसागर का शम्वरवध नामक छप्पनवाँ अध्याय ।

अध्याय–५७

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज सत्राजित ने पहले तो श्रीकृष्ण को मणि की चोरी लगाई पीछे झूँठ समझ लज्जित हो उसने अपनी कन्या सत्यभामा हरि को ब्याह दी । यह सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से पूछा कि कृपानिधान ! सत्राजित कौन था, मणि उसने कहाँ पाई और कैसे हरि को चोरी लगाई । फिर क्यों कर झूँठ समझ कन्या ब्याह दी, यह मुझे बुझाय के कहो । श्री शुकदेवजी बोले कि महाराज ! सुनिये, मैं समझा कर कहता हूँ । सत्राजित एक

यादव था, तिसने बहुत दिन तक सूर्य की अति कठिन तपस्या की। तब, सूर्य देवता ने प्रसन्न हो उसे निकट बुलाय मणि दे कहा कि स्यमंतक मणि है इसका नाम, इसमें सुख सम्पति का है
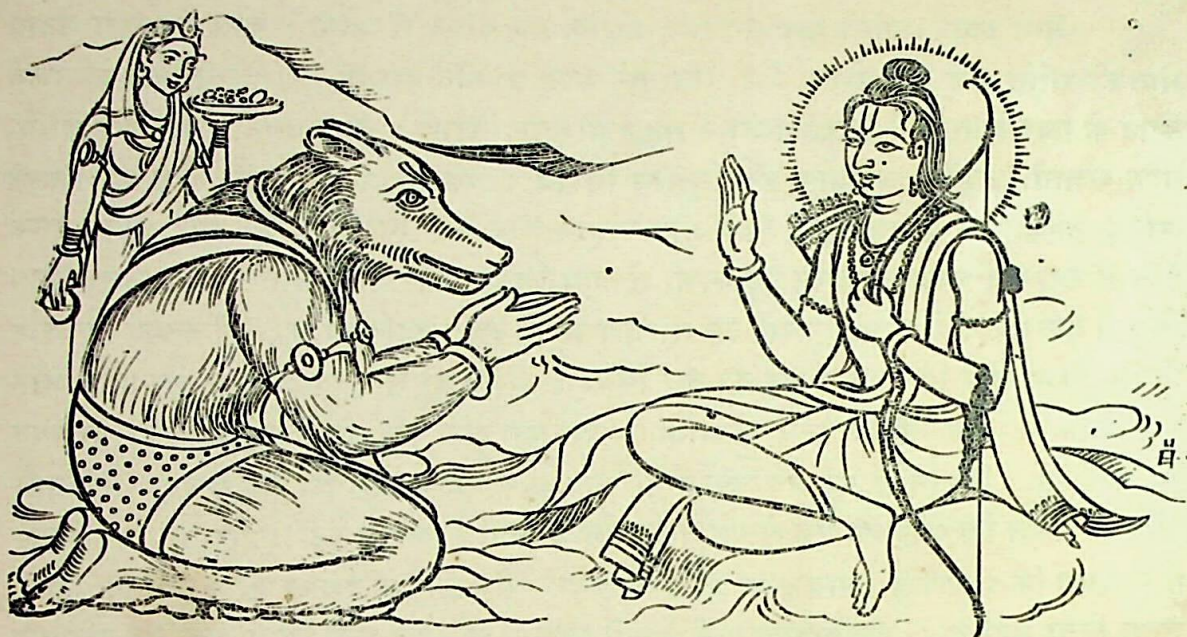
विश्राम। सदा इसे मानियो, और बल तेज में मेरे समान जानियो। जो तू इसे जप तप संयम व्रत कर ध्यावेगा तो इससे मन माँगा फल पावैगा। ऐसे कह सूर्यदेवता ने सत्राजित को बिदा किया। वह मणि ले अपने घर आया। आगे प्रातः ही उठ वह स्नान कर सन्ध्या तर्पण से निश्चित हो नित्य चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य सहित मणि की पूजा किया करै और उस मणि से जो आठ भार सोना निकले सो ले और प्रसन्न रहे। एक दिन पूजा करते-करते सत्राजित ने मणि की शोभा और काँति देख निज मन में बिचारा कि यह मणि श्रीकृष्णचन्द्र जी को ले जाकर दिखाई जावे। तो यों विचार मणि कण्ठ में बाँध सत्राजित यदुवंशियों की सभा में चला। मणि का प्रकाश दूर से देख यदुवंशी खड़े हो श्रीकृष्णचन्द्रजी से कहने लगे कि महाराज तुम्हारे दर्शन की अभिलाषा किये सूर्य चला आता है। तुमको ब्रह्मा रुद्र इन्द्रादि सब देवता ध्यावते हैं और आठ पहर ध्यान धर तुम्हारा यश गावते हैं। तुम ही आदि पुरुष अविनाशी, तुम्हें नित सेवत कमला भई दासी !

तुम हो सब देवन के देव। कोऊ ना जानै तुम्हरो भेव ॥
तुम्हरे गुण और चरित अपार। क्या प्रभु छिपौगे आय संसार ॥

महाराज ! जब सत्राजित को आता देख सब यदुवंशी यों कहने लगे तब हरि बोले कि यह सूर्य नहीं सत्राजित यादव है। इसने सूर्य की तपस्या कर एक मणि पाई है। उसका प्रकाश सूर्य के समान है। वह मणि बाँधे चला आता है। महाराज इतनी बात जब तक श्रीकृष्णजी कहें तब तक वह आय सभा में बैठा जहाँ यादव पाँसा खेल रहे थे। मणि की काँति देख सब का मन मोहित हुआ और श्रीकृष्णचन्द्र भी देखते रहे। तब सत्राजित कुछ मन ही मन समझ, उस समय बिदा होके अपने घर गया। आगे वह मणि गले में बाँध नित आवे। एक

दिन यदुवंशियों ने हरि से कहा कि महाराज सत्राजित से मणि ले राजा उग्रसेन को दीजै और

जगत में यश लीजै । यह मणि उसे नहीं फबती, यह राजा के योग्य है । यह सुनते ही श्रीकृष्ण जी ने हँसते-हँसते सत्राजित से कहा कि, यह मणि राजा को दे दो और संसार में यश बड़ाई लो । देने का नाम सुनते ही वह प्रणाम कर चुपचाप वहाँ से उठ सोच बिचार करता अपने भाई के पास जा बोला कि आज श्रीकृष्णजी ने मुझसे मणि माँगी और मैंने न दी । इतनी बात जो सत्राजित के मुँह से निकली तो क्रोध कर उसके भाई प्रसेनजित ने वह मणि ले अपने गले में डाली और शस्त्र लगाय घोड़े पर चढ़ अहेर को निकला । महावन में जाय धनुष चढ़ाय लगा, सावर, चित्तल, राढ़े और मृग मारने । इतने में एक हिरन जो उसके आगे झपटा तो इसने भी खिजला के उसके पीछे घोड़ा दिया और चला-चला अकेला वहाँ जा पहुँचा कि जहाँ युगान युग की एक बड़ी अन्धी गुफा थी । मृग और घोड़ा के पाँव की आहट पाय उसमें से एक सिंह निकला । वह तीनों को मार मणि ले, उस गुफा में बढ़ गया । मणि के जाते ही उस महा अन्धेरी गुफा में ऐसा प्रकाश हुआ कि पाताल तक चाँदनी हो गई । वहाँ जामवन्त नाम का रीछ जो श्री-रामचन्द्र के साथ रामावतार में था सो त्रेतायुग से कुटुम्ब समेत रहता था । वह गुफा में उजाला देख उठ धाया और चला-चला सिंह के पास आया । फिर वह सिंह को मार मणि ले अपनी स्त्री के निकट गया । उसने मणि ले अपनी पुत्री के पालने में बाँधी वह उसे देख नित हँस-हँस खेल करे और सारे स्थान में आठ पहर प्रकाश रहै । इतनी कथा कह श्री शुकदेवजी बोले––कि महाराज मणि खो गई और प्रसेन की यह गति भई तब प्रसेन के साथ-साथ जो लोग गये थे वे आकर सत्राजित से कहने लगे कि महाराज !

हमको त्याग अकेलो धायौ । जहाँ गयौ तहाँ खोज न पायौ ।।
कहत न वने ढूँढ़ि फिर आयौ । कहूँ प्रसेन न वन में पायौ ।।

इतनी बात के सुनते ही सत्राजित वहाँ खाना पीना छोड़ अति उदास हो चिन्ता कर मन ही मन कहने लगा कि यह बात श्रीकृष्ण की है जो भाई को मणि के लिए मार के घर में आय बैठा । पहले मुझसे मणि माँगता था, मैंने न दी । अब उसने यों ले ली । ऐसा वह मन ही मन कहै और रात दिन चिन्ता में रहै । एक दिन वह रात्रि के समय स्त्री के पास सेज पर तन क्षीण, मन मलीन, मन मारे बैठा मन ही मन कुछ विचार करता था कि उसकी नारी ने कहा––

चौपाई––कहा कन्त मन सोचत रहौ । मो सों भेद आपनौ कहौ ।।

सत्राजित बोला कि स्त्री से कठिन बात का भेद कहना उचित नहीं क्योंकि उसके पेट में बात नहीं रहती । जो घर में सुनती हैं सो बाहर प्रकाश कर देती हैं । वह अज्ञान है । इसे किसी बात का ज्ञान नहीं, भली हो कि बुरी । इतनी बात के सुनते ही सत्राजित की स्त्री खिजला कर बोली कि कब कोई बात घर में सुनी बाहर कही है जो तुम कहते हो । सब नारी क्या एक समान हैं ? यों सुनाय कहा कि जब तक तुम अपने मन की बात मेरे आगे न कहोगे तब तक मैं अन्न पानी भी न खाऊँगी । यह वचन नारी के सुन सत्राजित बोला कि झूठ सच की तो भगवान् जानें मेरे मन में एक बात आई है सो तेरे आगे कहता हूँ । परन्तु किसी के सों मत कहियो । उसकी स्त्री बोली अच्छा मैं न कहूँगी । तब सत्राजित कहने लगा कि एक

दिन श्रीकृष्णजी ने मुझसे मणि माँगी और मैंने न दी । इससे मेरे जी में आता है कि उसने मेरे भाई को बन में जाय मारा और मणि ली । यह उसी का काम है । दूसरे की सामर्थ नहीं जो ऐसा काम करे । इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज ! इस बात के सुनते ही उसको रात भर नींद न आई और सात पाँच कर रैन गँवाई । भोर होते ही उसने जा सखी सहेली और दासियों से कहा कि श्रीकृष्णजी ने प्रसेन को मारा और मणि ली । यह मैंने अपने कन्त के मुख से सुनी है । परन्तु तुम किसी के आगे मत कहियो । वे वहाँ से तो भला कह चुपचाप चली आईं, पर अचरज कर एकान्त में बैठ आपस में चर्चा करने लगीं । निदान एक दासी ने यह बात श्रीकृष्णचन्द्र के रनिवास में जा सुनाई । सुनते ही सबके जी में आया कि जो सत्राजित की स्त्री ने यह कही है तो झूंठी न होगी । ऐसे समझ उदास हो सब रनवास श्रीकृष्ण को बुरा कहने लगा । इसी बीच में किसी ने आय श्रीकृष्णजी से कहा कि, महाराज ! तुम्हें प्रसेन को मारने, और मणि के लेने का कलंक लग चुका । तुम क्या बैठे करते हो, कुछ इसका उपाय करो ।

इतनी बात के सुनते श्रीकृष्ण जी पहले तो घबराये । पीछे कुछ सोच समझ वहाँ आये जहाँ उग्रसेन बसुदेव और बलराम सभा में बैठे थे, और बोले कि, महाराज ! हमें यह सब लोग कलंक लगाते हैं कि कृष्ण ने प्रसेन को मार मणि ले ली । इससे आपकी आज्ञा से प्रसेन और मणि को ढूँढ़ने जाते हैं जिससे यह अपयश छूटै । यों कह श्रीकृष्णजी वहाँ से आय कितने एक यदुवंशियों और प्रसेन के साथियों को साथ ले बन को चले । कितनी एक दूर जाय देखें तो घोड़े के चरण चिन्ह देख पड़े । उन्हीं को देखते देखते वहाँ जाय पहुँचे जहाँ सिंह ने तुरंग समेत प्रसेन के मारा था । दोनों की लाश और सिंह के पावों के चिन्ह देख सबने जाना कि उसे सिंह ने मार खाया । पर मणि न पायी । श्री कृष्णचन्द्र सबको साथ लिये लिये वहाँ गये जहाँ वह ओंड़ी अँधेरी महा भयावनी गुफा थी । उसके द्वार पर देखते हैं कि सिंह मरा पड़ा है, पर मणि वहाँ भी नहीं । ऐसा अचरज देख सब श्रीकृष्ण जी से कहने लगे कि महाराज ! इस बन में ऐसा कौन बड़ा जन्तु आया जो सिंह को मार मणि ले गुफा में बैठा है । अब इसका कुछ उपाय नहीं । जहाँ तक ढूँढ़ने का धर्म था आपने ढूँढ़ा । तुम्हारा कलंक छूटा । अब नाहर के शिर अपयश पड़ा । श्रीकृष्ण जी बोले चलो इस गुफा में धँसके देखें कि नाहर को मार मणि कौन ले गया । वे सब बोले कि महाराज ! जिस गुफा का मुख देख हमें डर लगता है उसमें धसेंगे कैसे वरन् हम तुमसे भी विनती कर कहते हैं कि इस महा भयावनी गुफा में आप भी न जाइये । अब घर को पधारिये । हम सब मिल नगर में कहेंगे कि प्रसेन को मार सिंह ने मणि ली और सिंह को मार कोई जन्तु एक अति डरावनी और अँधेरी गुफा में गया । वह हम सब अपनी आँखों से देख आये । श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले मेरा मन मणि में लगा है । मैं अकेला गुफा में जाता हूँ । दस दिन पीछे आऊँगा, तुम दस दिन तक यहाँ रहौ——इसमें बिलम्ब होय तो घर जाय सन्देश कहियो । इतनी बात कह हरि उस अँधेरी भयावनी गुफा में पैठे और चले-चले वहाँ पहुँचे जहाँ जामवंत सोता था और इसकी स्त्री अपनी लड़की को खड़ी पालने में झुलाती थी । वह प्रभु को देख भय खाय पुकारी । जामवन्त जागा तो धाय हरि से लिपटा और मल्ल युद्ध करने लगा, जब उसका कोई दाँव और बल हरि पर न चला तब मन ही

मन विचार करने लगा कि मेरे बल के तो हैं लक्ष्मण राम और इस संसार में ऐसा बली कौन है जो मुझसे करे संग्राम ? महाराज ! जामवन्त मन ही मन हरि आज्ञा से विचार, फेर प्रभु का ध्यान कर बोला––

ठाड़ौ भयो जोर के हाथ, बोल्यो दरश देउ रघुनाथ ।
अन्तर्यामी मैं तुम जाने । लीला देखतही पहचाने ।।
भली करी लीन्हो अवतारा । हरिहौ दूर भूमिकौ भारा ।
त्रेतायुग ते ऐहि ठाँरह्यौ । नारद भेद तुम्हारौ कह्यौ ।।
मणि के कारज प्रभु इत ऐहैं । तब ही तोकों दरशन दे हैं ।।

इतनी कथा कह श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि, हे राजन् जिस समय जामवन्त ने प्रभु को जान यों बखान किया, तिस काल श्री मुरारी भक्त हितकारी ने जामवंत की लगन देख, मग्न हो राम का वेष धर धनुष वाण ले दर्शन दिया । तब जामवंत ने साष्टांग प्रणाम कर खड़े हो हाथ जोड़ अति दीनता से कहा कि कृपासिन्धु ! जो आपकी आज्ञा पाऊँ तो अपना मनोरथ कह सुनाऊँ । प्रभु बोले अच्छा कह, तब जामवन्त ने कहा कि पतित पावन, दीनानाथ, दीनबन्धु ! मेरे चित्त में ये है कि यह कन्या जामवन्ती आपको ब्याह दूँ, और जगत् में यश बड़ाई लूँ। भगवान् ने कहा जो तेरी इच्छा में ऐसा आया तो हमें भी स्वीकार है । इतना वचन प्रभु के मुख से निकलते ही जामवन्त ने पहले तो श्रीकृष्ण की चन्दन, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य से पूजा की, पीछे वेद की विधि से अपनी बेटी ब्याह दी और उसके यौतुक में वह मणि भी धर दी ।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे राजन् ! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द तो मणि समेत जामवन्ती को ले यों गुफा से चले, और जो यादव गुफा के मुँह पर प्रसेन और श्रीकृष्ण के साथी खड़े थे अब तिनकी कथा सुनिये । गुफा के बाहर उन्हे जब अट्ठाईस दिन बीते और हरि न आये तब वे वहाँ से निराश हो अनेक-अनेक प्रकार की चिन्ता करते और रोते पीटते द्वारिका में आए । यह समाचार पाय सब यदुवंशी निपट घबराये और श्रीकृष्ण का नाम ले ले महा शोक करने लगे और सारे रनिवास में कोहराम पड़ गया । निदान, सब रानियाँ अति ब्याकुल हो तन छीन, मन मलीन, राजमन्दिर से निकल रोती पीटती वहाँ आईं जहाँ नगर के बाहर एक कोस पर देवी का मन्दिर था । पूजा कर गौरी को मनाय हाथ जोड़ सिर नाय कहने लगीं हे देवी ! तुझे सुर नर मुनि सब ध्यावते हैं और तुझसे जो वर माँगे हैं, सो पावते हैं, तू भूत भविष्य वर्तमान की सब बातें जानती है । सच-सच कह श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द कब आवेंगे । महाराज ! सब रानियाँ तो देवी के द्वार धरना दे यों मनाय रहीं थीं, उग्रसेन बलदेव, आदि सब यादव महा चिन्ता में बैठे थे कि इसी बीच श्रीकृष्णचन्द्र अविनाशी द्वारिकावासी हँसते-हँसते जामवन्ती को लिये राजसभा में आ खड़े हुए । प्रभु का चन्द्रमुख देख सबको आनन्द हुआ और यह शुभ समाचार पाय सब रानियाँ भी देवी पूज घर आईं और मङ्गलाचार करने लगीं । इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज श्रीकृष्णजी ने सभा में बैठते ही सत्राजित को बुला भेजा और वह मणि देकर कहा कि यह मणि हमने नही ली थी । तुमने झूँठ-मूँठ ही हमको कलङ्क दिया ।

चौपाई——यह मणि जामवन्त हर लीनी । सुता समेत मोहि तिन दीनी ।।
मणि ले तबहिं चल्यौ शिर नाय । सत्राजित मन सोचत जाय ।।
हरि अपराध कियो मैं भारी । अन जाने दीनी कुछ गारी ।।
यादवपतिहिं कलंक लगायौ । मणि के काजै बैर वढ़ायौ ।।
अब यह दोष कटे सो कीजै । सतभामा मणि कृष्णहिं दीजै ।।

महाराज ऐसे मन ही मन सोच विचार करता मणि लिये मन मारे सत्राजित अपने घर गया । उसने सब अपने जी का विचार स्त्री से कह सुनाया । उसकी स्त्री बोली स्वामी यह बात तुमने अच्छी बिचारी । सत्यभामा श्रीहरि को दीजै और जगत् में यश लीजै । इतनी बात सुनते ही सत्राजित ने एक ब्राह्मण को बुलाय शुभ लग्न मुहूर्त्त ठहराया, रोरी, अक्षत, रुपया, नारियल एक थाली में धर पुरोहित के हाथ श्रीहरिजी के यहाँ टीका भेज दिया । श्रीहरि बड़ी धूमधाम से मौर बाँध ब्याहने आये । तब सत्राजित ने अपनी सब रीति भाँति कर वेद की विधि से कन्यादान किया और बहुत-सा धन दे यौतुक में मणि को भी धर दिया । मणि को देखते ही हरि ने उसे निकाल बाहर किया और कहा कि यह मणि हमारे किसी काम की नहीं है, क्योंकि तुमने सूर्य की तपस्या कर पाई । हमारे कुल में श्रीभगवान् के सिवाय और देवताओं की दी हुई वस्तु नहीं लेते, यह तुम अपने घर में रखो । महाराज श्रीहरि जी के मुख से इतनी बात निकलते ही सत्राजित मणि ले जाय रहा और श्रीहरि सत्यभामा को ले गाजे बाजे से निज धाम पधारे और आनन्द से सत्यभामा समेत राजमन्दिर में जा बिराजे । इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से पूछा कि कृपानिधान ! श्रीहरि को कलङ्क क्यों लगा ? सो कृपाकर कहो । शुकदेवजी बोले——

दोहा——चाँद चौथ को देखिये, मोहन भादों मास ।
ताते लग्यौ कलंक यह, अति मन भयो उदास ।।

और सुनो——

दोहा——जो भादों की चौथि को चाँच निहारे कोय ।
यह प्रसंग कानन सुने ताहि कलंक न होय ।।

इति श्री लल्लूलालकृते प्रेमसागरे का सत्तावनवाँ अध्याय ।

●

अध्याय—५८

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज ! मणि के लिए जैसे शतधन्वा सत्राजित को मार मणि ले अक्रूर को दे द्वारिका छोड़ भागा तैसे मैं यह कथा कहता हूँ तुम चित्त दे सुनो । एक दिन हस्तिनापुर से आय किसी ने बलराम सुखधाम और श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द से यह संदेशा कहा कि——

दोहा——पाण्डव न्यौते अन्धसुत, घर के बीच सुवाय ।
अर्द्ध रात्रि चहुँ ओर से दीनी आग लगाय ।।

इतनी बात के सुनते ही दोनों भाई अति दुख पाय घबराय तत्काल दारुक सारथी

से अपना रथ मँगवाय तिस पर चढ़ हस्तिनापुर को गये और रथ से उतर कौरवों की सभा में जाय खड़े भये । वहाँ देखते क्या हैं कि सब छबि छीन मन मलीन बैठे हैं । दुर्योधन मन मन ही मन कुछ सोचता है । भीष्म के नयनों से पानी गिर रहा है । बिदुरजी भी पछिताते हैं । गांधारी उनके पास आय बैठीं और भी कौरवों की स्त्रियाँ थीं सब पाँडवों की सुध कर रो रही थीं । सारी सभा शोक मय हो रही थी । महाराज यहाँ की यह दशा देख श्रीकृष्ण बलराम उनके पास जा बैठे और उन्होंने पाँडवों का समाचार पूछा । पर किसी ने कुछ भेद न कहा सब चुप ही रहे ।
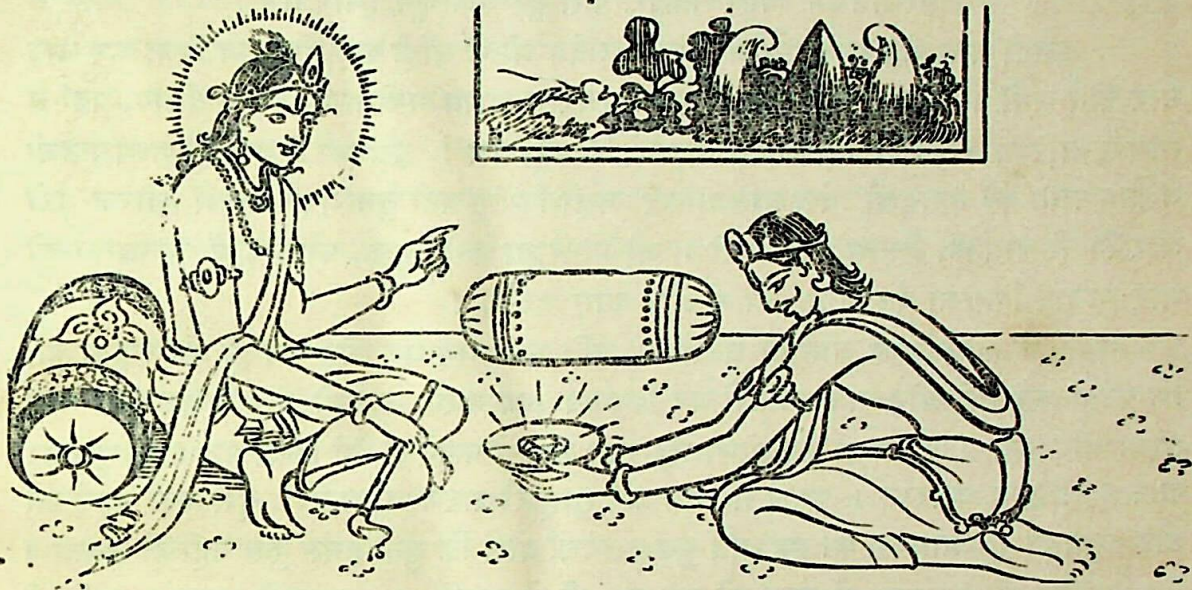
इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज ! श्रीकृष्ण और बलरामजी तो पाँडवों के जलने का समाचार पाय हस्तिनापुर को गये, और द्वारिका में शतधन्वा नाम का एक यादव था, जिसने पहले सत्यभामा माँगी थी, तिसके यहाँ अक्रूर और कृतवर्मा मिलकर गये और दोनों ने उससे कहा कि हस्तिनापुर की ओर गये श्रीकृष्ण और बलराम, अब आय पड़ा है तेरा दाँव । सत्राजित से अपना बैर ले, क्योंकि उसने तेरी बड़ी चूक की, जो तेरी माँग श्रीकृष्ण को दी और तुझे गाली सुनाई । अब यहाँ उसका कोई नहीं सहाई, इतनी बात के सुनते ही शतधन्वा अति क्रोध कर उठा और रात्रि में सत्राजित के घर जा ललकारा । निदान, ललकार उसे मार वह मणि ले आया । तब शतधन्वा अकेला घर में बैठ कुछ सोच विचार कर मन ही मन पछतावा करने लगा——

यह बैर कृष्ण सों कियौ । मतौ अक्रूर कूर मन लियौ ।।
दोहा——कृतवर्मा अक्रूर मिल मतौ दिये मोय आय ।
साधु कहै जो कपट की तासों कहा वसाय ।।

महाराज इधर शतधन्वा तो इस भाँति अछिताय पछिताय बार-बार कहता कि होनहार से कुछ न बसाय, कर्म की गति किसी से जानी न जाय और उधर सत्राजित को मरा निहार उसकी रानी रो-रो कर कंत-कंत कह उठी पुकार । उसके रोने की ध्वनि सुन सब कुटुम्ब के

लोग क्या स्त्री क्या पुरुष अनेक-अनेक भाँति की बातें कह रोने पीटने लगे और सारे घर में कुहराम पड़ गया। पिता का मरना सुन उसी समय सत्यभामाजी आय सबको समझाय बुझाय बाप की लोथ तेल में डलवाय अपना रथ मँगवाय तिस पर चढ़ श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के पास चलीं और कई रात दिन के बीच जा पहुँची।

देखत ही उठ बोले हरि, घर है कुशल क्षेम सुन्दरि ।।
सत भामा कह जोरे हाथ, तुम विन कुशल कहाँ यदुनाथ ।।
हमहिं विपति सतधंवा दई, मेरौ पिता हत्यौ मणि लई ।।
धरे तेल में श्वसुर तिहारे, करौ दूर सव शूल हमारे ।।

इतनी बात कह सत्यभामाजी कृष्ण बलदेव जी के सोंही खड़े हो हाय पिता कर धाड़ मार रोने लगीं। उनका रोना सुन श्रीकृष्ण बलराम आशा भरोसा दे, ढाढ़स बँधाय, वहाँ से साथ ले द्वारिका में आये। श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! द्वारिका में आते ही कृष्णचन्द्रजी ने सत्यभामा को महादुखी देख प्रतिज्ञा कर कहा कि सुन्दरी तुम अपने मन में धीरज धरो और किसी बात की चिन्ता मत करो। जो होना था सो हुआ, पर अब मैं शतधन्वा को मार तुम्हारे पिताका बैर लूँगा, तब मैं और काम करूँगा।

महाराज श्रीकृष्ण के आते ही शतधन्वा, अति भय खाय घर छोड़ मन ही मन कहता था, कि पराये कहे मैंने श्रीकृष्णचन्द्रजी से बैर किया। अब शरण किसकी लूँ। कृतवर्मा के पास आया और हाथ जोड़ विनती कर बोला महाराज आप के कहने से मैंने किया यह काम, मुझ पर कोपे हैं श्रीकृष्ण बलराम। इससे मैं भाग कर तुम्हारी शरण आया हूँ। मुझे कहीं रहने को ठौर बताइये। शतधन्वा की यह बात सुन कृतवर्मा बोले कि सुनो हमसे कुछ नहीं हो सकता। जिसका बैर श्रीकृष्णचन्द्र से भया सो नर सब ही से गया। तू क्या नहीं जानता था कि हैं अति बली मुरारी तिनसे बैर किये होगी हानि हमारी। किसी के कहने से क्या हुआ, अपना बल विचार काम क्यों न किया। संसार की रीति है कि बैर ब्याह प्रीति समान ही से कीजै। तू हमारा भरोसा मत रख। हम श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के सेवक हैं। उनसे बैर करना हमें नहीं शोभता। जहाँ तेरे सींग समाँय तहाँ जा। महाराज! इतनी बात सुन शतधन्वा निपट उदास हो वहाँ से चल अक्रूर के पास आया और हाथ बाँध सिर नाय विनती कर हा हा खाय कहने लगा--

प्रभु तुम हौ यादव पति ईश। तुम्हें नवावत हैं सव शीश ।।
साधु दयालु परम तुम धीर। दुख सह आप हरत पर पीर ।।
वचन कहे की लाज है तुम्हें। शरण आपनी राखो हमें ।।

मैंने तुम्हारा ही कहना मान यह काम किया। अब तुम हमें कृष्ण के हाथ से बचाओ। इतनी बात के सुनते ही अक्रूरजी ने शतधन्वा से कहा कि बड़ा मूर्ख है जो हमसे ऐसी बात कहता है। क्या तू नहीं जानता कि श्रीकृष्णचन्द्र सबके कर्ता, दुख हर्ता हैं? उनसे बैर कर संसार में कब कोई रह सकता है। क्या कहने वाले का बिगाड़! अब तो तेरे सिर पर आन पड़ी है, सुर नर मुनि की यही रीति स्वारथ लाग करैं सब प्रीति। जो काम करें तिसमें पहले अपना लाभ बुरा बिचार लें। पीछे इस काम में पाँव दें। तूने बे समझे बूझे किया काम, अब

तुझे कहीं जगत् में रहने का नहीं है ठाम। जिसने कृष्ण से बैर किया, वह फिर न जिया। जहाँ भाग के गया तहाँ मारा गया। मुझे मरना नहीं जो तेरा पक्ष करूँ। संसार में जीव सबको प्यारा है, महाराज! अक्रूरजी ने जब शतधन्वा को यों रूखे सूखे वचन सुनाए, तब तो निराश हो जीने की आशा छोड़ मणि अक्रूरजी के पास रख कर रथ पर चढ़ नगर छोड़ भागा और उसके पीछे रथ पर चढ़ श्रीकृष्ण बलरामजी भी उठ दौड़े और चलते-चलते उसे सौ योजन पर जाय लिया। उनके रथ की आहट पा शतधन्वा अति घबराय रथ से उतर मिथिलापुरी में जा पड़ा। प्रभु ने इसे देखकर क्रोध कर सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी कि तू अभी शतधन्वा का सिर काट। प्रभु की आज्ञा पाते ही सुदर्शन चक्र ने उसका सिर काटा। तब श्री-कृष्णचन्द्र ने उसके पास जाय मणि ढूँढ़ी पर न पाई। उन्होंने बलरामजी से कहा कि भाई! शतधन्वा को मारा पर मणि न पाई। बलराम जी बोले कि भाई वह मणि किसी बड़े पुरुष ने पाई, तिसने हमें लाय न दिखाई। वह मणि किसी के पास छिपने की नहीं तुम देखियो। निदान, कहीं न कहीं प्रगटेगी। इतनी बात कह बलदेवजी ने श्रीकृष्णचन्द्र से कहा कि भाई! अब तुम तो द्वारिकापुरी को सिधारो और हम मणि खोजने को जाते हैं, जहाँ पावेंगे तहाँ से ले आवेंगे।

इतनी कथा कह शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द तो शतधन्वा को मार द्वारिकापुरी को पधारे और बलराम मणि को खोजने सिधारे। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते बलदेव जी चले हस्तिनापुर में जा पहुँचे। इनके पहुँचने का समाचार सुन हस्तिनापुर का राजा दुर्योधन उठ धाया। आगे बढ़ भेंट कर, प्रभु को गाजे बाजे से पाटम्बर के पावड़े डालता, निज मन्दिर में ले आया। सिंहासन पर बिठाय अनेक प्रकार से पूजा कर भोजन करवाय अति विनती कर सिर नवाय हाथ जोड़ सन्मुख खड़ा हो बोला—कृपासिन्धु! आपका आना इधर कैसे हुआ, सो कृपाकर कहिये। महाराज! बलरामजी ने उसके मन में लगन देख मग्न हो अपने आने का सब भेद कह सुनाया। इतनी बात सुन राजा दुर्योधन बोला कि नाथ! वह मणि कहीं किसी के पास न रहेगी। कभी आपसे आप प्रकाश हो रहेगी। यों सुन फिर हाथ जोड़ कहने लगा दीनदयाल! मेरे बड़े भाग्य जो आपका दर्शन मैंने घर बैठे पाया और जन्म-जन्म का पाप गँवाया। अब कृपाकर हमारे मन की अभिलाषा पूरी कीजै और कुछ दिवस रह, शिष्य को गदा युद्ध सिखाय जगत् में यश लीजै। महाराज दुर्योधन से इतनी बात सुन बलरामजी ने उसे शिष्य किया! कुछ दिन वहाँ रह सब गदा युद्ध की विद्या सिखाई पर मणि यहाँ भी सारे नगर में खोजी और न पाई। आगे हरि के पहुँचने के उपरान्त कितने एक दिन पीछे बलरामजी भी द्वारिका पुरी में आये तो यादवनाथ जी ने यादवों को साथ ले सत्राजित को तेल से निकाल अग्नि संस्कार किया और अपने हाथों दाह दिया। श्रीकृष्णजी क्रिया कर्म से निश्चिन्त हुए तब अक्रूर व कृतवर्मा कुछ आपस में सोच विचार कर श्रीकृष्णजी के पास आये। उन्हें एकान्त में ले जाय मणि दिखाय कर बोले कि महाराज! यादव सब ही मूरख भये और माया मोह में गये। तुम्हारा सुमिरन ध्यान छोड़ मदान्ध हो रहे हैं। जो ये अब कुछ कष्ट पावें तो प्रभु की सेवा में आवें। इसलिए हम नगर छोड़ मणि ले भागते हैं। जब हम इनसे आपका भजन सुमिरण करावेंगे तभी द्वारिकापुरी में आवेंगे। इतनी

बात कह अक्रूर और कृतवर्मा सब कुटुम्ब समेत आधी रात को श्रीकृष्णचन्द्र के भेद से द्वारिकापुरी से भागे ऐसे कि किसी ने न जाना कि किधर गए। भोर होते ही सारे नगर में यह चर्चा फैली कि न जानिये रात की रात अक्रूर और कृतवर्मा कुटुम्ब समेत किधर गये और क्या हुए ? इतनी कथा कह शुकदेवजी बोले कि महाराज ! इधर द्वारिकापुरी में नित घर-घर यह चर्चा होने लगी, और उधर अक्रूर जी प्रथम प्रयाग में जाय मुण्डन करवाय, त्रिवेणी नहाय बहुत-सा दान पुण्य कर तहाँ हरिपोड़ी बँधवाय गया को गये । वहाँ भी फलगु नदी के तीर बैठ शास्त्र की रीति से श्राद्ध किया और ग्रामवासियों को जिमाया । बहुत-सा दान दिया । पुनि गदाधर के दर्शन करके तहाँ से काशीपुर में गये । इनके आने का समाचार पाय इधर उधर के सब राजा आय-आय मिलकर भेंट धरने लगे और ये वहाँ यज्ञ, दान, तप व्रत कर रहने लगे । इसमें कितने एक दिन बीच श्रीमुरारी भक्त हितकारी ने अक्रूर जी को बुलाना जी में ठान बलराम जी से कहा कि भाई अब प्रजा को कुछ सुख दीजै, अक्रूरजी को बुलाय लीजै । बलदेवजी बोले महाराज ! जो आपकी इच्छा में आवै सो कीजै और साधुओं को सुख दीजै । इतनी बात बलराम जी के मुख से निकलते ही श्री यादवनाथ ने कहा कि द्वारिकापुरी में घर-घर ताप, तिजारी भिगारी, क्षयी, दाद, खाज, आतिश, कोढ़, महाकोढ़, जलन्धर, भगन्दर, कटोदर, अतिसार, आँव, मरोड़ा, खाँसी, शूल, अर्धाङ्ग, शीताँग, झोलात, सन्निपात आदि व्याधि फैल गईं और चार महीने वर्षा भी न हुई तिससे सारे नगर के नदी नाले सरोवर सूख गए । तृण अन्न भी न कुछ उपजा । नभचर, थलचर जीव-जन्तु, पक्षी और ढोर लगे ब्याकुल हो सूख-सूख मरने और पुरवासी भूख के मारे त्राहि-त्राहि करने । निदान, सब नगर निवासी महा ब्याकुल हो घबराय श्रीकृष्णचन्द्र दुःखनिकन्द के पास आये और अति गिड़गिड़ाय कर सिर नवाय कहने लगे कि——

हम तो शरण तिहारी रहैं । कष्ट महा अब क्यों कर सहैं ।।
मेघ न वरस्यो पीड़ा भई । कहा विधाता ने यह ठई ।।

इतना कह फिर कहने लगे कि द्वारिकानाथ हमारे तो तुम्हीं सब कुछ हो, तुम्हें छोड़ कहाँ जाय । यह ब्याधि कहाँ से आई और क्यों हुई । सो कृपाकर कहिये ।

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज ! इतनी बात के सुनते ही श्रीकृष्णजी ने उनसे कहा कि सुनो, जिस पुर से साधुजन निकल जाते हैं, तहाँ आप से आप आपत्ति काल, दरिद्र, दुःख आता है । जब से अक्रूरजी इस नगर से गये हैं तभी से यह गति हुई है । जहाँ रहते हैं साधु सत्यवादी और हरिदास तहाँ होता है अशुभ, अकाल और विपत्ति का नाश । इन्द्र रखता है हरि भक्तों का स्नेह इसलिए नगर में भली-भाँति बर्षता है मेह । इतनी बात के सुनते ही सब यादव बोल उठे कि महाराज ! आपने सत्य कहा । यह बात हमारे जी में भी आई क्योंकि अक्रूर के पिता का नाम सुफलक है । वह भी बड़ा साधु सत्यवादी धर्मात्मा है । जहाँ वह रहता है तहाँ कभी दुख, अकाल और दरिद्र नहीं होता है । सदा समय पर मेघ वर्षा होती है । उससे होता है सुकाल । और सुनिये कि एक समय काशी नगर में बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा । तहाँ काशी का राजा सुफलक को बुलाय ले गया । महाराज सुफलक के जाते ही उस देश में मन

भाय वर्षा का मौसम हुआ और सब दुख गया । पुनि काशी नगरी के राजा ने अपनी लड़की

सुफलक को ब्याह दी । वे आनन्द से वहाँ रहने लगे । उस राज कन्या का नाम गोदिना था तिसका पुत्र अक्रूर है । इतना कह सब यादव बोले कि महाराज हम तो यह बात आगे से जानते थे । अब जो आप आज्ञा दीजै सो करें । श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि तुम अति आदर मान कर अक्रूरजी को जहाँ पावो तहाँ से ले आवो । यह वचन प्रभु के मुख से निकलते ही सब यादव मिल अक्रूर जी के ढूँढ़ने को निकले और चले-चले वाराणसीपुरी में पहुँचे और अक्रूरजी को भेंट दे हाथ जोड़ सिर नाय सन्मुख खड़े हो बोले——

चलौ नाथ बोलत बल श्याम । तुम बिन पुरवासी हैं बिराम ।।
जितही तुम तितही सुखवास । तुम बिन कष्ट दरिद्र निवास ।।
यद्यपि पुर में श्री गोपाल । तऊ कष्ट दे पर्यौ अकाल ।।
साधुन के वस श्रीपति रहैं । तिनते सब सुख सम्पत्ति लहैं ।।

महाराज ! इतनी बात सुनते ही अक्रूरजी वहाँ से आतुर हो कुटुम्ब समेत कृतवर्मा को साथ ले सब यदुवंशियों को लिये गाजे बाजे से चल खड़े हुए । और कितने एक दिनों के बीच सब समेत द्वारिकापुरी में आ पहुँचे । इनके आने का समाचार पाय श्रीकृष्णजी और बलराम आगे बढ़ आय इन्हें अति मान सन्मान से नगर में लिवाय ले गये । अक्रूरजी के नगर में प्रवेश करते ही मेघवर्षा का मौसम हुआ । सारे नगर का दुख दरिद्र बह गया और अक्रूर जी की महिमा हुई, व सब द्वारिकावासी आनन्द मङ्गल से रहने लगे ।

आगे एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने अक्रूरजी को निकट बुलाय एकान्त में ले जाय के कहा कि तुमने सत्राजित की मणि का क्या किया ? वह बोला महाराज मेरे पास है, फिर प्रभु ने कहा कि जिसकी वस्तु तिसको दीजै और वह न होय तो उसके बेटे को सौंपिए, बेटा न होय तो उसकी स्त्री को दीजै, स्त्री न होय तो उसके भाई को दीजै, भाई न होय तो उसके कुटुम्बियों को सौंपिये कुटुम्ब भी न होय तो उसके गुरुपुत्र को दीजिये, गुरुपुत्र न होय तो ब्राह्मण को दीजिये पर किसी का द्रव्य आप न लीजिये । ये न्याय है । इसमें अब तुम्हें उचित है कि सत्राजित की मणि उसके नाती को दो और जगत में बड़ाई लो । महाराज श्रीकृष्णचन्द्र के मुख से इतनी बात के निकलते ही अक्रूरजी ने मणि लाय प्रभु के आगे धर हाथ जोड़ अति विनती कर कहा कि दीनदयालु ! यह मणि आप लीजिये और मेरा अपराध दूर कीजिये । इस मणि से मैंने सोना निकाला सो तीर्थयात्रा में उठाया है । प्रभु बोले अच्छा किया ? यों कह मणि ले हरि ने सत्यभामा को जाय दी और उसके चित्त की सब चिन्ता दूर की ।

इति श्री लल्लूलाल कृते प्रेमसागरे का शतधन्वावध नामक अट्ठावनवां अध्याय ।।५८।।

अध्याय—५९

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज ! एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र ने यह विचार किया कि अब चल कर पाण्डवों को देखिये जो आग से बच जीते जागते हैं। इतनी बात कह हरि

द्वारिकापुरी से चल हस्तिनापुर को आये । इनके आने का समाचार पाय युधिष्ठिर भीम अर्जुन नकुल सहदेव पाँचों भाई अति हर्षित हो उठ धाये और नगर के बाहर आय मिल बड़ी भाव भक्ति कर लिवाय घर ले गये । घर में आते ही कुन्ती और द्रौपदी ने तो सात सुहागिनों को बुलाय मोतियों का चौक पुराय तिस पर कंचन चौकी बिछवाय उस पै श्रीकृष्ण को बिठाय मङ्गलाचार करवाय अपने हाथों आरती उतारी । पीछे प्रभु के पाँव धुलवाय रसोई में ले जाय षटरस भोजन करवाये । महाराज ! जब श्रीकृष्णचन्द्र जी भोजन कर पान खाने लगे तब--

कुन्ती ढिंग बैठी कहै बात । पिता बन्धु पूछत कुशलात ।।
नीके शूरसेन वसुदेव । बन्धु भतीजे कुरु बलदेव ।।
तिनमें प्राण हमारे रहें । तुम बिन कौन कष्ट दुख दहै ।।
जब जब विपति परी अति भारी । तब तुम रक्षा करी हमारी ।।

महाराज ! जब कुन्ती यों कह चुकी तब युधिष्ठिर ने ऐसे कहा--

तबहिं युधिष्ठिर जोरे हाथ । तुम हो प्रभु यादव पति नाथ ।।
तुमको योगेश्वर नित ध्यावत । शिव विरंचि के ध्यान न आवत ।।
हमको घर ही दर्शन दीन्हौ । ऐसौ कहा पुण्य हम कीन्हौ ।।
चार मास रहि कें सुख देहों । वर्षा ऋतु बीते घर जैहो ।।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! इस बात के सुनते ही भक्त हितकारी श्रीबिहारी सबको आशा भरोसा दे वहाँ रहे और दिन प्रति दिन आनन्द बढ़ाने लगे । एक दिन राजा युधिष्ठिर के साथ श्रीकृष्णचन्द्र, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव को लिये, धनुष बाण कर गहे रथ पर चढ़ वन में अहेर को गये । वहाँ जाय रथ से उतर फेटा बाँधे, बाँहें चढ़ाय

शर साधे जङ्गल झाड़-झाड़ लगे सिंह, बाघ, गैंड़, चीतल, साँबर, सूकर, हरिण, ऋच्छ मार-मार

राजा युधिष्ठिर के सन्मुख लाय-लाय धरने और राजा युधिष्ठिर हँस-हँस रीझने लगे और जो जिसका भक्ष्य था तिसे देने, और हरिण साँवर रसोई में भेजने ।

तिसी समय श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुन आखेट करते-करते कितनी एक दूर सब से आगे जाय एक वृक्ष के नीचे खड़े हुए । फिर नदी के तीर जाके दोनों ने जल पिया । इतने में श्रीकृष्णजी देखते क्या हैं कि नदी के तीर एक अति सुन्दरी नव-यौवना, नख-शिख से शृंगार किये, अनंग मद पिये महाछवि लिये अकेली फिरती है । इसे देख कर हरि चकित थकित हो बोले——

जेहि कोई सुन्दरि विरहिन अङ्ग । कोऊ नहीं ताहि के सङ्ग ।।

महाराज ! इतनी बात प्रभु के मुख से सुन और उसे देख अर्जुन हड़बड़ाय दौड़ कर वहाँ गया, जहाँ महासुन्दरी नदी के तीर विचरती थी और पूछने लगा कि कह सुन्दरी ! तू कौन है, और कहाँ से आई है, और किसलिये यहाँ अकेली फिरती है ? यह भेद अपना सब मुझे समझा कर कह । इतनी बात के सुनते ही——

सुन्दरि कथा कही आपनी । हौं कन्या मैं सूरज तनी ।।
कालिन्दी है मेरौ नाम । पिता दियो जल में विश्राम ।।
रच्यौ नदी में मन्दिर आय । मोसों पिता कही समुझाय ।।
कीजो सुता नदी ढिंग फेरो । आइ मिलैगो तहँ वर तेरो ।।
यदुकुल माँहि कृष्ण अवतरैं । तो काजे इहि ठौ अनुसरैं ।।
आदि पुरुष अविनाशी हरी । ता काजै तू है अवतरी ।।
ऐसे जवहि तात रवि कह्यौ । तव ते मैं हरि पद कौ चह्यौ ।।

महाराज ! इतनी बात के सुनते ही अर्जुन अति प्रसन्न हो बोले कि हे सुन्दरी ! जिनके कारण तू यहाँ फिरती है वे ही प्रभु श्रीकृष्णचन्द्र आय पहुँचे । महाराज ! ज्यों अर्जुन के मुँह से इतनी बात निकली त्यों भक्त हितकारी श्रीबिहारी भी रथ पै चढ़ वहाँ जा पहुँचे । प्रभु को देखते ही अर्जुन ने जब उसका भेद सब कह सुनाया तब श्रीकृष्णचन्द्र ने हँसकर झट से उसे रथ पर चढ़ाय नगर की बाट ली । जितने में श्रीकृष्णचन्द्र बन से नगर आये, इतने में विश्वकर्मा ने एक मन्दिर अति सुन्दर सबसे निराला प्रभु की इच्छा देख बनाया, हरि ने आते ही कालिंदी को वहाँ उतारा और आप भी रहने लगे । आगे कितने एक दिन पीछे एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुन रात की बिरियाँ किसी स्थान पर बैठे थे कि अग्नि ने आय हाथ जोड़ सिर नाय हरि से कहा कि महाराज ! मैं बहुत दिन का भूखा सारे संसार में फिर आया पर खाने को कहीं न पाया । अब एक आस आपकी है, जो आज्ञा पाऊँ तो वन जंगल जाय खाऊँ । प्रभु बोले अच्छा जाकर खावो फिर अग्नि ने कहा कृपानाथ ! मैं वन में अकेला नहीं जा सकता जो जाऊँ तो इन्द्र आय मुझे बुझाय देगा । यह बात सुन श्रीकृष्णचन्द्र ने अर्जुन से कहा कि बन्धु ! तुम जाय अग्नि को चराय आवो । बहुत दिन से भूखा फिरता है ।

श्रीकृष्णचन्द्र के मुख से इतनी बात निकलते ही अर्जुन धनुष बाण ले अग्नि के साथ हुए और अग्नि वन में जाय भड़का और लगे आम, इमली, बड़, पीपल, पाकड़, ताल, तमाल, महुंवां, केला, नीबू बेर आदि वृक्ष सब जलने और——

फरकें काँस बाँस अति चटकें। वन के जीव फिरें मग भटकें ॥

जिधर देखिये उधर सारे वन में अग्नि हू हू कर जलती है और धुआँ मँडराय मँडराय आकाश को गया। उस धुँये को देख इन्द्र ने मेघपति को आज्ञा दी कि वन के पशु-पक्षी जीव जन्तुओं को बचाओ। इतनी आज्ञा पाय मेघपति दल बादल साथ ले वहाँ आय घबराय जल वर्षाने लगा। तो अर्जुन ने ऐसे पवन बाण मारे कि बादल राई सा उड़ गया। अग्नि वन झाड़ खण्ड जलता-जलता वहाँ आया कि जहाँ मय नाम असुर का मन्दिर था। अग्नि को अति रिस भरा आता देख भय मान नंगे पावों हाथ बाँध मन्दिर से निकल सन्मुख आय खड़ा हुआ और साष्टांग प्रणाम कर गिड़गिड़ाय के बोला हे प्रभु! इस आग से बचाय बेगि मेरी रक्षा करो।

वरी अग्नि पायो सन्तोष। अब तुम मानों जनि कुछ दोष ॥
मेरी विनती मन में लावौ। वैसंदर से मोहि बचावौ ॥

महाराज! इतनी बात मय दैत्य के मुख से निकलते ही उन्होंने बाण धरे और अग्नि भी सकुच खड़े रहे। निदान वे दोनों को साथ ले श्री कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के निकट जा बोले--महाराज।

यह सब असुर आय हैं काम। तुम्हरे लिय बनैहें धाम ॥
अब ही सुधि तुम मयकी लेहु। अग्नि बुझाय अभयवर देहु ॥

इतनी बात कह अर्जुन ने गाँडीव धनुष शर समेत हाथ से भूमि में रखा। तब प्रभु ने आग की ओर आँख दबाय सैन की। वह तुरन्त बुझ गया और सारे वन में शीतलता हुई। श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन सहित मय को साथ ले आगे बढ़े। वहाँ जाय मय ने कंचन के मणि मय मन्दिर अति सुन्दर सुहावने मन भावने क्षण भर में बनाय खड़े किए ऐसे की जिनकी शोभा कुछ वरणी नहीं जाती। जो देखने को आता सो चकित हो चित्र सा खड़ा रह जाता। आगे श्रीकृष्णचन्द्र जी वहाँ चार महीने बिरमे थे। पीछे वहाँ से चल वहाँ आये कि जहाँ राज सभा में राजा युधिष्ठिर बैठे थे। आते ही प्रभु ने राजा से द्वारका जाने की आज्ञा माँगी। यह बात श्रीकृष्ण के मुख से निकलते ही सभा समेत राजा युधिष्ठिर अति उदास हुए और नगर वासी भी क्या पुरुष क्या स्त्री सब चिन्ता करने लगे। निदान, प्रभु सब को यथा योग समझाय बुझाय आशा भरोसा दे अर्जुन को साथ ले युधिष्ठिर से बिदा हो हस्तिनापुर से चल हँसते खेलते कितने एक दिनों में द्वारिकापुरी आ पहुँचे। इनका आना सुन सारे नगर में आनन्द हो गया और सब का विरह दुख गया।

एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र ने राजा उग्रसेन के पास जाय कालिन्दी का भेद समझा के कहा कि महाराज! भानुसुता कालिन्दी को हम ले आये हैं। तुम वेद की विधि से हमारा उनके साथ विवाह कर दो। यह बात सुन उग्रसेन ने मन्त्री को बुलाय आज्ञा दी कि तुम ही जाय ब्याह की सामिग्री लावो। आज्ञा पाय मन्त्री ने विवाह की सामिग्री बात की बात में सब लाय दी। तिसी समय उग्रसेन और वसुदेव ने एक ज्योतिषी को बुलाय शुभ दिन ठहराय श्रीकृष्णचन्द्रका कालिन्दी के साथ वेद की विधि से विवाह कर दिया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा! कालिन्दी का विवाह तो यों

हुआ । अब आगे जैसे मित्रवृन्दा को हरि लाये और ब्याह किया तैसे कथा कहता हूँ तुम चित्त दे सुनो। शूरसेन जी की बेटी कृष्ण की फूफी जिसका नाम राजाधिदेवी था उसकी कन्या मित्रवृन्दा जब ब्याहने योग्य हुई, तब उसने स्वयम्बर किया। तहाँ सब देश के नरेश, गुणवान, रूप निधान महाराज बलवान अति धीर बन ठन के एक से एक अधिक, जा इकट्ठे हुए। यह समाचार पाय श्रीकृष्णजी भी अर्जुन को साथ ले वहाँ गये और जाके बीचों बीच स्वयम्बर में खड़े हुए।

हरषी सुन्दरि देख मुरारी। वार-वार मुख रही निहारी ।।

महाराज ! यह चरित्र देख सब देश-देश के राजा लज्जित हो मन ही मन अनखनाने लगे और दुर्योधन ने जाय उसके भाई मित्रसैन से कही कि बन्धु ! तुम्हारे मामा का बेटा है हरी, तिसे देख भूली है सुन्दरी। यह लोक विरुद्ध रीति है। इसके होने से जगत में हँसी होगी। तुम जाय बहन को कहो कि कृष्ण को नहीं बरै। नहीं तो सब राजाओं की भीड़ में हँसी होगी। इतनी बात के सुनते ही मित्रसेन ने जाय बहन को बुलाय करके कहा। भाई की बात सुन समझ जो मित्रवृंदा प्रभु के पास से हट कर दूर हो खड़ी हुई तो अर्जुन ने झुककर श्रीकृष्ण के कान में कहा कि महाराज ! अब आप किसकी कान करते हो, बात बिगड़ चुकी, जो कुछ करना हो सो कीजै बिलम्ब न करिये। अर्जुन की बात सुनते ही श्रीकृष्ण ने स्वयम्बर के बीच से उठ हाथ पकड़ मित्रबृन्दा को उठाय रथ हाँक दिया। उस काल सब भूपाल तो अपने शस्त्र ले-ले घोड़ों पर चढ़-चढ़ प्रभु का आगा घेर लड़ने को खड़े हुए और नगर निवासी लोग हँस-हँस तालियाँ बजाय गालियाँ दे दे यों कहने लगे।

फूफी सुता को व्याह आयौ। यह तुम कृष्ण भलौ यश पायौ ।।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज ! जब श्रीकृष्णजी ने देखा कि चारों ओर से जो असुर दल घिर आया है, सो लड़े बिना न रहेगा। तब उन्होंने कई एक बाण निखंग से निकाल धनुष तान ऐसे मारे कि सब असुरों की सेना छितर बितर हो वहाँ की वहीं बिलाय गई और प्रभु आनन्द से द्वारिका पहुँचे।

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज ! श्रीकृष्णजी ने मित्रवृन्दा को तो यों ले जाय द्वारिका में ब्याहा। अब आगे जैसे सत्या को प्रभु लाए सो कथा कहता हूँ ! तुम चित्त लगाय सुनो। कौशल देश में नग्नजित राजा ने सात बैल ऊँचे भयावने बिन नाथे मँगवाय यह प्रतिज्ञा कर देश में छुड़ाय दिये कि जो इन बृषभों को एक बार में नाथ लायेगा उसे मैं अपनी कन्या ब्याह दूँगा। महाराज वे सातों बैल सिर झुकाये पूँछ उठाये भू खूँद-खूँद डकराते फिरें और जिसे पावें तिसे हनें। आगे यह समाचार पाय श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन को साथ ले वहाँ गये और राजा नग्नजित के सन्मुख खड़े हुए। इनको देखते ही राजा सिंहासन से उतर प्रणाम कर इन्हें सिंहासन पर बैठाय चन्दन अक्षत पुष्प चढ़ाय धूप देय कर नैवेद्य आगे धर, हाथ जोड़ सिर नवाय अति विनती कर बोला कि आज मेरे भाग्य जागे, जो प्रभु मेरे घर आये। यों सुनाय फिर बोला कि महाराज ! मैंने एक प्रतिज्ञा की है सो पूरी होनी कठिन थी। पर अब मुझे निश्चय हुआ कि वह आपकी कृपा से पूरी होगी। प्रभु बोले ऐसी तूने क्या प्रतिज्ञा की है, कि जिसका होना कठिन है। तब राजा ने कहा कृपानिधान ! मैंने सात बैल बिन नाथे छुड़वाय यह

प्रतिज्ञा की है कि जो सातों बैलों को एक बेर में नाथेगा उसे मैं अपनी कन्या ब्याहूँगा । श्री-शुकदेव जी बोले कि महाराज !

सुन हरि फेटि बाँधि तहँ गये । सात रूप धरि ठाड़े भये ।।
काहू न लख्यौ अलख ब्यौहार । सातों नाथे एकहि वार ।।

वे बृषभ नाथने के समय ऐसे खड़े रहे कि जैसे काष्ठ के बैल खड़े होंय । प्रभु सातों को नाथ एक रस्सी में बाँध राज सभा में ले आये । यह चरित्र देख नगर निवासी क्या सब स्त्री व पुरुष अचरज कर धन्य-धन्य कहने लगे और राजा नग्नजित ने उसी समय पुरोहित को बुलाय वेद की विधि से कन्यादान किया । तिसके दहेज में दस सहस्त्र गाय, नौ लाख हाथी, दस लाख घोड़े, तिहत्तर लाख रथ दे, दास दासी अनगिनत दिये । श्रीकृष्णचन्द्र सब ले जब यहाँ से चले तब खिसयाय सब राजाओं ने प्रभु को मारग में आय घेरा । तहाँ बाणों से अर्जुन ने सबको मार भगाया । हरि आनन्द मंगल से सब समेत द्वारिकापुरी में पहुँचे । उस काल सब द्वारिकावासी आगे आय प्रभु को बाजे-गाजे से पाटम्बर के पाँवड़े डालते राज मन्दिर में ले गये और यह कौतुक देख सब अचम्भे में भये ।

नग्नजित की करत वड़ाई । कहत लोग यह वड़ी सगाई ।।
भलौ ब्याह कौशलपति कियो । कृष्ण हि इतौ दायजौ दियो ।।

महाराज ! नगर निवासी तो सब ढब की बातें कर रहे थे कि उसी समय श्रीकृष्ण-चन्द्र और बलराम जी ने वहाँ आ के राजा नग्नजित का दिया हुआ सब दायजा अर्जुन को दिया और जगत में यश लिया । आगे जैसे श्रीकृष्ण जी भद्रा को ब्याह लाये सो कथा कहता हूँ तुम चित्त लगाय सुनो । केकय देश के राजा ने अपनी बेटी भद्रा का स्वयम्बर किया । देश-देश के नरेशों को पत्र लिख भेजा । वे आय इकट्ठे हुए । तहाँ श्रीकृष्णचन्द्र जी भी अर्जुन को साथ लेकर गये, और स्वयम्बर के बीच सभा में जाय खड़े भये । जब राजकन्या माला हाथ में लिए सब राजाओं को देखती भालती रूप सागर जगत उजागर श्रीकृष्णचन्द्र के निकट आई तो देखते ही भूल रही और माला उनके गले में डाल दी । यह देख उसके माता पिता ने प्रसन्न हो वह कन्या हरि को वेद की विधि से ब्याह दी । उसके दायजे में बहुत कुछ दिया कि जिसका पारावार नहीं । इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले महाराज ! श्रीकृष्णचन्द्र भद्रा को तो यों ब्याह लाये, फिर प्रभु ने लक्ष्मणा को ब्याहा सो कथा कहता हूँ तुम सुनो । भद्र देश के नरेश अति बली और प्रतापी तिसकी कन्या लक्ष्मणा जब ब्याहने योग्य हुई तब उसने स्वयम्बर को चारों दिशाओं के नरेशों को पत्र लिख लिख बुलवाया । वे अति धूमधाम से अपनी-अपनी सेना सजा-सजा वहाँ आये और स्वयम्बर के बीच बनाव से पाँति की पाँति जा बैठे । श्रीकृष्णचन्द्र भी अर्जुन को साथ ले तहाँ गए और खुद स्वयंबर बीच जा खड़े हुए, तो लक्ष्मणा ने सबको देख आ श्रीकृष्ण जी के गले में माला डाली । उसके पिता ने वेद की विधि से प्रभु के साथ लक्ष्मणा का ब्याह कर दिया । सब देश देश के नरेश वहाँ आये थे सो महा लज्जित हो आपस में कहने लगे कि देखेंगे हमारे होते किस भाँति कृष्ण लक्ष्मणा को ले जाता है । ऐसे कह वे सब अपना-अपना दल साज मार्ग रोक जा खड़े हुए । ज्यों ही श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुन लक्ष्मणा समेत रथ

ले आगे बढ़े त्यों ही उन्होंने इन्हें आय रोका और युद्ध करने लगे । निदान, एक बेर में

मारे बाणों से अर्जुन और श्रीकृष्णजी ने सबको मार भगाया और आप आनन्द मङ्गल से नगर द्वारिका पहुँचे । इनके जाते ही सारे नगर में घर घर आनन्द व तरह-तरह के मंगल होने लगे ।

भई वधाई मंगलचार । कीन्हो वेद रीति व्यौहार ।।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज ! इस भाँति श्रीकृष्ण जी पाँच ब्याह कर लाये तब द्वारिका में आठों पटरानियाँ समेत सुख से रहने लगे और पठरानियाँ आठौ पहर सेवा करने लगीं । पटरानियों के नाम रुक्मिणी, जामवन्ती, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्र-वृन्दा सत्या, भद्रा व लक्ष्मणा हैं ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का श्रीकृष्ण पंच विवाह वर्णन नाम का उनसठवाँ अध्याय ।।५९।।

अध्याय–६०
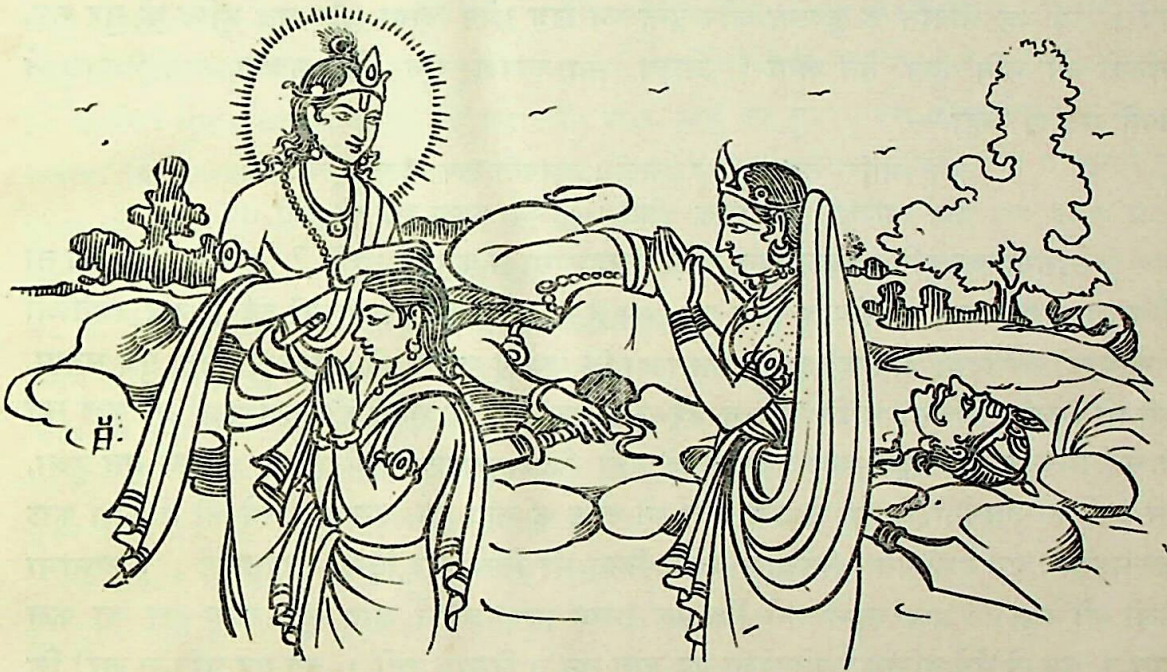
श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा ! एक समय पृथ्वी मानुष तनु धारण कर, अति कठिन तप करने लगी । तहाँ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन तीनों देवताओं ने आ उससे पूछा कि तू किसलिये इतनी कठिन तपस्या करती है ? धरती बोली कृपानिधान ! मुझे पुत्र की वासना है इस कारण महातपस्या करती हूँ । दया कर मुझे एक पुत्र दीजे जो अति बलवन्त महाप्रतापी बड़ा हो ऐसा कि जिसका सामना संसार में कोई न करे, न वह किसी के हाथ से मरे । यह वचन सुन प्रसन्न हो तीनों देवताओं ने वर दे उससे कहा कि तेरा सुत नरकासुर नाम का अति बली महाप्रतापी होगा । उससे लड़कर कोई न जीतेगा । वह सृष्टि के सब राजाओं को जीत अपने वश करेगा । स्वर्ग लोक में जाय देवता वर्ग को मार भगाय अदिति के कुण्डल छीन के आप पहनेगा और इन्द्र का छत्र छिनाय लाय अपने सिर धरेगा । संसार के राजाओं की कन्या सोलह सहस्र एक सौ लाय अनब्याही घर में रखेगा तब श्रीकृष्णचन्द्र अपना सब

कटक ले उस पर चढ़ जायँगे। और उनसे तू कहेगी इसे मारो, पुनि वे मार सब राज कन्याओं को ले द्वारिकापुरी को पधारेंगे।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! तीनों देवताओं ने जब यों कहा तब भूमि इतना कह चुप हो रही कि मैं ऐसी बात क्यों कहूँगी कि मेरे बेटे को मारो। आगे कितने ही एक दिन पीछे भूमि पुत्र भौमासुर हुआ उसी को नरकासुर भी कहते हैं। वह प्राग्जोतिषपुर में रहने लगा। उस पुर के चारों ओर पहाड़ की ओट और जल अग्नि पवन की कोट बनाय सारे संसार के राजाओं की कन्या बल कर छीन-छीन धाय समेत लाय लाय उसने वहाँ रखीं। नित उठ सोलह सहस्र एक सौ राजकन्याओं के खाने पीने पहनने की चौकसी किया करे। और बड़े यत्न से उन्हें पलवावै। एक दिन भौमासुर अति कोप कर पुष्पक विमान में बैठ जो लंका से लाया था, सुरपुर में गया, और लगा देवताओं को सताने। उसके दुःख से देवता स्थान छोड़-छोड़ जीव अपना ले ले के जिधर तिधर भाग गये। तब वह अदिति के कुण्डल और इन्द्र का छत्र छीन लाया और तब सृष्टि के सुर नर, मुनियों को अति दुख देने लगा। उसका सब कारण सुन श्रीकृष्णचन्द्र जगत् बन्धु ने अपने मन में कहा——

वाहि मारि सुन्दरि सब लाऊँ। सुरपति छत्र तहाँ पहुँचाऊँ।।
जाय अदिति के कुण्डल देहौं। निर्भय राज्य इन्द्र को कैहौं।।

इतना कह पुनि श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सत्यभामा से कहा हे नारि? तू मेरे साथ चल तो भौमासुर मारा जाय क्योंकि तू भूमि का अंश है। इस लेखे उसकी माँ हुई। जब देवताओं ने भूमि को बर दिया था तब यह कह दिया था कि जब तू मारने को कहेगी तब तेरा पुत्र मरेगा, नहीं तो किसी से किसी भाँति मारे न मरेगा। इस बात के सुनते ही सत्यभामा जी कुछ मन ही मन सोच समझ इतना कह अनमनी हो रही कि महाराज! मेरा पुत्र आपका सुत हुआ, उसे क्यों कर मारोगे। प्रभु ने उस बात को टाल के कहा कि, उसके मारने की तो मुझे कुछ चिन्ता नहीं, पर एक समय मैंने तुझे वचन दिया था तिसे पूरा किया चाहता हूँ। सत्यभामा बोली सो क्या! प्रभु कहने लगे कि एक समय नारदजी ने आय मुझे कल्प-वृक्ष का फल दिया। वह ले मैंने रुक्मिणी को भेजा यह बात सुन तू रिसाय रही। तब यह प्रतिज्ञा करी कि तू उदास मत हो, मैं तुझे कल्पवृक्ष ला दूँगा। सो अपना वचन प्रति पालने को और स्वर्ग दिखाने को साथ ले चलता हूँ। इतनी बात के सुनते ही सत्यभामा जी प्रसन्न हो हरि के साथ चलने को उपस्थित हुईं। तब प्रभु उसे गरुड़ पर अपने पीछे बैठाय साथ ले चले। कितनी एक दूर जाय श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सत्यभामा से पूछा सत्य कह सुन्दरी! इस बात को तू पहले क्या समझ अप्रसन्न हुई थी, उसका भेद मुझे समझाय के कह, जो मेरे मन का सन्देह जाय। सत्यभामा बोली महाराज! तुम भौमासुर को मार सोलह सहस्र एक सौ राजकन्या लाओगे तिन में मुझे भी गिनौगे——यह समझ अनमनी हुई थी। श्रीकृष्ण बोले कि तू किसी बात की चिन्ता मत कर। मैं कल्पवृक्ष लाय तेरे घर रखूँगा और तू उसके साथ मुझे नारद मुनि को दान कीजो फिर मोल ले मुझे अपने पास रखना मैं तेरे सदा आधीन रहूँगा। ऐसे ही इन्द्रानी ने इन्द्र को वृक्ष के साथ ही

दान किया था और अदिति ने कश्यप को। इस दान के करने से कोई रानी तेरे समान मेरे प्रिय

न होगी। महाराज इस भाँति की बातें कहते-कहते श्रीकृष्ण जी प्राग्योतिषपुर के निकट जा पहुँचे। वहाँ पहाड़ का कोट अग्नि, जल, पवन की ओर देखते ही प्रभु ने गरुड़ और सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी।उन्होंने पल भर में धाय बुझाय बहाय और अच्छा पन्थ बनाय दिया। ज्यों ही हरि आगे बढ़ नगर में जाने लगे त्यों ही गढ़ रखवाले दैत्य लड़ने को चढ़ आये। प्रभु ने तिन्हें गदा से सहज ही मार गिराया। उनके मरने का समाचार पाय मुर नामक राक्षस पाँच शीश वाला जो इस पुरगृह का रखवाला था सो आ क्रोधकर त्रिशूल हाथ में ले श्रीकृष्णजी पर क्रोध कर बढ़ा और आँखें लाल कर दाँत पीसकर कहने लगा कि——

मोते वली कौन जग और वाहि देखिहौं मैं यहि ठौर।।

महाराज! इतना कह मुर दैत्य श्रीकृष्णचन्द्र पर यों झपटा कि ज्यों गरुड़ सर्प पर झपटे। आगे उसने त्रिशूल चलाया सो प्रभु ने चक्र से काट गिराया फिर खिसयाय मुर ने जितने शस्त्र हरि पर घाले, तिनको प्रभु ने सहज ही काट डाले। पुनि वह हकबकाय दौड़कर प्रभु से आय लिपटा और मल्ल युद्ध करने लगा। कितनी एक बेर में युद्ध करते-करते श्रीकृष्णजी ने सत्यभामा को महा भयभीत जान सुदर्शन चक्र से उसके पाँचों सिर काट डाले। धड़ के गिरते ही धमक्का सुन भौमासुर बोला कि यह अति शब्द काहे का हुआ। इस बीच किसी ने जा के सुनाया कि महाराज! श्रीकृष्ण ने आय मुर दैत्य को मार डाला। इतनी बात के सुनते ही प्रथम तो भौमासुर ने अपने सेनापति को युद्ध करने का आयसु दिया। वह सब कटक सजा लड़ने को गढ़ के द्वार पर जा उपस्थित हुआ। और पीछे अपने पिता का मरना सुन मुर के सात बेटे जो अति बलवान और योद्धा थे सो अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र धारण कर श्रीकृष्ण जी से लड़ने को सन्मुख जा खड़े हुए। पीछे से भौमासुर ने अपने सेनापति और मुर के बेटों से कहला भेजा कि तुम सावधानी से युद्ध करो मैं अभी आता हूँ। लड़ने की आज्ञा पाते ही सब असुर दल साथ ले मुर के बेटों समेत भौमासुर का सेनापति श्रीकृष्ण जी से युद्ध करने को बढ़ आया और एका-एकी प्रभु के चारों ओर सब कटक दल बादर सा जाय छाया। सब ओर से अनेक अनेक प्रकार के अस्त्र भौमासुर के शूर श्रीकृष्णचन्द्र पर चलाते थे और वे सहज स्वभाव ही काट काट ढेर करते जाते थे। निदान हरि ने सत्याभामाजी को महा भयातुर देख असुर दल को मुर के सातों बेटों समेत सुदर्शन चक्र से बात की बात में ऐसे काट गिराया कि जैसे किसान ज्वार की खेती को काट कर डाल देता है।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! श्रीकृष्णजी ने मुर के बेटों समेत सेना सभी काट डाली। यह सुन पहले तो भौमासुर अति चिन्ताकर महा घबराया। पीछे कुछ सोच समझ धीरज धर कितने एक महाबली राक्षसों को अपने साथ ले लाल-लाल आँखें क्रोध से किये कमर कस कर फेंट बाँध, शर साध, बकता झकता, श्रीकृष्णजी से लड़ने को आय उपस्थित हुआ। ज्यों भौमासुर ने प्रभु को देखा त्यों उसने एक बार रिसाय मूठ के बाण चलाये सो हरि ने तीन-तीन टुकड़े कर काट गिराये उस काल——

काढ़ु खड्ग भौमासुर लियौ। कोपि हुंकार कृष्ण उर दियौ।।
करै शब्द अति मेघ समान। अरे गवार न पावै जान।।
करकस वचन तहाँ उच्चरै। महा युद्ध भौमासुर करै।।

महाराज ! वह तो अति बल कर इन पर गदा चलाता था और श्रीकृष्ण जी के शरीर में उनकी चोट यों लगती थी ज्यों हाथी के अंग में फूल । घड़ी आगे वह अनेक-अनेक अस्त्र-शस्त्र ले प्रभु से लड़ा और श्रीकृष्णजी ने सब काट डाले । तब वह घर जाय एक त्रिशूल ले आया और युद्ध करने को उपस्थित हुआ ।

तव सतिभामा टेर सुनाई । अव क्यों नहीं हनों यदुराई ।।
वचन सुनत प्रभु चक्र चलायौ । काट शीश भौमासुर मार्‍यौ ।।
कुण्डल मुकुट सहित शिर परो । धरती गिरत शेष थरथरो ।।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज ! भौमासुर की स्त्री पुत्र समेत प्रभु के सन्मुख आय हाथ जोड़ सिर नवाय अति बिनती कर कहने लगी हे ! ज्योति रूप, ब्रह्म रूप, भक्त हितकारी, बिहारी, तुम साधु सन्त के हेतु धरते वेश अनन्त, तुम्हारी महिमा लीला माया है अपरम्पार, तिसे कौन जाने ! किसे इतनी सामर्थ जो बिना कृपा तुम्हारी उसे बखाने । तुम सब देवों के हौ देव, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेद । महाराज ! ऐसे कह छत्र कुण्डल पृथ्वी पर प्रभु के आगे धर फेर बोली हे दीनानाथ ! दीनबन्धु कृपासिन्धु ! यह भगदत्त भौमासुर का बेटा आपकी शरण आया है । अब करुणा कर अपना कमल-सा कर इसके सिर पर दीजै और अपने भय से इसे निर्भय कीजै । इतनी बात के सुनते ही करुणानिधान श्री कान्ह ने करुणा कर भगदत्त के शीश पर हाथ धरा और अपने डर से उसे निडर किया । तब भौमवती भौमासुर की स्त्री बहुत-सी भेंट हरि के आगे धर अति बिनती कर हाथ जोड़ सिर नवाय खड़ी हो बोली हे दीनदयाल ! कृपालु ! जैसे आपने दर्शन दे हम सबको कृतार्थ किया, तैसे ही अब चल कर मेरा घर पवित्र कीजै । इस बात के सुनते ही अन्तर्यामी भक्त हितकारी श्रीमुरारी भौमासुर के घर पधारे । उस काल वे दोनों माँ बेटा हरि को पाटम्बर के पाँवड़े डाल, घर में ले जाय, सिंहासन पर बिठाय, अर्घ दे, चरणामृत ले, अति दीनता कर बोले, हे त्रिलोकी नाथ! आपने भला किया जो इस महा असुर का वध किया । हरि से विरोध कर संसार में किसने सुख पाया है ? जिस-जिस ने आपसे द्रोह किया तिस-तिस का जगत् में नाम लेवा पानी देवा कोई न रहा । इतना कह फिर भौमावती बोली हे नाथ ! अब आप मेरी विनती मान भगदत्त को निज सेवक जान जो सोलह सहस्र, एक सौ राजकन्या इसके बाप ने अनब्याही रोक रखी हैं सो अङ्गीकार कीजै । महाराज ! यों कह उसने सब राज-कन्याओं को निकाल प्रभु के सोंही पाँति की पाँति ला खड़ी कीं । वे जगत् उजागर रूपसागर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द को देखते ही मोहित हो अति गिड़गिड़ाय हाहा खाय हाथ जोड़ बोलीं नाथ ! जैसे आपने आय हम सब अबलाओं को इस महादुष्ट की बन्दी से निकाला, तैसे अब कृपा कर हम दासियों को साथ ले चलिये और निज-सेवा में रखिये, तौ भली है । यह बात सुन श्रीकृष्णचन्द्रजी ने उनसे इतना कहा कि, हम तुम्हें साथ ले चलने को रथ पालकियाँ मँगवाते हैं । यह कह भगदत्त की ओर देखा । भगदत्त प्रभु के मन का कारण समझ अपनी राजधानी में जाय हाथी घोड़े सजवाय घुड़-बहल और रथ झमझमाते जगमगाते जुतवाय सुखपाल पालकी, नालकी डोला, चण्डोली, झूलबारे के सजवाय लिवाय लाया । हरि ने देखते ही सब राज-कन्याओं को उन पर चढ़ने

की आज्ञा दे भगदत्त को साथ ले राजमन्दिर में जाय उसे राजगद्दी पर बैठाय राज-तिलक निज हाथ से दे आप जिस काल सब राजकन्याओं को साथ ले वहाँ से द्वारिका को चले, तिस समय की शोभा वर्णी नहीं जाती कि हाथी बैलों की गङ्गा यमुनी झूलों की चमक और घोड़ों की दमक और सुखपाल पालकी, नालकी, डोला, चण्डोली, रथ घुड़बहलों के घण्टा टापों की ध्वनि और उनके मोतियों की झालरों की ज्योति मिल ऐसी जगमगाय रही थी । आगे श्रीकृष्ण-चन्द्र सब कन्याओं को लिये कितने एक दिनों में चले-चले द्वारकापुरी जाय राजकन्याओं को मन्दिर में रख, राजा उग्रसेन के पास जाय, प्रणाम कर पहले तो उन्होंने ने भौमासुर को मारने और राजकन्याओं को छुड़वाय लाने का भेद कह सुनाया । फिर राजा उग्रसेन से बिदा होय प्रभु सत्यभामा को साथ ले छत्र कुण्डल लिये गरुड़ पर बैठ स्वर्ग को गये, यहाँ पहुँचते ही—

कुण्डल दिये अदिति को ईशा । छत्र धर्‌यो सुरपति के शीशा ।।

यह समाचार पाय वहाँ नारद आये । तिनसे हरि ने कह सुनाया कि जाय इन्द्र से कहो कि सत्यभामा तुम से कल्पवृक्ष माँगती है । देखो वह क्या कहता है । इस बात का उत्तर मुझे ला दो । पीछे समझा जायगा । महाराज इतनी बात श्रीकृष्ण के मुख से सुन नारद जी ने सुरपति से जाय कहा कि सत्यभामा, तुम्हारी भौजाई, तुमसे कल्पतरु माँगती है । तुम क्या कहते हो सो कहो । मैं उन्हें जाय सुनाऊँ कि इन्द्र ने यह बात कही है । इस बात के सुनते ही इन्द्र पहले तो हकबकाय कुछ सोचता रहा पीछे उसने नारद मुनि का कहा सब समाचार इन्द्रानी से जाय कहा ।

इन्द्राणी सुन कहे रिसाय । सुरपति तेरी कुमति न जाय ।।
तू है वड़ौ मूढ़ मति अन्धु । को है कृष्ण कौन कौ वन्धु ।।

तुझे यह सुधि है कि नहीं जो उसने ब्रज से पूजा भेंट ब्रजवासियों से गिरि पुजवाय छल कर तेरी पूजा का सब पकवान आप खाय फिर सात दिन तुझसे गिरि पर वर्षवाय उसने तेरा गर्व गँवाय सब जगत में निरादर किया । इस बात की कुछ तेरे ताईं लाज है कि नहीं ? वह अपनी स्त्री की बात मानता है तू तो मेरी कही क्यों नहीं सुनता । महाराज ! जब इन्द्रानी ने इन्द्र से यों कह सुनाया तब वह अपना सा मुँह ले उलटा नारदजी के पास आया और बोला हे ऋषिराज ! तुम मेरी ओर से जाय श्री कृष्णचन्द्र से कहो कि कल्पवृक्ष नन्दनवन तज अन्त न जायगा और जायगा तो वहाँ किसी भाँति न रहेगा, आगे किसी भाँति अब यहाँ हम से बिगाड़ न करें जैसे ब्रज में ब्रजवासियों को बहकाय गिरि का मिस कर सब हमारी पूजा की सामिग्री खाय गये । नहीं तो फिर महा युद्ध होगा ।

यह बात सुन नारद जी ने आय श्रीकृष्णचन्द्र जी से इन्द्र की बात कही और सुनाय के बोले, हे महाराज ! कल्पतरु इन्द्र तो देता था, पर इन्द्रानी ने न देने दिया । इस बात के सुनते ही श्रीकृष्ण मुरारी गर्व प्रहारी नन्दन वन में जाय रखवालों को मार भगाय और कल्पवृक्ष को उखाड़ गरुड़ पर धर ले आये । उस काल वे रखवाले जो प्रभु की मार खाय भागे थे, इन्द्र के पास जाय पुकारे । तब उसने कल्पतरु को ले जाने का समाचार पाया । महाराज ! राजा इन्द्र अति कोप कर बज्र हाथ में ले सब देवताओं को बुलाय ऐरावत हाथी पर चढ़ श्रीकृष्णचन्द्र जी से युद्ध करने को उपस्थित हुआ । फिर नारद मुनि जी ने जाय इन्द्र से कहा, महाराज !

तुम महा मूर्ख हो जी स्त्री के कहे भगवान् से लड़ने को उपस्थित हुए । ऐसी बात करते तुझे लड़ना ही था तो जब भौमासुर तेरा छत्र और अदिति के कुण्डल छिनाय ले गया, तब क्यों न लड़ा । अब प्रभु ने भौमासुर को मार कुण्डल और छत्र ला दिया तो उन्हीं से लड़ने लगा । तब इन्द्र लज्जित हो मन मार गया । आगे श्रीकृष्णचन्द्र द्वारिका पधारे । सब यादव हर्षित हो हरि को देखने धाये । प्रभु ने सत्यभामा के मन्दिर में कल्पवृक्ष ले जाय के रखा और राजा उग्रसेन ने सोलह सहस्र एक सौ कन्या अनब्याही साथ लाये सो सब को वेद रीति से श्रीकृष्ण-चन्द्र को ब्याह दीं ।

भयौ वेद विधि मङ्गल चार । ऐसे हरि विहरत संसार ।।
सोलह सहस एक सौ गेह । रहत कृष्ण पर परम सनेह ।।
पटरानी आठों जे गनी । प्रीत निरन्तर तिनसों घनी ।।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि हे राजा हरि ऐसे भौमासुर का वध कर और इन्द्र का छत्र ला, फिर सोलह सहस्र एक सौ आठ कन्याओं से विवाह कर द्वारिका पुरी में आनन्द से सबको साथ ले रहने लगे ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का श्रीकृष्ण भौमासुर संग्रामवर्णन नाम का साठवाँ अध्याय ।।६०।।

●

अध्याय–६१

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! एक समय मणिमय कंचन के मन्दिर में कुन्दन का जड़ाऊ छपरखट बिछाय, तिस पर फेन से बिछौने फूलों से सँवारे कपाल कडुआ और उशीर युक्त सुगन्ध से महक रहे थे । कपूर, गुलाब, नीर, चोवा चन्दन अरगजा सेज के चारों ओर पात्रों में धरा था । अनेक प्रकार के विचित्र चित्र चारों ओर भीतों पर खिचे हुए थे । आलों में जहाँ तहाँ फूल, पकवान, पाक धरे थे और सब सुख का सामान जो चाहिये सो उपस्थित था । झूला वारे घाँघरा घुमघुमारे तिस पर सच्चे मोती टके हुए, चमचमाती अँगिया, झल-झलाती सारी और जगमगाती ओढ़नी पहरे ओढ़े नखशिख से शृंगार किये, रोरी की आड़ दिये, बड़े-बड़े मोतियों की नथ, शीशफूल, कर्णफूल, माँग-टीका, डेढ़ी, चन्दन हार, मोहनभाला, धुकधुकी, सतलड़ी, पचताला, दुहरे तिहरे नौरतन और भुजबन्द, कंकन, पहुँची, नौगरी, चूड़ा, छल्ला, किंकिणी, अनबट, बिछुए, जेहर तेहर आदि सब आभूषण रत्न जटित पहने श्रीकृष्ण आनन्दकन्द तहाँ बिराजते थे, और आपस (परस्पर) में सुख देते लेते थे कि एकाएकी लेटे लेटे श्रीकृष्णजी ने रुक्मिणी जी से कहा कि सुन्दरी ! एक बात मैं तुझसे पूछता हूँ, तू तो महा सुन्दरी सब गुण युक्त और राजा भीष्मक की कन्या और महाबली, बड़े प्रतापी राजा शिशुपाल, चन्देरी के राजा, जिसके घर सात पीढ़ी से राज्य चला आता हो और हम उसके त्रास से भागे भागे फिरते हैं, मथुरापुरी तज समुद्र में आन बसे हैं, ऐसे राजा को तुम्हें तुम्हारे माता-पिता भाई देते थे और बरात ले ब्याह को भी आ चुका था, तिसे न वर तुमने कुल की मर्यादा छोड़, संसार की लाज और माता-पिता और बन्धु का भय तज हमें ब्राह्मण के हाथ बुलाय भेजा—

कटक साज नृप व्याहन आयौ । तव तुम हमकों बोलि पठायौ ।।
तिनके देखत तुम कौ लाये । दल हलधर उनके बिच लाये ।।
तुम लिख भेजी ही यह बानी । शिशूपाल तें छुड़ावहु आनी ।।
सो वह प्रतिज्ञा रही तिहारी । ना कुछ इच्छा हुती हमारी ।।
अजहूं कछू न गयौ तिहारो । सुन्दरि मानौं वचन हमारो ।।

कि जो कोई भूपति कुलीन गुण वाला तुम्हार योग्य होय तुम तिसके पास जाय रहियो । महाराज ! इतनी बात के सुनते ही श्री रुक्मिणीजी भय चकित हो पछाड़ खाय भूमि पर गिरीं और जल बिना मीन की भाँति तड़फड़ाय अचेत हो लगीं ऊर्ध्व स्वाँस लेने तिस काल——

दोहा——यहि छवि मुख अलकावली रही लपट एक संग ।
मानहु शशि भूतल परो पीवत अमी भुगङ्ग ।।

यह चरित्र देख, इतना कह श्रीकृष्णचन्द्र घबराय उठे कि यह तो अभी प्राण तजती है । तब चतुर्भुज हो उसके पास जाय लगे दो हाथों से अलक सँवारने । महाराज ! उस काल नन्दलाल प्रेम वश हो अनेक-अनेक चेष्टा करने लगे । कभी पीताम्बर से प्यारी का चन्द्रमुख पोंछते थे । कभी कोमल सा अपना हाथ उसके हृदय पर रखते थे, निदान कितनी एक देर में रुक्मिणी जी के जी में जी आया तब हरि बोले—हमने हाँसी ठानी जो तुमने साँची ही जानी । हँसी की बात पर क्रोध करना उचित नहीं । उठो अब क्रोध दूर करो और मन का शोक हरो । महाराज ! इतनी बात के सुनते ही रुक्मिणीजी उठ, हाथ जोड़ सिर नाय, कहने लगीं कि महाराज ! आपने जो कहा कि हम तुम्हारे नहीं, सो सच कही, क्योंकि आपकी समता का त्रिलोकी में कौन है । हे जगदीश आपको छोड़ जो जन और को ध्यावें, सो ऐसे हैं जैसे कि कोई हरि यश छोड़, गृद्ध गुण गावै । महाराज ! आपने जो कहा कि तुम किसी महाबली राजा को देखो, सो आपसे अति बली और बड़ा राजा त्रिभुवन में कौन है सो कहौ । ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादिक सब देवता आपकी आस कर रहे हैं । आपकी कृपा से वे जिसे चाहते हैं तिसे महाबली प्रतापी यशस्वी, तेजस्वी वर दे बनाते हैं और जो लोग आपकी सैकड़ों वर्ष अति कठिन तपस्या करते हैं सो राजपद पाते हैं । फिर आप ही अपना सर्वस्व खोय भ्रष्ट होते हैं हे कृपानाथ ! आपकी तो सदा की यह रीति है कि अपने भक्तों के लिए संसार में आय अवतार लेते हैं और दुष्ट राक्षसों को मार पृथ्वी का भार उतार निज जनों को सुख दे कृतार्थ करते हैं और नाथ ! जिस पर आपकी बड़ी दया होती है, वह धन, राज, यौवन, रूप, प्रभुता पाय जब अभिमान से अन्धा और धर्म, कर्म, तप, सत, दया, पूजा भजन भूलता है तब आप उसे दरिद्री बनाते हैं, क्योंकि दरिद्री सदा ही आपका ध्यान सुमिरण किया करता है । इसी से आप दरिद्री बनाते हो । जिस पर आपकी बड़ी कृपा होगी सो सदा निर्धन रहेगा । महाराज ! इतनी कह फिर रुक्मिणीजी बोलीं, कि हे प्राणनाथ ! जैसे काशीपुर के राजा इन्द्रद्युम्न की बेटी अम्बा ने किया वैसा मैं न करूँगी कि वह पति छोड़ राजा भीष्मजी के पास गई और जब उसने इसे रखा तब फिर अपने पति के पास

आई । पुनि पति ने उसे निकाल दिया । तब उनसे गङ्गा तीर में महादेव का बड़ा तप किया । तहाँ भोलानाथ ने आय उसे मुँह माँगा वर दिया । उस वर के बल से जाय राजा भीष्म से अपना पलटा लिया, सो मुझसे न होगा ।

अरु तुम नाथ यही समझाई । काहू याचक करी वड़ाई ।।
वाकों वचन मान तुम लीनौ । हम पर विप्र पठै के दीनौ ।।
विप्र पठाये जानि दयाल । आय कियो दुष्टन कौ काल ।।
दीन जान दासी सङ्ग लई । तुम मोहि नाथ वढ़ाई दई ।।
यह सुनि कृष्ण कहत सुन प्यारी । ज्ञान ध्यान गति लही हमारी ।।
सेवा भजन प्रेम ते जान्यो । तोही सो मेरो मन मान्यो ।।

महाराज ! प्रभु के मुख से इतनी बात सुन सन्तुष्ट हो रुक्मिणी जी फिर हरि की सेवा करने लगीं ।

इति श्री लल्लूलालकृत प्रेमसागर का इकसठवाँ अध्याय ।।६१।।

अध्याय–६२
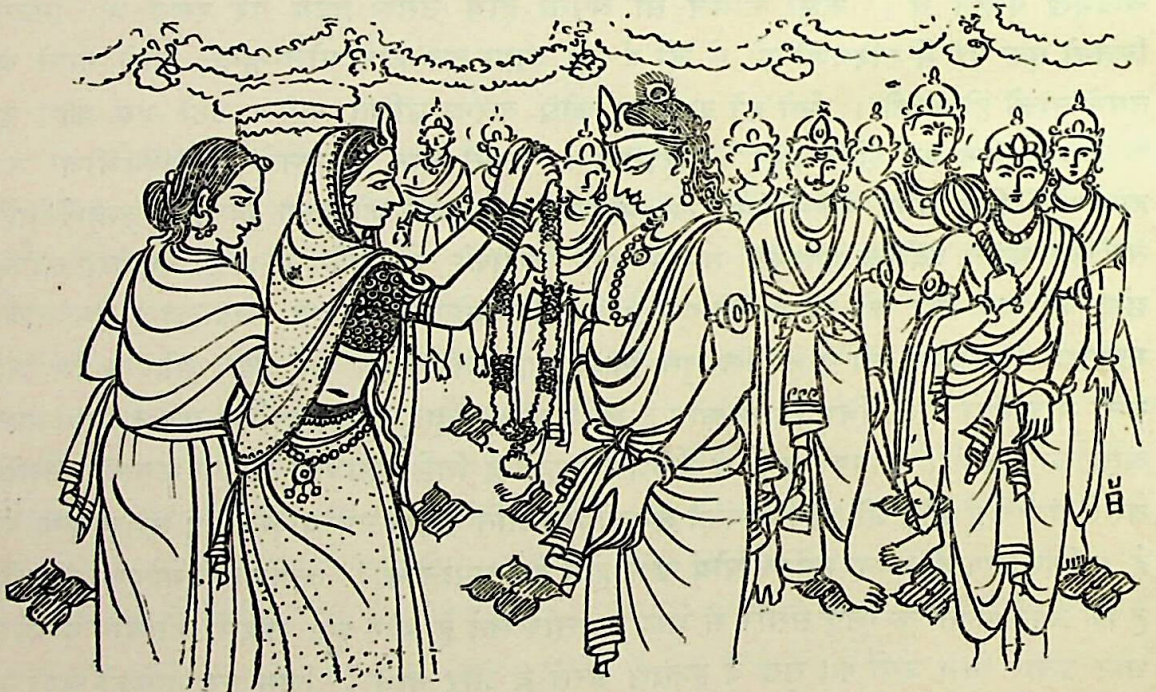
श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! सोलह सहस्र एक सौ आठ स्त्रियों को ले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द से द्वारिकापुरी में बिहार करने लगे और आठों पटरानियाँ आठों पहर हरि की सेवा में रहें । नित उठ भोर ही कोई मुख धुलावै कोई उबटन लगाय नहलावै, कोई षटरस भोजन बनाय जिमावै । कोई अच्छे पान लोंग इलायची जावित्री जायफल, समेत पिया कौ बनाय खिलावै । कोई सुन्दर वस्त्र और रत्न जटित आभूषण चुनाय और बनाय प्रभु को पहनावती थी । कोई फूलमाला पहनाय गुलाबी नीर छिड़क, केशर चन्दन चरचराती

थी। कोई पंखा ढालती थी और कोई पाँव दबाती थी। महाराज ! इस भाँति सब रानियाँ अनेक प्रकार से प्रभु की सदा सेवा करें और हरि हर भाँति उन्हें देख सुख दें। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज ! कई वर्ष के बीच––

दोहा––एक एक यदुनाथ की, नारिन जाये पुत्र ।।
इक इक कन्या लक्ष्मी, दस दस पुत्र सुपुत्र ।।
एक लक्ष इकसठ सहस, असी वाल इकसार ।।
भये कृष्ण के पुत्र ये, गुणवल रूप अपार ।।

सब मेघवर्ण, चन्द्रमुख, कमलनयन, नीले-पीले झगुले पहने गण्डे, कठेले गले में डाल घर-घर बाल चरित्र, कर माता पिता को सुख दें और उनकी माताएँ अनेक भाँति से लाड़ प्यार कर प्रतिपाल करें। महाराज श्रीकृष्णचन्द्रजी के पुत्रों का होना सुन रुक्म ने अपनी स्त्री से कहा कि, अब मैं अपनी कन्या चारुमती जो कृतवर्मा ने माँगी है उसे न दूँगा। स्वयम्बर करूँगा तुम किसी को भेज मेरी बहन रुक्मिणी को पुत्र समेत बुलाय भेजो। इतनी बात के सुनते ही रुक्म की नारी ने अति विनती कर ननद को पत्र लिख पुत्र समेत एक ब्राह्मण के हाथ बुलाया और स्वयम्बर किया, भाई भौजाई की चिट्ठी पाते ही रुक्मिणी श्रीकृष्ण जी से आज्ञा ले बिदा हो पुत्र के सहित चली द्वारिका से भोजकट में भाई के घर पहुँची।

देखि रुक्म ने अति सुख पायौ। आदर कर नीचौ सिर नायौ ।।
पायन पड़ बोली भौजाई। हरण भयौ तव से अव आई ।।

यह कह फिर उसने रुक्मिणी जी से कहा कि ननद जो आई हो तो हम पर बड़ी दया कीजै और चारुमती कन्या को अपने पुत्र के लिए लीजै। इस बात के सुनते ही रुक्मिणी जी बोली कि भौजाई तुम पति की गति जानती हो। तुम किसी से कलह करवाओ। भैया की बात कुछ कही नहीं जाती, क्या जानिये किस समय क्या करें। इससे कोई बात कहते करते भय लगता है। रुक्म बोला कि बहन तुम किसी भाँति न डरो कुछ गड़बड़ी न होगी। वेद की आज्ञा है कि, दक्षिण देश में कन्यादान भानजे को दीजै, इस कारण मैं अपनी पुत्री चारुमती आपके पुत्र प्रद्युम्न को दूँगा, और श्रीकृष्णजी से बैर भाव छोड़ नया सम्बन्ध करूँगा। महाराज ! इतनी कह जब रुक्म वहाँ से उठ सभा में गया, तब प्रद्युम्न जी माता से आज्ञा ले बन ठनकर स्वयम्बर के बीच में गये तो क्या देखते हैं कि देश-देश से नरेश भाँति-भाँति के वस्त्र आभूषण पहन शस्त्र बाँधे, बनाव किए विवाह की अभिलाषा हिये में लिए, खड़े हैं और वह कन्या जयमाला कर में लिए चारों ओर दृष्टि किये बीच में फिरती है पर किसी पर दृष्टि नहीं ठहराती। इतने में ज्यों प्रद्युम्न जी स्वयम्बर के बीच में गये, त्यों उन्हें देखते ही उस कन्या ने मोहित हो आ इनके गले में जयमाला डाली। सब राजा पछताय अपना-सा मुँह ले देखते खड़े रह गये और अपने मन ही मन कहने लगे कि भला देखें हमारे आगे से इस कन्या को कैसे ले जायगा। हम बाट ही में छीन लेंगे। महाराज सब राजा तो यों कह रहे थे और रुक्म ने वर कन्या को माढ़े के नीचे ले जाय वेद की विधि से संकल्प कर कन्या दान किया और उसके यौतुक में बहुत ही धन द्रव्य दिया कि जिसका कुछ पारावार नहीं। आगे श्री-रुक्मिणी पुत्र को ब्याह भाई भौजाई से बिदा हो बेटे बहू को ले रथ पर चढ़ जो द्वारिकापुरी

को चलीं तो सब राजाओं ने आय मार्ग रोका इसलिए कि प्रद्युम्न से लड़ कन्या को छीन लें। उनकी यह कुमति देख प्रद्युम्न भी शस्त्र अस्त्र ले युद्ध करने को उपस्थित हुए। कितनी ही एक बेर तक इनमें उनमें युद्ध होता रहा। निदान, प्रद्युम्न जी ने उन सबको मार भगाये और आनन्द मङ्गल से द्वारिकापुरी में पहुँचे। इनके पहुँचने का समाचार पाय सब कुटुम्ब के लोग क्या स्त्री क्या पुरुष पुरी के बाहर आय रीति भाँति कर पाटम्बर के पाँवड़े डालते, बाजे गाजे से इन्हें ले गये। सारे नगर में मंगलचार हुआ। ये राज मन्दिर में सुख से रहने लगे।

इतनी कथा सुनाय शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज कई वर्ष पीछे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के पुत्र प्रद्युम्नजी के पुत्र हुआ। उस काल श्रीकृष्णचन्द्रजी ने ज्योतिषियों को बुलाय सब कुटुम्ब के लोगों को बैठाय, मङ्गलचार करवाय शास्त्र की रीति से नामकरण किया। ज्योतिषियों ने पत्रा देख वर्ष, मास, दिन, तिथि, घड़ी, लग्न, नक्षत्र, ठहराय उस लड़क का नाम अनिरुद्ध रखा। उस काल——

सोरठा—फूले अङ्ग न समाय देत दक्षिणा द्विजन को।
देत न कृष्ण अघाय, पुत्र भयो प्रद्युम्न के।।

महाराज! नाती होने का समाचार पाय पहले तो रुक्म ने बहन बहनोई को अति हितकर यह पत्री लिख भेजी कि तुम्हारे पोते से हमारी पोती का ब्याह होय तो बड़ा आनन्द है और पीछे एक ब्राह्मण को बुलाय रोरी, अक्षत रुपया नारियल ने उसे समझाय के कहा कि द्वारिकापुरी में जाय हमारी ओरसे अति विनती कर श्रीकृष्ण का पौत्र अनिरुद्ध जो हमारा दोहता है तिसे टीका दे आवो। बात के सुनते ही ब्राह्मण टीका और लग्न साथ ले चला। श्रीकृष्णचन्द्र के पास द्वारिकापुरी में गया उसे देख प्रभु ने अति मान आदर से पूछा कि देवता आपका आना कहाँ से हुआ। ब्राह्मण बोला महाराज मैं राजा भीष्मक के पुत्र रुक्म का पठाया हूँ। उनकी पुत्री और आपके पौत्र से सम्बन्ध करने को टीका और लग्न ले आया हूँ। इस बात के सुनते ही कृष्णजी ने भाई बन्धुओं को बुलाय टीका और लग्न ले, उस विप्र को बहुत कुछ दे विदा किया और आप बलरामजी के निकट जाय चलने का बिचार करने लगे। निदान, वे दोनों भाई वहाँ से उठ राजा उग्रसेन के पास आय सब समाचार सुनाय उनसे विदा हो बाहर आय बरात का सब सामान मँगवाय इकट्ठा करवाने लगे। कई एक दिनों में जब सब सामान इकट्ठा हो चुका तब बड़ी धूमधाम से प्रभु बरात लै द्वारिका से भोज कट नगर को चले। उस काल एक झमझमाते रथ पर तो रुक्मिणीजी पुत्र पौत्र को ले बैठीं जाती थीं और एक रथ पर श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम बैठे जाते थे। निदान कितने दिनों में सब समेत प्रभु वहाँ पहुँचे। महाराज बरात के पहुँचते ही रुक्म कलिंगादि सब देश-देश के राजाओं को साथ ले नगर के बाहर जाय आगौनी कर सबको बागे पहराय अति आदर मान कर जनमासे लिवाय लाया। आगे उसको खिलाय पिलाय माढ़े के नीचे लिवाय ले गया और उसने वेद रीति से कन्यादान किया। उसके यौतुक में जो दान दिया उसको मैं कहाँ तक कहूँ, अकथ है। इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेवजी बोले महाराज ब्याह के हो चुकते ही राजा भीष्मक ने जनमासे में जाय हाथ जोड़ अति विनती कर श्रीकृष्णजी से चुपके-चुपके कहा महाराज विवाह हो चुका। उत्तम रहा, अब आप शीघ्र चलने का विचार कीजे क्योंकि——

भूप सगे जे रुक्म बुलाये। ते सब दुष्ट उपाधी आये।।
मति काहू सों उपजे रारि। याही ते मैं कहत मुरारि।।

इतनी बात कह जो राजा भीष्मक गये त्यों ही श्रीरुक्मिणी के निकट रुक्म आया।

दोहा—कहत रुक्मिणी टेर कर, किस घर पहुँचे जाय।
वैरी भूपति पाहुने, जुरे तिहारे आय।।
जो तुम भैया चाहो भलौ। हमहि बेग पहुँचावन चलौ।।

नहीं तो रस में अनरस होता दीखता है। यह वचन सुन रुक्म बोला कि बहन तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। मैं पहले जो राजा देश-देश के पाहुने आये हैं तिन्हें विदा कर आऊँ पीछे जो तुम कहोगी सो करूँगा। इतनी कह रुक्म यहाँ से उठ जो राजा, पाहुने आये थे उनके पास गया। वे सब मिलके कहने लगे कि रुक्म तुमने कृष्ण बलदेव को इतना धन द्रव्य दिया और उन्होंने मारे अभिमान के कुछ भला न माना। एक तो हमें इसका पछितावा है, और दूसरी उस बातकी कसक हमारे मन से नहीं जाती कि जो बलराम ने तुम्हें अपमानित किया था। महाराज! इस बात के सुनते ही रुक्म को क्रोध हुआ। तब राजा कलिंग बोला कि एक बात मेरे जी में आई है, कहो कहूँ। रुक्म ने कहा कहो, फिर उसने कहा कि हमें श्री-कृष्ण से कुछ काम नहीं, पर बलराम को बुला दो तो हम उनसे चौपड़ खेल सब धन छीन लें और जैसा उसे अभिमान है तैसा यहाँ से रीते हाथ बिदा करें। यह बात सुन विचार कर रुक्म वहाँ से उठ बलरामजी के निकट जा बोला कि महाराज आपको सब राजाओं ने प्रणाम कर चौपड़ खेलने को बुलाया है।

सुन बलभद्र तुरत तहँ आये। भूपति उठि के शीश नवाये।।

आगे सब राजा बलराम जी का शिष्टाचार कर बोले कि आपका चौपड़ खेलने का अभ्यास है, इसलिये हम आपके साथ खेलना चाहते हैं। इतना कह उन्होंने चौपड़ मँगवाय बिछाई और रुक्म से और बलरामजी से होने लगी। पहले रुक्म दस बेर जीता तो बलरामजी से कहने लगा कि धन तो सब जीता अब काहे से खेलौगे। इतने में राजा कलिंग बड़ी-बड़ी बात कह हँसा। यह चरित्र देख बलदेव जी नीचा सिर कर सोच विचार करने लगे। तब रुक्म ने दस करोड़ रुपये एक बार लगाये सो बलरामजी ने जो जीत के उठाये तो सब धाँधली कर बोले कि यह रुक्म का पासा पड़ा तुम क्यों रुपये समेटते हो।

सुन बलराम फेर सब दीन्हे। दाँव लगायौ पीछे लीन्हे।।

फिर हलधर जीते और रुक्म हारा, उस समय भी रोंगटी कर सब राजाओं ने रुक्म को जिताया और यों कह सुनाया—

जुआ खेल पाँसे की सार। यह तुम जानो कहा गँवार।।
जुआ युद्ध गति भूपति जाने। ग्वाल गोप गैयन पहिचाने।।

इस बात के सुनते ही बलदेव जी को क्रोध यों बढ़ा कि जैसे पूनों को समुद्र की तरंग बढ़े। निदान, ज्यों त्यों कर बलराम जी ने क्रोध को रोक मन को समझाया। फिर सात अर्ब रुपये से चौपड़ खेलने लगे। फिर भी बलदेवजी जीते और सबों ने कपट कर रुक्म ही को जीता कहा। इस अनीति के होते आकाश से यह वाणी हुई कि हलधर जीते और रुक्म हारा। अरे राजाओ,

तुमने क्यों झूँठ वचन उचारा । महाराज ! जब रुक्म समेत सब राजाओं ने आकाशवाणी सुनी अनसुनी की, तब तो बलदेव जी महा क्रोध में आय बोले--

करी सगाई बैर न छाड्यो । हमसे फेरि कलह तुम मान्यो ।।
मारो तोहि अरे अन्याई । भलौ बुरौ मानहुँ भौजाई ।।
अब काहूँ की कानि न करिहों । आज प्राण कपटी के हरि हों ।।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज ! निदान, बलरामजी ने सब के देखते-देखते रुक्म को मार डाला और कलिंग को पछाड़ मारे घूँसों से उसके दाँत उखाड़ लिये और कहा कि तू भी मुँह पसार के हँसा था आगे सब राजाओं को मार भगाय बलराम जी ने जनवासे में श्रीकृष्णचन्द्र के पास आय सब ब्यौरा कह सुनाया । बातके सुनते ही हरि ने सब समेत वहाँ से प्रस्थान किया और चले-चले आनन्द मङ्गल से द्वारिका में आए । इनके आते ही सारे नगर में सुख छा गया । श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव जी ने राजा उग्रसेन के सन्मुख जाय हाथ जोड़ कहा कि महाराज ! आप के पुण्य प्रताप से अनिरुद्ध को ब्याह लाये और महा दुष्ट रुक्म को मार आये ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का अनिरुद्ध विवाह नाम का बासठवाँ अध्याय ।।६२।।

अध्याय–६३

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! अब जो द्वारिकानाथ का बल पाऊँ तो ऊषा हरण की कथा सुनाऊँ । जैसे उसने रात्रि समय स्वप्न में अनिरुद्ध जी को देख और आसक्त हो खेद किया, पुनि चित्ररेखा ने अनिरुद्ध को लाय ऊषा से मिलाया, तैसे मैं सब प्रसङ्ग कहता हूँ । तुम मन दे सुनो । ब्रह्मा के वंश में पहले कश्यप हुआ तिसका पुत्र हिरण्यकश्यप अति बली और महाप्रतापी और अमर भया । उसका सुत हरिजन प्रभु भक्त प्रह्लाद नाम का हुआ । उसका

बेटा राजा विरोचन। विरोचन का पुत्र राजा बलि जिसका यश धर्म धरणी में अबतक छाय रहा है कि प्रभु ने बामन अवतार ले राजा बलि को छल से पाताल पठाया। उस बलि का ज्येष्ठ पुत्र महा पराक्रमी बड़ा तेजस्वी बाणासुर हुआ। वह शोणितपुर में बस, नित कैलाश में जाय शिव की पूजा करै, ब्रह्मचर्य पाले, सत्य बोलै जितेन्द्रिय रहै।

महाराज ! एक दिन बाणासुर कैलाश में जाय हर के प्रेम में आय, लगा मग्न हो मन्द-मन्द मृदंग बजाय नाचने गाने। उसका गाना बजाना सुन श्री महादेव भोलानाथ मग्न हो लगे पार्वती जी को साथ ले नाचने और डमरू बजाने। निदान, नाचते नाचते शङ्कर ने अति सुख पाया। प्रसन्न हो बाणासुर को निकट बुलाय कहा, पुत्र ! मैं तुझपर सन्तुष्ट हुआ वर माँग——

तूने वाजे भले वजाये। सुनत श्रवण मेरे मन भाये।।

इतनी बात के सुनते ही महाराज ! बाणासुर हाथ जोड़ सिर नवाय अति दीनता कर बोला कि कृपानाथ ! जो आपने मेरे ऊपर कृपा की तो पहले अमर कर मुझे पृथ्वी का राज दीजै। पीछे मुझे ऐसा बली कीजै, कि कोई मुझसे न जीतेगा। महादेव जी बोले मैंने तुझे यह बर दिया और सब भय निर्भय किया। त्रिभुवन में तेरे बल को कोई न पावेगा और विधाता का भी तुम पर वश न चलेगा।

वाजे भले वजाय कै, दियो परम सुख मोय।
मैं हिय अति आनन्द कर, दिये सहस्र भुज तोय।।

अब तू घर जाय निश्चिन्ताई से बैठ अविचल राज्य कर। महाराज ! इतना वचन भोलानाथ के मुख से सुन सहस्र भुज पाय बाणासुर अति प्रसन्न हो परिक्रमा दे, सिर नाय, बिदा हो, आज्ञा ले, शोणितपुर में आया। आगे त्रिलोकी जीत सब देवताओं को वश कर, नगर में चारों ओर जल की चुआन चौड़ी खाई और अग्नि पवन का कोट बनाय, निर्भय हो सुख से राज्य करने लगा। कितने एक दिन पीछे——

लड़े विना भईं भुज सवल। फरकहिं अरु सहरायँ।।
कहत वाण कासों लरै। कापर अव चढ़िजायँ।।
भई खोज लड़वे की भारी। को पुजबै हिय हौंस हमारी।।

इतना कह बाणासुर घर से बाहर जाय लगा पहाड़ उठाय-उठाय तोड़-तोड़ करके देश-देश फिरने। जब सब पर्वत फोड़ चुका और उसके हाथों की सुरसुराहट खुजलाहट न गई तब——

कहत वाण अव कासों लड़ौं। इतनी भुजा कहा लै करौ।।
सकल भार मैं कैसे सहौं। वहुर जाय के हर सों कहौं।।

महाराज ऐसे मन ही मन में सोच विचार कर बाणासुर महादेवजी के सन्मुख जा हाथ जोड़ सिर नाय बोला कि हे शूलपाणिनाथ ! आपने जो कृपा कर सहस्र भुजा दीं सो मेरे शरीर पर भईं, उनका बल अब मुझसे सँभाला नहीं जाता। इसका उपाय कुछ कीजै। कोई महाबली युद्ध करने को मुझे बता दीजै। मैं त्रिभुवन में ऐसा पराक्रमी किसी को नहीं देखता जो मेरे सन्मुख हो युद्ध करे। आप दया कर जैसे आपने मुझे महाबली किया तैसे ही

कृपा कर मुझसे लड़ मेरे मन की अभिलाषा पूरी कीजै, नहीं तो और किसी महाबली को बता दीजै जिससे मैं जाकर युद्ध करूँ और अपने मन का शोक हरूँ। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज! बाणासुर से इस भाँति की बातें सुन श्रीमहादेवजी ने बिलखाय मन ही मन में इतना कहा कि मैंने तो इसे साधु मान के वर दिया, अब यह मुझसे ही लड़ने को उपस्थित हुआ। इस मूर्ख को बल का घमण्ड भया। अब यह जीता न बचेगा। जिसने अहंकार किया सो जगत में आय बहुत रोज न जिया। ऐसा मन ही मन कह महादेव जी बोले कि यदुकुल में श्रीकृष्णावतार होगा। उस बिन त्रिभुवन में तेरा सामना करनेवाला कोई नहीं। यह वचन सुन बाणासुर अति प्रसन्न हो बोला कि नाथ! वह पुरुष कब अवतार लेगा और मैं कैसे जानूँगा कि अब वह उपजा। हे राजा! शिवजी ने एक ध्वजा बाणासुर को देकर कहा कि इसको ले जा अपने मन्दिर के ऊपर गाड़ दे। जब वह ध्वजा आपसे आप टूट कर गिरे तब जानियो कि मेरा शत्रु जन्मा है।

महाराज जब शंकर ने उससे ऐसे समझा कर कहा तब बाणासुर ध्वजा ले निज घर को सिर नाय चला। आगे घर जाय ध्वजा मन्दिर पर चढ़ा नित्य यही मनाता था कि कब वह पुरुष प्रगटे और उससे युद्ध करूँ। इसमें कितने एक वर्ष बीते। उसकी बड़ी रानी बाणावती तिसके गर्भ रहा और पूरे दिन में एक लड़की हुई। उस काल बाणासुर ने ज्योतिषियों को बुलाय के कहा कि इस लड़की का नाम और गुण कहो। इतनी बात के सुनते ही ज्योतिषियों ने झट वर्ष मास, पक्ष, तिथि, वार, घड़ी महूर्त्त, नक्षत्र ठहराय लग्न विचार उस लड़की का नाम ऊषा धर के कहा कि महाराज! यह कन्या रूप गुण शील की खान महा सुजान होगी। इसके ग्रह लक्षण ऐसे ही आन पड़े हैं।

इतना सुन बाणासुर ने अति प्रसन्न हो बहुत कुछ ज्योतिषियों को दे बिदा किया। पीछे मंगला मुखियों को बुलाय मंगलचार करवाये। पुनि ज्यों-ज्यों वह कन्या बढ़ने लगी, त्यों त्यों बाणासुर उसे अति प्यार करने लगा। जब ऊषा सात बरस की भई तब उसके पिता ने शोणितपुर के निकट ही कैलाश था तहाँ कई एक सखी सहेलियों के साथ शिव पार्वती जी के पास पढ़ने को भेज दिया। ऊषा गणेश सरस्वती को मनाय शिव पार्वती के सन्मुख जाय हाथ जोड़ विनती कर बोली कि हे कृपासिन्धु शिव गौरी, दया कर मुझ दासी को विद्या दान दीजै और जगत में यश लीजै। महाराज ऊषा के अति दीन वचन सुन शिव गौरी जी ने उसे प्रसन्न हो विद्या का आरम्भ करवाया। वह नित्य प्रति जाय पढ़-पढ़ आवै। इसमें कितने एक दिनों के बीच सब शास्त्र पढ़ विद्या पाय गुणवती हुई और सब यन्त्र बजाने लगी। एक दिन ऊषा पार्वती के साथ मिल कर वीणा बजाय संगीत की रीति से गाय रही थी कि शिवजी ने आय पार्वती से कहा कि प्रिये। मैंने जो कामदेव को जलाया था तिसे श्रीकृष्णचन्द्र जी ने उपजाया। इतना कह श्री महादेवजी गिरजा को साथ ले गंगा तीर में जाय नीर में न्हाय न्हिलाय सुख की इच्छा कर अति लाड़ प्यार से पार्वती जी को वस्त्र आभूषण पहराने और हित करने लगे। निदान, फिर अति आनन्द में मग्न हो डमरू बजाय-बजाय ताण्डव नाच संगीत शास्त्र की रीति से नाच-नाच और गाय-गाय लगे पार्वती जी को रिझाने और बड़े प्यार से कण्ठ लगाने। उस समय ऊषा शिव गौरी के सुख प्यार देख-देख पति के मिलने की अभिलाषा कर

मन ही मन कहने लगी कि मेरे भी कन्त होय तो मैं भी शिव गौरी की भाँति उसके साथ बिहार करूँ। ज्यों ऊषा ने मन ही मन इतनी बात कही, त्यों अन्तरयामिनी पार्वती ने ऊषा की अन्तरगति जान उसे हित से निकट बुलाय प्यार कर, समझा के कहा कि बेटी, तू किसी बात की चिन्ता मत करे। तेरा पति तुझे स्वप्न में आय मिलेगा। तू उसे ढूँढ़वा लीजो, और उसके साथ सुख भोग कीजो। ऐसे वर दे शिवरानी ने ऊषा को बिदा किया। वह सब विद्या पढ़ वर पाय, दण्डवत कर, अपने पिता के पास आई। पिता ने एक मन्दिर अति सुन्दर निराला इसे रहने को दिया और कितनी एक सखी सहेलियों को ले वहाँ रहने लगी और लगी दिन-दिन बढ़ने। महाराज जिस काल वह बारह वर्ष की हुई तो उसके मुख चन्द्र की कान्ति को देख पूर्णमासी का चन्द्रमा छीन हुआ। बालों की श्यामता के आगे अमावस की अन्धेरी फीकी लगने लगी। उसकी चोटी सटकारी लख नागिनी अपनी केंचुली छोड़ सटक गई। भौंह की बकाई निरख धनुष धकधकाने लगा। एक बार सज धज के हँसती-हँसती सखियों के साथ माता पिता को प्रणाम करने गई कि जैसे लक्ष्मी। ज्यों, सन्मुख जाय दण्डवत कर ऊषा खड़ी हुई त्यों बाणासुर ने उसके यौवन की छटा देख निज मन में इतना कह उसे बिदा किया कि अब यह ब्याहने योग्य हुई और पीछे से कई एक राक्षसी उसकी चौकसी को बैठाईं। वह वहाँ जाय आठों पहर साव-धानी से रहने लगी और राक्षसियाँ सेवा करने लगीं। महाराज! वह राजकन्या पति के लिए नित्य जाप, पुण्य, ब्रत कर श्रीगौरी जी की पूजा किया करै। एक रोज नित्य कर्म से निश्चिन्त हो रात समय सेज पर अकेली बैठी मन ही मन सोच कर रही थी कि देखिये पिता मेरा विवाह कब करें और किस भाँति मेरा वर मुझे मिले। इतना कह स्वामी के ही ध्यान में सो गई, तो स्वप्न में देखती क्या है कि एक पुरुष, किशोर, श्याम वर्ण, चन्द्रमुख, कमल नयन, अति सुन्दर, कामरूप, मोहनस्वरूप, पीताम्बर पहन, मोरमुकुट सिर धरे, त्रिभंगी छबि करे, रतन जटित आभूषण मकराकृत कुण्डल, बनमाला पहने और पीत बसन ओढ़े, महाचंचल, सन्मुख आके खड़ा हुआ। यह उसे देखते ही मोहित हो लजाय, सिर झुकाय रही। फिर, उसने कुछ प्रेम सनी बातें कर, स्नेह बढ़ाय, निकट आय, हाथ पकड़, कण्ठ लगाय, इसके मन का भ्रम और सोच संकोच सब बिसराय दिया। फिर तो परस्पर सोच संकोच तज सेज पर बैठ हाव भाव कटाक्ष और आलिङ्गन चुम्बन कर सुख लेने लगे और प्रेम मगन हो प्रीति की बातें करने लगे। इसमें कितनी एक बेर पीछे ऊषा ने ज्यों प्यार करना चाहा कि पति को एक बार अंक भर कण्ठ लगाऊँ, त्यों नयनों की नींद गई और जिस भाँति हाथ बढ़ाय मिलने को भई थी तिसीं भाँति मुरझाय पछिताय रह गई।

दोहा––जागि परी सोचत खड़ी, भयौ परम दुख ताहि।
कहाँ गयो वह प्राणपति, देखत चहुँदिश चाहि॥

महाराज! इतना कह ऊषा अति उदास हो, पिय का ध्यान धर, सेज पर जाय, मुख लपेट पड़ रही। जब रात जाय भोर हुआ, डेढ़ पहर दिन चढ़ा, तब सखी सहेली मिल आपस में कहने लगीं कि आज क्या है जो ऊषा इतना दिन चढ़ा और अब तक सो कर नहीं उठी? यह सुन चित्ररेखा, बाणासुर के प्रधान कूष्माँड की बेटी, चित्रशाला में जाय क्या देखती है कि

ऊषा छपर खट के बीच मन मारे जी हार निढाल पड़ी, रो-रो लम्बी श्वाँस ले रही है । उसकी यह दशा देख--

दोहा–चित्ररेखा बोली अकुलाय । कहि सखि तू मोसों समुझाय ।।
आज कहा सोचत है खड़ी । परम वियोग सिन्धु में परी ।।
रो रो अधिक उसासें लेत । तन मन व्याकुल है किहि हेत ।।
तेरे मम कौ दुख परिहरौं । मन चीते कारज सव करौं ।।

महाराज ! इतनी बात के सुनते ही ऊषा अति सकुचाय सिर नवाय चित्ररेखा के निकट आय, मधुर वचन से बोली कि मैं तुझे अपनी हितू जान रात की बात सब कह सुनाती हूँ । तू निज मन में रख और कुछ उपाय कर सके तो कर । आज रात को एक पुरुष मेघवर्ण, चन्द्रवदन, कमलनयन, पीताम्बर पहरे, पीतपट ओढ़े, मेरे पास आय बैठा और उसने अति स्नेह कर मेरा मन हाथ में ले लिया । मैं भी सोच संकोच तज उससे बात करने लगी । निदान, बतराते-बतराते जो मुझे प्यार आया तो मैंने उसे पकड़ने को हाथ बढ़ाया, इसी बीच में मेरी नींद उचट गयी, और उसकी मोहनी मूर्ति मेरे ध्यान में रही--

देख्यो सुन्यौ और नहिं ऐसौं । मैं कछु कहा वताऊँ जैसौं ।।
वाकी छवि वरणी नहिं जाय । मेरो चित लै गयौ चुराय ।।

जब मैं कैलाश पर श्रीमहादेवजी के पास विद्या पढ़ती थी तब श्री पार्वती जी ने मुझसे कहा था कि तेरा पति तुझे स्वप्न में आय मिलेगा । उसे ढुँढ़वाय लीजो । सो वर आज रात मुझे स्वप्न में मिला । मैं उसे कहाँ पाऊँ और अपने बिरह की पीर किसे सुनाऊँ । कहाँ जाऊँ, उसे किस भाँति ढुढ़वाऊँ, न उसका नाम जानूँ, न गाम । महाराज ! इतना कह जब ऊषा लम्बी श्वाँस ले मुरझाय रह गई, तब चित्ररेखा बोली कि सखी ! अब तू किसी बात की चित्त में चिन्ता मत कर मैं तेरे कंत को तुझे जहाँ होगा तहाँ से ढूँढ़ ला मिलाऊँगी । मुझे तीनों लोक में जाने की सामर्थ्य है । जहाँ होगा तहाँ जाय ले मिलाऊँगी । मुझे उसका नाम बता और जाने की आज्ञा दे ! ऊषा बोली बीर ! सुन, कहावत है कि मरी और स्वाँस न आई ! जो मैं उसका नाम गाम, जानती होती तो दुःख काहे का था । कुछ न कुछ उपाय करती । यह बात सुन चित्ररेखा बोली, सखी ! तू इस बात का भी सोच न कर, मैं तुझे त्रिलोकी के पुरुष लिख-लिख कर दिखाती हूँ, तू इस में से अपने चित-चोर को देख बता दीजो । फिर ला मिलाना मेरा काम है । तब तो हँसकर ऊषा बोली अच्छा । महाराज यह वचन ऊषा के मुख से निकलते ही चित्ररेखा लिखने का सामान मँगवाय, आसन मार बैठी और गणेश शारदा को मनाय, गुरु का ध्यान कर, लिखने लगी । पहले तो उसने तीन लोक, चौदह भुवन, सात द्वीप, नौ खण्ड, पृथ्वी, आकाश, सातों समुद्र, आठों लोक, बैकुण्ठ सहित लिख दिखाये । पीछे सब देव, दानव, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, ऋषि मुनि लोकपाल और सब देशों के भूपाल लिख-लिख एक-एक कर चित्ररेखा ने दिखाये । पर ऊषा ने अपना चाहता उनमें न पाया । फिर चित्र-रेखा यदुवंशियों की शक्ल एक-एक कर लिख दिखाने लगी इसमें अनिरुद्ध का चित्र देखते ही

ऊषा बोली--

अव मन चोर सखी मैं पायौ। रात यही मेरे ढिग आयौ।।
कर अव सखी तू कछू उपाय। याकौ ढूँढ़ कहूँ ते लाय।।

यों सुनाय चित्ररेखा पुनि बोली कि सखी ! तू नहीं जानती, मैं पहचानती हूँ। श्रीकृष्णजी कां पोता प्रद्युम्न का बेटा अनिरुद्ध इसका नाम है। समुद्र के तीर नीर में द्वारिका नाम एक पुरी है, तहाँ यह रहता है। हरि आज्ञा से उस पुरी का पहरा आठ पहर सुदर्शन चक्र देता है। इसलिए कि कोई दुष्ट दैत्य दानव आय यदुवंशियों को न सतावै और कोई पुरी में आवे सो बिना राजा उग्रसेन, शूरसेन की आज्ञा न आने पावे। महाराज ! इस बात के सुनते ही ऊषा अति उदास हो बोली कि सखी जो वह ऐसा बिकट ठौर है तो तू किस भाँति वहाँ जाय मेरे कन्त को लावेगी। चित्ररेखा ने कहा आली तू इस बात से निश्चिन्त रह। मैं हरि प्रताप से तेरे प्राणपति को ला के मिलाती हूँ। इतना कह चित्ररेखा राम नाम कपड़े पहन गोपीचन्दन का त्रिपुण्ड तिलक काढ़, छापे उर मस्तक भुज और कण्ठ में लगाय, बहुत सी तुलसी की माला गले में डाल, हाथ में बड़े-बड़े तुलसी के हारों की सुमिरनी ले, ऊपर ते हिरावल ओढ़, काँख में आसन लपेट, भगवत गीता की पोथी दबाय परम भक्त वैष्णव का भेष बनाय, ऊषा को यों सुनाय बिदा हो द्वारिका को चली––

दोहा–मारग अव आकाश के, अन्तरिक्ष ह्वै जाऊँ।
लाऊँ तेरे कन्त को, चित्ररेखा तौ नाऊँ।।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज ! चित्ररेखा अपनी माया कर पवन के तुरङ्ग पर चढ़, अँधेरी रात्रि में श्याम घटा के साथ, बात की बात में द्वारिकापुरी में जाय बिजली-सी चमकी और कृष्णचन्द्र जी के मन्दिर में बढ़ गई। ऐसे कि इसका आना किसी ने नहीं जाना। आगे यह ढूँढ़ती-ढूँढ़ती वहाँ गई जहाँ पलंग पर सोये अनिरुद्धजी अकेले सपने में ऊषा के साथ बिहार कर रहे थे। इसने देखते ही उस सोते को पलंग समेत उठाय झट अपनी बाट ली।

सोवत ही परयंक समेत। लिए जात ऊषा के हेत।।
अनिरुद्ध ले आइ वहाँ। ऊषा चिन्तित बैठी जहाँ।।

महाराज ! पलंग समेत अनिरुद्ध को देखते ही ऊषा पहले तो हकबकाई, चित्ररेखा के पावों पर जाय गिरी, पीछे यों कहने लगी धन्य है सखी तेरे साहस और पराक्रम को, जो कठिन ठौर जाय बात की बात में पलंग समेत उठा लाई और अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। मेरे लिए तैंने इतना कष्ट किया। इसका पलटा मैं तुझे नहीं दे सकती। तेरे गुण की ऋणी ह्वै रही। चित्ररेखा बोली सखी ! संसार में बड़ा सुख यही है जो पर को सुख दीजै और कारज भला यही है कि पर उपकार कीजै। यह शरीर किसी काम का नहीं। इससे किसी का काम हो सके तो यही बड़ा काम है। इससे स्वार्थ परमार्थ होते हैं। महाराज इतना वचन सुनाय चित्ररेखा पुनि यों कह बिदा हो अपने घर गई कि सखी ! भगवान् के प्रताप से तेरा कन्त मैंने ला मिलाया। ऊषा प्रसन्न हो प्रथम मिलन का भय लिये मन ही मन में यों कहने लगी––

कहा वात कह पियहि जगाऊँ। कैसे भुज भर कण्ठ लगाऊँ।।

निदान बीणा मिलाय मीठे-मीठे स्वरों से बजाने लगी । बीणा की ध्वनि सुनते ही अनिरुद्ध जी जाग पड़े और चारों ओर देख मन ही मन यों कहने लगे यह कौन ठौर किसका मन्दिर है । मैं यहाँ कैसे आया और मुझे सोते को पलंग समेत कौन उठा लाया । महाराज ! उस काल अनिरुद्ध जी तो अनेक प्रकार की बातें कह कर अचरज करते थे और ऊषा संकोच किये एक कोने में खड़ी पिया का चन्द्रमुख देख निरख अपने लोचन चकोरों को सुख देती थी इसी बीच--

अनिरुद्ध देखि के कहें अकुलाय । कहौ सुन्दरी मन की भाय ।।
है तू को मो पै क्यों आई । कै तू आप मोहि लै आई ।।
साँच झूँठ ऐकौ नहि जानों । सपनों सो देखत हों मानों ।।

महाराज ! अनिरुद्ध जी की यह बात सुन ऊषा ने कुछ उत्तर न दिया । वह और भी लाज कर कोने में सट रही । तब तो उन्होंने झट इसे हाथ पकड़ पलँग पर ला बिठाया और प्रीति सनी प्यार की बातें कह उसके मन का संकोच और भय मिटाया । आगे वे दोनों परस्पर सेज पर बैठ हाव-भाव कटाक्ष कर सुख लेने देने लगे और प्रेम कहानी कहने लगे । इस बीच में अनिरुद्ध जी ने ऊषा से पूछा हे सुन्दरी तूने पहले मुझे कैसे देखा और पीछे किस भाँति यहाँ मंगवाया । इसका भेद समझा कर कह जो मेरे मन का भ्रम जाय । इतनी बात के सुनते ही ऊषा पति का मुख निरख हर्ष से बोली ।

मोहि मिले तुम सपने आय । मेरौ चित लै गये चुराय ।।
जागी मन भारी दुःख लह्यौ । तव मैं चित्ररेखा सों कह्यौ ।।
सोई प्रभु तुमको यहँ लाई । ताकी गति जानी नहिं जाई ।।

इतना कहि पुनः ऊषा ने कहा महाराज ! मैंने तो जिस भाँति तुम्हें देखा और पाया तैसे सब कह सुनाया । अब आप कहिये अपनी बात समझाय जैसे तुमने मुझे देखा यादवराय ! यह वचन सुन अनिरुद्ध अति आनन्द कर मुस्कुराय के बोले कि सुन्दरी ! मैं आज रात को स्वप्न में देख रहा था कि नींद में कोई मुझे उठाय यहाँ ले आया । इसका भेद मैंने अब तक नहीं पाया कि मुझे कौन लाया । जागा तो मैंने तुझे ही देखा । इतनी कथा कह शुकदेव जी बोले महाराज ! ऐसे वे दोनों आपस में प्रिय प्यारी बतराय पुनि-पुनि प्रीति बढ़ाय अनेक-अनेक प्रकार से लगे काम किलोल करने और बिरह की पीर हरने । आगे पान की मिठाई, मोती मालान की शीतलताई और दीप ज्योति की मन्दताई निरख ज्यों ही ऊषा बाहर जाय देखे तो ऊषा काल हुआ । चन्द्र की ज्योति घटी तारे द्युतिहीन भये, आकाश में अरुणाई छाई, चारों ओर चिड़ियाँ चुहचुहाईं । सरोवर में कुमुदिनी कुम्हिलाई और कमल फूले, चकवा चकई का संयोग हुआ । महाराज ऐसा समय देख एक बार तो सब द्वार मूँद ऊषा बहुत घबराय घर में आय अति प्यार कर पिया को कण्ठ लगाय लेटी, पीछे पिया को दुराय सखी सहेलियों से छिपाय छिप-छिप कन्त की सेवा करने लगी । निदान अनिरुद्ध का आना सखी सहेलियों ने जाना । फिर तो वह दिन रात पति के साथ सुख भोग किया करे । एक दिन ऊषा की माता बेटी की सुधि लेने आई तो उसने छुपकर देखा कि वह एक महासुन्दर तरुण पुरुष के साथ कोठे

में बैठी आनन्द से चौपड़ खेल रही है । यह देखते ही बिन बोले चाले दबे पाँव फिर मन ही मन प्रसन्न होकर आशीष देती चुपचाप वह अपने घर चली गई । आगे कितने एक रोज पीछे ऊषा पति को सोते देख जी में यह विचार कर सकुचती सकुचती घर से बाहर निकली कि कहीं ऐसा न हो, जो मुझे देख कोई अपने मन में जाने कि ऊषा पति के लिये घर से नहीं निकलती । महाराज ! ऊषा कन्त को अकेला छोड़ते तो छोड़ गई, पर उससे रहा न गया । फिर, घर में आय किवाड़ लगाय, बिहार करने लगी यह चरित्र देख, पहरियों ने आपस में कहा कि भाई आज क्या है जो राज-कन्या अनेक दिन पीछे घर में से निकली और फिर उलटे पाँवों चली गई । इतनी बात के सुनते ही उनमें से एक बोला कि भाई मैं कई दिन से देखता हूँ ऊषा के मन्दिर का द्वार दिन रात लगा रहता है और घर के भीतर कोई पुरुष हँस-हँस के बात करता है और चौपड़ खेलता है । दूसरे ने कहा जो यह बात सच है तो, चलो बाणासुर से जाय कहें समझ बूझ यहाँ क्यों बैठे रहें——

एक कहै कुछ कहौं न जाय । तुम सब बैठ रहो अरगाय ।।
भली बुरी होवे सो होय । हौनहार मेटे नहिं कोय ।।
कछु न बात कुंवरि की कहिये । चुप ह्वै के बैठे ही रहिये ।।

महाराज ! द्वारपाल आपस में ये बात करते ही थे कि एक योधा साथ लिये फिरता-फिरता बाणासुर वहाँ से आ निकला और मन्दिर के ऊपर दृष्टि कर शिवजी की दी हुई ध्वजा न देख बोला कि यहाँ से ध्वजा क्या हुई ? द्वारपालों ने उत्तर दिया कि महाराज वह तो बहुत दिन हुए टूट कर गिर पड़ी । इस बात के सुनते ही शिवजी का वचन स्मरण कर भयातुर हो बाणासुर बोला——

कबकी ध्वजा पताका गिरी । बैरी कहूँ अवतरौ हरी ।।

इतना वचन बाणासुर के मुख से निकलते ही एक द्वारपाल सन्मुख खड़ा हो, हाथ जोड़ सिर नाय बोला कि महाराज एक बात है पर मैं कह नहीं सकता । जो आपकी आज्ञा पाऊँ तो ज्यों की त्यों कह सुनाऊँ । बाणासुर ने आज्ञा दी अच्छा कह, तब पौरिया बोला महाराज ! अपराध क्षमा हो, कई रोज से हम देखते हैं कि राजकन्या के महल में कोई पुरुष आया है । वह दिन रात बात किया करता है । इसका भेद हम नहीं जानते कि वह कौन पुरुष है और कहाँ से आया है और क्या करता है । इतनी बात सुनते ही बाणासुर अति क्रोध कर अस्त्र उठाय दबे पाँवों अकेला ऊषा के महलों में जाय छिप कर क्या देखता है कि एक पुरुष श्यामवर्ण अति सुन्दर पीतपट ओढ़े निद्रा में अचेत ऊषा के सङ्ग सोया पड़ा है ।

सोचत बाणासुर यों हिये । होय पाप सोवत वध किये ।।

महाराज ! यों मन ही मन विचार बाणासुर ने कई एक रखवाले वहाँ रख इनसे कहा कि तुम इसके जागते ही हमें आय कहियो । फिर, अपने घर जाय सभा कर सब राक्षसों को बुलाय कहने लगा कि मेरा बैरी आन पहुँचा है । तुम सब दल से ऊषा का महल जाय घेरो पीछे से मैं भी आता हूँ । आगे इधर तो बाणासुर की आज्ञा पाय सब राक्षसों ने पहुँच ऊषा के महल को घेरा और इधर अनिरुद्ध जी और राजकन्या निद्रा में चौंक कर उठे

और पुनः पंसासार खेलने लगे। इतने में चौपड़ खेलते-खेलते ऊषा क्या देखती है कि चहूँ तरफ से घनघोर घटा घिर आई। बिजली चमकने लगी। दादुर मोर पपीहे बोलने लगे। महाराज पपीहा की बोली सुनते ही राजकन्या इतनी कह पिय के कंठ लगी।

तुम पपीहा पिय पिय मत करौ। यह वियोग भाषा परि हरौ॥

इतने में किसी ने जाय बाणासुर से कहा महाराज तुम्हारा बैरी जागा। बैरी का नाम सुनते ही बाणासुर महा कोप करके उठा और हथियार ले ऊषा की पौर में आय खड़ा हुआ और लगा छिप कर देखने। निदान देखते-देखते।

वाणासुर यों कहै हुँकार। को है रे तू गेह मँझार॥
घनतनवरण मदन मनहारी। कमल नयन पीताम्वर धारी॥
अरे चोर वाहर किन आवें। जाय कहाँ अव मोसों पावै॥

महाराज बाणासुर ने यों कहे बैन, तब ऊषा अनिरुद्ध सुन देख भये निपट अचैन। पुनि राजकन्या ने अति चिन्तातुर हो लम्बी स्वाँस ले पति से कहा कि महाराज! मेरा पिता असुर दल ले चढ़ आया, अब आप कैसे बचौगे।

दोहा— तवहिं कोपि अनिरुद्ध कह्यौ, मति डरपे तू नारि॥
स्यार झुण्ड राक्षस असुर, पल में डारों मारि॥

ऐसा कह अनिरुद्धजी ने वेद मन्त्र पढ़ एक सौ आठ हाथ की शिला बुलाय हाथ में ले, बाहर निकल, दल में जाय, बाणासुर को ललकारा। इनके निकलते ही बाणासुर धनुष चढ़ा सब कटक ले अनिरुद्धजी पर यों टूटा कि मधुमक्खियों का झुण्ड किसी पै टूटे। जब राक्षस अनेक-अनेक प्रकार के अस्त्र चलाने लगे तब क्रोध कर अनिरुद्ध जी ने शिला के हाथ कई एक ऐसे मारे कि सब असुर दल काई सा फट गया। पुनि बाणासुर जाय उनको घेर लाया और युद्ध करने लगा, महाराज जितने अस्त्र-शस्त्र असुर चलाते तितने इधर-उधर हो जाते थे और अनिरुद्ध जी के अङ्ग में एक भी अस्त्र-शस्त्र न लगता था।

जो अनिरुद्ध पर परें हथियार। अघवर कटें शिला की धार॥
सिला प्रहार सदा नहिं परें। वज्जुर चोट ज्यों सुरपति करें॥
लागत शीश बीच ते फटै। टूटहि जाँघ भुजा वर कटै॥

निदान लड़ते-लड़ते जब बाणासुर अकेला रह गया और सब कटक कट गया तब उसने मन ही मन अचरज कर इतना कह नागफाँस से अनिरुद्ध जी को पकड़ बाँधा कि इस अजीत को कैसे जीतूँगा। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! जिस समय अनिरुद्धजी को बाणासुर नागफाँस से बाँध अपनी सभा में ले गया, उस काल अनिरुद्ध जी मन ही मन बिचारते थे कि मुझे कष्ट तो होता है, पर ब्रह्मा का वचन झूँठा करना उचित नहीं। क्योंकि जो मैं नागफाँस से बचकर निकलूँगा तो उसकी मर्यादा नष्ट होगी। इससे बँधा रहना भला है और बाणासुर यह कह रहा था अरे लड़के! मैं तुझे अब मारता हूँ जो कोई तेरा सहायक हो तौ तू बुला। इस बीच ऊषा ने पिया की यह दशा सुन चित्ररेखा से कहा कि सखी धिक्कार है मेरे जीवन को जो पति मेरा दुख में रहे और

मैं सुख से खाऊँ पीऊँ और सोऊँ। चित्ररेखा बोली सखी कुछ चिन्ता मत करै। तेरे पति का कोई कुछ न कर सकेगा। निश्चिन्त रह अभी श्रीकृष्णजी और बलराम सब यदुवंशियों को साथ ले चढ़ि आवेंगे और असुर दल को संहार तुझ समेत अनिरुद्ध जी को छुड़ाय ले जावेंगे। उनकी यह रीति है कि जिसकी सुन्दर कन्या सुनते हैं तहाँ से छल बलकर जैसे बने तैसे ले जाते हैं। उन्हीं का यह पोता है जो कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक की बेटी रुक्मिणी जी को महाबली बड़े प्रतापी राजा शिशुपाल और जरासन्ध से संग्राम कर ले गए थे। तैसे ही अब तुझे ले जायँगे। किसी बात की कुभावना मत कर। ऊषा, बोली सखी यह दुख मुझसे सहा नहीं जाता।

नाग फाँस बाँधे पिय हरी। दहे गात व्याला विष भरी॥
हों कैसे पोढ़ों सुख चैन। पिय दुख क्यों कर देखों नैन॥

महाराज! चित्ररेखा से ऐसे कह जब ऊषा कन्त के निकट जाय निडर निशंक हो बैठी तब किसी ने बाणासुर को जाय सुनाया कि महाराज राजकन्या घर से निकल उस पुरुष के पास गई। इतनी बात के सुनते ही बाणासुर ने पुत्र स्कन्ध को बुलाय के कहा कि बेटा तू अपनी बहिन को सभा से उठाय घर ले जाय, पकड़ रख और निकलने न दे। पिता की आज्ञा पाते ही स्कन्ध बहन के पास जाय अति ेध कर बोला कि तैंने यह क्या किया? पापिनी, छोड़ी लोक लाज और कान आपनी, हे नीच मैं तुझे क्या बध करूँ, ऊषा बोली कि भाई जो तुम्हें भावे सो कहौ और करो, मुझे पार्वती जी ने जो वर दिया सो मैंने पाया। अब इसे छोड़ और को ध्याऊँ तौ अपने को गाली चढ़ाऊँ। तजती है पति को अकुलीन नारी; यह रीति परम्परा से चली आती है। बीच संसार जिस विधना ने सम्बन्ध किया उसी के साथ जगत् में अपयश लिया तौ लिया महाराज! इतनी बात के सुनते ही स्कन्ध क्रोध कर हाथ पकड़ ऊषा को वहाँ से मन्दिर में उठा लाया और फिर जाने न दिया। पुनि अनिरुद्ध जी को भी वहाँ से उठाय कहीं अन्त ले जाय बन्द कर दिया। उस काल इधर अनिरुद्ध जी त्रिया के वियोग में महा शोक करते थे और इधर राजकन्या कन्त के बिरह में अन्न पानी तज कठिन योग करने लगी। एक दिन नारद मुनि ने पहले तो अनिरुद्ध जी को जाय समझाया कि तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। अभी श्रीकृष्णचन्द्र बलराम राक्षसों के साथ संग्राम कर तुम्हें छुड़ाय ले जावेंगे। पुनि बाणासुर को जाय सुनाया कि राजा जिसे तुमने नागफाँस से पकड़ बाँधा है वह श्रीकृष्ण का पोता और प्रद्युम्न का बेटा अनिरुद्ध उसका नाम है। तुम यदुवंशियों को भली-भाँति से जानते हो। जो चाहो सो करो, मैं तुम्हें सावधान करने आया था सो कर चला। यह सुन बाणासुर ने नारद जी को बिदा करते हुए कहा कि मैं यह सब जानता हूँ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का ऊषा-अनिरुद्ध मिलन नामका त्रेसठवाँ अध्याय॥६३॥

अध्याय—६४

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! जब अनिरुद्ध को बँधे बँधे चार महीने हो गये तब नारद जी द्वारिकापुरी को गये तो वहाँ क्या देखते हैं कि सब यादव महाउदास, मनमलीन

दीन हो रहे हैं और श्रीकृष्ण बलरामजी उनके बीच में बैठ अति चिन्ता कर रहे हैं कि बालक को उठाय यहाँ से कौन ले गया। नारदजी के जाते सब लोग स्त्री व पुरुष उठि धाये और अति ब्याकुल तन, क्षीन मन, मलीन रोते बिलखते सन्मुख खड़े हुए। आगे अति विनती कर हाथ जोड़ सिर नाय हा हा खाय नारदजी से सब पूछने लगे।

साँची वात कहौ ऋषिराय। जासों जिय राखें विरमाय॥
कैसे सुधि अनिरुद्ध की लहैं। कहौ साधु काके वल रहैं॥

इतनी बात के सुनते ही नारदजी बोले कि आप किसी बात की चिन्ता मत करो और अपने मन का शोक हरो। अनिरुद्ध जी जीते जागते शोणितपुर में हैं। वहाँ उन्होंने जाय बाणासुर की कन्या से भोग किया। इसलिये उसने उन्हें नागफाँस से पकड़ बाँधा है। बिना संग्राम किये वह किसी भाँति अनिरुद्ध जी को न छोड़ेगा। यह भेद मैंने आपको कह सुनाया। यों कह नारद मुनि तौ चले गये। पीछे सब यदुवंशियों ने आय राजा उग्रसेन से कहा कि महाराज! हमने ठीक समाचार पाया कि अनिरुद्ध जी शोणितपुर में बाणासुर के के यहाँ कैद हैं। उन्होंने उनकी कन्या रमी इससे उसने इन्हें नागपास से बाँध रखा है। अब हमें क्या आज्ञा होती है? इतनी बातके सुनते ही राजा उग्रसेन ने कहा कि तुम हमारी सब सेना ले जाओ और जैसे बने तैसे अनिरुद्धजी को छुड़ा लावो। ऐसा वचन सुनते ही सब यादव तो राजा उग्रसेन का कटक ले बलरामजी के साथ हुए और श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न जी गरुड़ के कन्धे पर चढ़ सबसे पहले शोणितपुर को गए। श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज! जिस काल बलरामजी राजा उग्रसेन की सब सेना ले द्वारकापुरी से धौंसा दे शोणितपुर को चले उस समय की शोभा कुछ वर्णी नहीं जाती।

उड़ी रेणु आकाश लों छाई। छिपो भानु भई निशि भाई॥
चकई चकवा भयो वियोग। सुन्दरि करें कन्त सों भोग॥
फूले कुमुद कमल कुम्हिलाने। निशिचर फिरहिं निशा जियजाने॥

शुकदेवजी बोले कि महाराज! जिस समय बलरामजी बारह अक्षौहिणी सेना ले अति धूमधाम से उसके गढ़, गढ़ी कोट तोड़ते और देश उजाड़ते शोणितपुर में पहुँचे और श्रीकृष्णचन्द्र व प्रद्युम्नजी आय मिले, तिसी समय किसी ने अति भय खाय, घबराय हाथ जोड़ सिर नाय, बाणासुर से कहा कि महाराज! कृष्ण बलराम अपनी सेना ले चढ़ आये और उन्होंने हमारे देश के गढ़, गढ़ी कोट ढहाय गिराये और नगर को चारों ओर से आय घेरा। अब क्या आज्ञा होती है? इतनी बातके सुनते ही बाणासुर महाक्रोध कर अपने बड़े-बड़े राक्षसों को बुलाय बोला। तुम सब दल अपना ले जाय नगर के बाहर जाय श्रीकृष्ण बलराम के सन्मुख खड़े हो। पीछे से मैं भी आता हूँ। यह आज्ञा पाते ही वह असुर बात की बात में बारह अक्षौहिणी सेना ले श्रीकृष्ण बलराम जी के सन्मुख लड़ने को अस्त्र शस्त्र लिये आ खड़े हुए। उनके पीछे श्रीमहादेव जी का भजन सुमिरण कर बाणासुर आ उपस्थित हुआ। शुकदेव मुनिजी बोले कि महाराज! ध्यान करते ही शिवजी का आसन डोला और ध्यान धर जाना कि मेरे भक्त पर भीर पड़ रही है। इस समय चलकर उसकी चिन्ता मेटनी चाहियें।

यह मन ही मन विचार कर, पार्वती को अर्द्धाङ्ग धर, जटा जूट बाँध, भस्म चढ़ाय, बहुत सी भाँग, आक, धतूरा, खाय, श्वेत नागों का जनेऊ पहन गज-चर्म ओढ़, मुण्डमाल, सर्प, पहन, त्रिशूल, डमरू पिनाक खप्पर, ले नन्दी पर बैठ भूत, प्रेत, पिशाचनी, डाकिनी, शाकिनी आदि सेना ले चले। भोलेनाथ की उस समय की शोभा कुछ वर्णी नहीं जाती कि कान में गज मणियों की मुद्रा, ललाट में चन्द्रमा, सिर पर गंगा धरे, लाल लोचन करे, महाराज अति भयंकर वेष की मूर्ति बनाये इस रीति से बजाते गाते सेना को नचाते जाते थे कि वह रूप देखते ही बनि आवे, कहने में न आवे। निदान, कितनी बेर में शिवजी अपनी सेना ले वहाँ पहुँचे कि जहाँ असुर दल लिये बाणासुर खड़ा था। हर को देखते ही बाणासुर हर्ष से बोला कि कृपासिन्धु आप बिन कौन इस समय सुधि लेता।

तेज तुम्हारौ इनको दहै। यादव कुल अव कैसे रहै।।

यों सुनाय फिर कहने लगा कि महाराज! इस समय धर्म युद्ध करो और एक-एक के सन्मुख हो लड़ो। महाराज! इतनी बात जो बाणासुर ने मुख से निकाली तो इधर असुर दल लड़ने को खड़ा हुआ और उधर यदुवंशी आ उपस्थित हुए। दोनों ओर जुझाऊ बाजे बजने लगे। शूर वीर योधा अस्त्र-शस्त्र सजाने और अधीर नपुंसक कायर खेत छोड़-छोड़ जी को ले के भागने लगे। उस काल महाकाल स्वरूप शिवजी श्रीकृष्णचन्द्र के सन्मुख बाणासुर, बलराम जी सों ही हुआ। स्कन्ध प्रद्युम्न जी से आय भिड़ा और इस तरह से एक से एक जुट गया व दोनों ओर से शस्त्र चलने लगे। धनुष पिनाक महादेवजी के हाथ इधर सारङ्ग धनुष लिये यदुनाथ। शिवजी ने ब्रह्म बाण चलाया श्रीकृष्णजी ने ब्रह्मअस्त्र से काट गिराया। फिर, रुद्र ने चलाई महाबयार सो हरि ने तेज से दीनी टार। पुनि महादेव जी ने अग्नि प्रगटाई, वह मुरारी ने मेह बरषाय बुझाई, और एक महाज्वाला उपजाई सो शिव दल में धाई, उसने डाढ़ी मूँछ जलाय दीने। जब असुर दल जलने लगा और बड़ा हाहाकार हुआ तब भोलानाथ ने जले अधजले राक्षसों और भूतों को जल वर्षा के ठण्डा किया और खुद अति क्रोध कर नारायण बाण चलाने को लिया, पुनि मन ही मन कुछ समझ नहीं चलाय रख दिया। फिर तो श्रीकृष्ण आलस्यवाण चलाय सबको अचेत करने लगे। असुर दल काटने ऐसे कि किसान खेती काटे। यह हाल देख जो महादेवजी ने अपने मन में सोच कर कहा कि प्रलय बिना किये नहीं बनता त्यों ही स्कन्द मोर पर चढ़ आया और अन्तरिक्ष मार्ग हो उसने श्रीकृष्ण जी की सेना पर बाण चलाया।

तव हरि सों प्रद्युम्न उच्चारै। मोर चढचौ ऊपरतें लरै।।
आज्ञा देहु युद्ध अति करै। मारौ अवहि भूमि पर गिरै।।

इतनी बात के सुनते ही प्रभु ने आज्ञा दी। प्रद्युम्न जी ने एक बाण मारा सो जा मोर के लगा। तब स्कन्द नीचे गिरा। स्कन्द के गिरते ही बाणासुर महा कोप कर पाँच सौ धनुष चढ़ाय एक-एक धनुष पर दो दो बाण धर लगा मेह सा बरसाने और श्रीकृष्णचन्द्र भी बीच ही से लगे काटने। उस काल महाराज इधर-उधर के मारू ढोल ढप बजते थे। कड़खेत धमार सी गाते थे। घावों से लोहू की धार पिचकारियाँ सी चलती थीं। जिधर तिधर लाल-लाल लोहू गुलाल सा दृष्टि आता था। बीच-बीच भूत प्रेत पिशाच जो भाँति-

भाँति-भाँति के वेश भयावने बनाये फिरते थे सो भगत सी खेल रहे थे और खून की नदी बह निकली थी। लड़ाई क्या दोनों ओर होली सी हो रही थी। इससे लड़ते-लड़ते कितनी एक बेर पीछे श्रीकृष्णचन्द्र जी ने एक बाण ऐसा मारा कि उसके रथ का सारथी उड़ गया और घोड़े भड़के। निदान रथवान के मरते ही बाणासुर भी रण छोड़ भागा। श्रीकृष्णचन्द्र जी ने उसका पीछा किया। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले महाराज! बाणासुर के भागने का समाचार पाय उसकी माँ जिसका नाम कोटरा था, सो उसी समय भयानक वेष कर छुटे केश, नंगी, भुजंगी, आ श्रीकृष्णजी के सन्मुख खड़ी हुई और लगी पुकारने।

देखत ही प्रभु मूँदे नैन। पीठ दई ताके सुन बैन।।
तब लों बाणासुर भज गयौ। फिर अपनो दल जोरत भयौ।।

महाराज जब तक बाणासुर एक अक्षौहिणी दल साज वहाँ आया तबतक कोटरा श्रीकृष्णजी के आगे से न हटी। पुत्र व सेना देख, अपने घर गई। आगे बाणासुर ने आय घोर संग्राम किया। पर प्रभु के सन्मुख न डटा, फिर भाग महादेव जी के पास गया। बाणासुर को भयातुर देख शिवजी ने अति क्रोध कर महा विषमज्वर को बुलाय श्रीकृष्ण जी की सेना पर चलाया। वह महाबली बड़ा तेजस्वी जिसका तेज सूर्य के समान दो मुण्ड एक पग दो कर वाला त्रिलोचन, भयानक वेष, श्रीहरि के कटक को आ घेरा। उस तेज से यदुवंशी जलने लगे और थर-थर काँपने लगे। निदान, अति दुख पाय, घबराय, यादवों ने आय श्रीहरि से कहा महाराज! शिवजी के ज्वर ने आय सारे कटक को जला मारा अब इसके दाँव से बचाइये, नहीं तो एक भी यादव जीता न बचेगा। महाराज! इतनी बात सुन और सबको कातर देख हरि ने शीत ज्वर चलाया। वह महादेव के ज्वर पर धाया। इसे देखते ही वह डर कर पलाया और चल के सदाशिव के पास आया।

तब ज्वर महादेव सों कहै। राखहु शरण कृष्ण ज्वर दहै।।

यह वचन सुन महादेव जी बोले कि कृष्णचन्द्र जी के ज्वर को बिन श्रीहरि ऐसा त्रिभुवन में कोई नहीं जो हरै। इससे उत्तम यही है कि तू भक्त हितकारी श्री मुरारी के पास जा। शिव वचन सुन सोच विचार, विषम ज्वर श्रीहरि आनन्दकन्दजी के सन्मुख हाथ जोड़ विनती कर बोला हे कृपासिन्धु, पतितपावन दीनदयाल! मेरा अपराध क्षमा कीजो अपने ज्वर से बचाय लीजो।

प्रभु तुम हो ब्रह्मादिक ईश। तुम्हरी शक्ति अगम जगदीश।।
तुम ही रचकर सृष्टि सम्हारी। सबमाया जग कृष्ण तुम्हारी।।

इतनी स्तुति सुनते ही हरि दयालु हो बोले तू मेरी शरण आया, इससे बचा। नहीं तो जीता न बचता। मैंने तेरा अब का अपराध माफ किया, पर फिर मेरे भक्त और दासों को मत ब्यापियो। तुझे मेरी ही आन है। ज्वर बोला कृपासिन्धु जो इस कथा को सुनेगा, उसे शीत ज्वर, ऐकतरा और तिजारी कभी न ब्यापेगा। पुनि श्रीहरि बोले कि तू अब महादेव के पास जा, यहाँ मत रह। नहीं तो मेरा ज्वर तुझे दुख देगा। आज्ञा पाते ही बिदा हो, दण्डवत कर विषम ज्वर सीधा महादेव के पास गया और ज्वर की सब बाधा मिट गई। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज!

यह संवाद सुने जो कोय। ज्वर को डर ताको नहिं होय।।

आगे बाणासुर अति कोप कर धनुष बाण ले प्रभु के सन्मुख आ ललकार के बोला——

तुमसे युद्ध कियौ मैं भारी। तौ हू साध न पुजी हमारी।।

जब यह कह लगा सब हाथों से बाण चलाने, तब भक्त हितकारी श्रीहरि ने सुदर्शन चक्र से उसके चार हाथ छोड़ सब काट डाले ऐसे कि जैसे कोई बात के कहते पेड़ के गुद्दे को छाँट डाले। हाथों के कटते ही बाणासुर शिथिल हो गिरा घावों से खून की नदी बह निकली जिसमें भुजाएँ मगर मच्छ सी दीखती थीं। कटे हुए हाथियों के मस्तक, घड़ियाल से डूबते उछलते जाते थे। बीच-बीच में रथ बड़े नगाड़े से बहे आते थे और इधर रण भूमि में श्वान, स्यार गीध आदि पक्षी लोथ को खेंच-खेंच आपस में लड़-लड़ झगड़-झगड़ फाड़-फाड़ खाते थे। कौवे शीशों से आँखें ले उड़ जाते थे। श्रीशुकदेवजी बोले महाराज ! रणभूमि की यह गति देख बाणासुर अति उदास हो पछिताने लगा। निदान निर्बल हो सदाशिव जी के निकट गया।

कहत शिष्य मन माँहि विचार। अब हरि की कीजे मनुहार।।

इतना कह श्रीमहादेवजी बाणासुर को साथ ले वेदपाठ करते वहाँ आये जहाँ रण भूमि में श्रीकृष्णचन्द्र खड़े थे। तहाँ बाणासुर को पावों पर डाल शिव जी हाथ जोड़ बोले कि हे शरणागतवत्सल ! अब यह बाणासुर आपकी शरण है। इस पर कृपा दृष्टि कीजै और इसका अपराध मन में न लीजै। तुम बारम्बार अवतार लेते हो, भूमि का भार उतारने को और दुष्ट हनन और संसार के तारने को। तुम तो प्रभु अलख, अभेद, अनन्त भक्तों के हेतु ही आय प्रगटे हो भगवन्त, नहीं तो सदा रहते हो विराट स्वरूप तिसका यह है रूप स्वर्ग सिर, नाभि आकाश, पृथ्वी पाँव, समुद्र पेट, पर्वत नख, बादल केश, रोम वृक्ष, लोचन शशि और भानु ब्रह्मा मन, रुद्र अहंकार, पवन श्वास, पलक लगना रात दिन, गर्जन शब्द।

ऐसौ रूप सदा अनुसरौ। काहू पै नहिं जान परौ।।

और यह संसार दुख का समुद्र है। इसमें चिन्ता और मोहरूपी जल भरौ है। प्रभु नाम नाव के सहारे बिन कोई इस महाकठिन समुद्र के पार नहीं जा सकता और यों तो बहुतेरे डूबते उछलते हैं। जो नर देह पाकर तुम्हारा सुमिरण और जप न करेगा सो भूलेगा धर्म और बढ़ायेगा पाप। जिसने संसार में आय तुम्हारा नाम न लिया तिसने अमृत छोड़ विष पिया :

जिनके हृदय वसौ तुम आय। भक्ति मुक्ति तिहि मिल गुण गाय।।

इतना कह पुनि महादेवजी बोले कृपासिन्धु ! दीनबन्धु ! तुम्हारी महिमा अपार है। किसे इतनी सामर्थ्य है जो उसे बखाने और तुम्हारे चरित्रों को जाने। अब मुझ पर कृपा करके इस बाणासुर का अपराध क्षमा कीजै और इसे अपनी भक्ति दीजे। यह भी तुम्हारी भक्ति का अधिकारी है, क्योंकि भक्त प्रह्लाद का वंश अंश है। श्रीहरिजी बोले कि शिवजी हम तुम में कुछ भेद नहीं और जो भेद समझेगा वह महानरक में पड़ेगा और कभी न पावेगा पार। जिसने आपको ध्याया उसने अन्त समय मुझे पाया। इसने निष्कपट आपका नाम लिया तिससे मैंने इसे चतुर्भुज रूप दिया। जिसे आपने बर दिया और दोगे तिसका निर्वाह मैंने किया और करूँगा। महाराज इतना वचन प्रभु के मुख से निकलते ही शिवजी दण्डवत् कर

बिदा हो अपनी सेना ले कैलाश को गये। श्रीकृष्णचन्द्र जी वहाँ ही खड़े रहे। तब बाणासुर हाथ जोड़ सिर नवाय बिनती कर बोला कि दीनानाथ! जैसे कि आपने कृपा कर मुझे तारा तैसे अब चलकर दास का घर पवित्र कीजै। अनिरुद्धजी और ऊषा को अपने साथ लीजै। इस बात को सुनते ही श्रीबिहारी भक्त हितकारी प्रद्युम्न जी को साथ ले बाणासुर के धाम पधारे। महाराज उस काल बाणासुर अति प्रसन्न हो प्रभु को बड़ी भाव-भक्ति से पाटम्बर पाँवड़े डालता लिवा ले गया, आगे——

चरण धोय चरणोदक लियो। कर आचमन माथे पर दियो॥

पुनि कहने लगा कि जो चरणोदक सबको दुर्लभ है सो मैंने हरि की कृपा से पाया और जन्म-जन्म का पाप गँवाया। यह चरणोदक त्रिभुवन को पवित्र करता है। इसी का नाम गंगा है। इसे ब्रह्मा ने कमण्डल में धरा। शिवजी ने शीश पर धारा। पुनि सुर मुनि ऋषि ने माना और भागीरथ जी देवताओं की तपस्या कर संसार में लाये। तब से इसका नाम भागीरथी हुआ। जो इसमें नहाया उसने जन्म-जन्म का पाप गँवाया। जिसने गंगा जल पिया, उसने निस्संदेह परमपद लिया। जिसने भागीरथ जी का दर्शन किया उसने सारे संसार को जीत लिया, महाराज! इतना कह बाणासुर अनिरुद्ध जी और ऊषा को ले आया और प्रभु के सन्मुख हाथ जोड़ कर बोला।

क्षमिये दोष भावई भई। वह मैं ऊषा दासी दई॥

यों कह वेद की रीति से बाणासुर ने कन्यादान किया और तिसके यौतुक में बहुत कुछ दिया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज! ब्याह के होते ही श्रीहरि बाणासुर को आशा भरोसा दे, राजगद्दी पर बैठाय, पोते बहू को साथ ले, बिदा हो, जीत का धौंसा बजाय, सब यादवों समेत आये। द्वारिकावासी नगर के बाहर आय प्रभु को लिवा लाये। उस काल पुरवासी मंगल गीत गाय बजाय मङ्गलाचार करते थे और राजमहल में रुक्मिणी आदि सब सुन्दरी बजाय गाय रीति भाँति करतीं थी। और देवता अपने-अपने विमानों पर बैठ ऊपर से फूल बरसाय जय-जयकार करते थे, और सारे नगर में आनन्द हो रहा था कि उसी समय बलराम और श्रीहरि सब यादवों को बिदा दे अनिरुद्ध ऊषा को साथ ले राज महल में जाय बिराजे।

आनी ऊषा गेह मझारी। हरषहिं देख कृष्ण की नारी॥
देहिं अशीष सासु उर लावें। निरख हरषि भूषण पहरावें॥

इति श्रीलल्लूलाल कृत प्रेमसागर का हरि-बाणासुर संग्राम नामक चौसठवाँ अध्याय॥६४॥

अध्याय—६५

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज! इक्ष्वाकुवंशी राजा नृग बड़ा दानी, धर्मात्मा और साहसी था। उसने अनगिनत गौदान किये। चाहै गंगा की बालू के कण, भादों के मेह की बूँदें और आकाश के तारे गिन जायँ पर राजा नृग की दान की गायें गिनी न जायँ।

सो ऐसा ज्ञानी, महादानी, राजा जो थोड़े अधम से गिरगिट हो अन्धे कुए में रहा, उसे श्रीकृष्ण जी ने मोक्ष दी। इतनी कथा सुन श्रीशुकदेव जी से राजा परीक्षित ने पूछा महाराज !

ऐसा धर्मात्मा राजा किस पाप से गिरगिट हो अन्धे कुए में रहा और श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कैसे उसे तारा ? यह कथा तुम मुझे समझाकर कहो जो मेरे मन का संदेह जाय। श्रीशुकदेव जी बोले महाराज ! आप चित्त दे मन लगाय सुनिये। मैं ज्यों की त्यों सब कथा सुनाता हूँ कि राजा नृग तो नित प्रति गौदान किया ही करते थे। पर एक रोज प्रातः ही नहाय सन्ध्या पूजा करके सहस धौली, धूमरी, काली, पीली, भूरी, कबरी गौ मँगाय रूपे के खुर, सौने के सींग, ताँबे की पीठ समेत पीताम्बर उढ़ाय संकल्पी और उनके ऊपर बहुत-सा अन्न धन ब्राह्मणों को दिया। वे ले अपने घर गये। फिर राजा उसी तरह गौदान करने लगा तो एक गाय पहले दिन की संकल्पी अनजान में आय मिली। सो भी राजा ने उन गायों के साथ दान कर दी। ब्राह्मण ले अपने घर को चला। आगे दूसरे ब्राह्मण ने अपनी गौ पहचान बाट में रोकी और कहा यह गाय मेरी है। मुझे कल राजा के यहाँ से मिली थी भाई तू इसे क्यों लिए जाता है। वह ब्राह्मण बोला कि इसे तो मैं अभी राजा के यहाँ से लेकर चला आता हूँ। तेरी कहाँ से हुई। महाराज ! वे दोनों ब्राह्मण मेरी मेरी कहकर झगड़ने लगे। अन्त में झगड़ते-झगड़ते वे दोनों राजा के पास गये। राजा ने दोनों की बात सुन हाथ जोड़ अति बिनती हो कहा।

कऊ लाख रुपैया तुम लेव । गैया इक काहू को देव ।।

इतनी बात के सुनते ही झगड़ालू ब्राह्मण भारी क्रोधकर बोले कि महाराज ! गाय हमने जिसने स्वस्ति बोल के ली सो करोड़ रुपये पाने से भी हम न देंगे। यह तो हमारे प्राण के साथ है। महाराज ! पुनि राजा ने उन ब्राह्मणों के पावों पड़ अनेक तरह फुसलाया, समझाया पर उन तामसी ब्राह्मणों ने राजा का कहना न माना, निदान महा ेध कर इतनी कह दोनों ब्राह्मण गाय छोड़ चले गये कि महाराज ! गाय आपने संकल्प कर हमें दी और

हमने स्वस्ति बोल हाथ पसार ली । वह गाय रुपये लेकर नहीं दी जाती । अच्छा तौ तुम्हारे यहाँ रही तो, कुछ चिन्ता नहीं, महाराज ! ब्राह्मण के जाते पहले तो राजा नृग अति उदास हो मन ही मन में कहने लगा कि यह अधर्म मुझ से अनजाने में हुआ है, सो कैसे छूटेगा । पीछे अति दान पुण्य करने लगा । कितने एक दिन बीते राजा नृग काल वश हो मर गया । उसे यम के गण धर्मराज के पास ले गये । धर्मराज राजा को देखते ही सिंहासन से उठ खड़ा हुआ । पुनि भाव भक्ति कर आसन पर बैठाय अति हित कर बोला महाराज ! तुम्हारा पुण्य है बहुत और पाप है थोड़ा कहो पहले क्या भुगतोगे ?

सुन नृग कहत जोरि कर हाथ। मेरे धर्म टरें जनि नाथ ।।
पहले मैं भुगतोंगौ पाप । तन धरि के सहिहौं संताप ।।

इतनी बात के सुनते ही धर्मराज ने राजा नृग से कहा कि महाराज ! तुमने अनजाने में जो दान दी हुई गाय फिर दान दी, उसी पाप से आपको गिरगिट हो बन के बीच, गोमती तीर अन्धे कुएँ में रहना होगा । जब द्वापर के अन्त में श्रीकृष्णचन्द्र अवतार लेंगे तब तुम्हें वह मोक्ष देंगे । महाराज ! इतना कह धर्मराज चुप हो रहा और राजा नृग उसी समय गिरगिट हो अन्धे कुएँ में जा गिरा और जीव भक्षण कर वहाँ रहने लगा । आगे युग बीते । द्वापर के अन्त में श्रीकृष्ण ने अवतार लिया और ब्रज लीला कर द्वारिका को गये और उनके बेटे पोते भये तब एक दिन कितने एक श्रीकृष्णजी के बेटे पोते मिल अहेर को गये और वन में अहेर करते-करते प्यासे भये तब वे वन में जल ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसी अन्धे कुए पर गए जहाँ राजा नृग गिरगिट का जन्म ले रहता था और कुए में झाँकते ही एक ने पुकार के सबसे कहा अरे भाई इस कुएँ में कितना बड़ा एक गिरगिट है । इतनी बात के सुनते सब दौड़ आए और कुएँ के पनघट पर खड़े हो लगे फेंट पगड़ी मिलाइ लटकाइ लटकाइ उसे काढ़ने । आपस में यों कहने लगे कि भाई इसे बिना कुएँ से निकाले हम यहाँ से न जायँगे । महाराज ! जब वह पगड़ी फेंटी की रस्सी से न निकला तब उन्होंने गाँव से सन सूत मूँज चाम की मोटी भारी बरतें मँगवाई और कुएँ में फाँस गिरगिट को बाँध बल कर खेंचने लगे पर वह वहाँ से मसका भी नहीं । तब किसी ने द्वारिका में जाय श्री हरि से कहा महाराज ! वन में अन्धे कुए के भीतर एक बड़ा भारी मोटा गिरगिट है उसे कुँवर काढ़-काढ़ हार गये पर वह नहीं निकलता । इतनी बात के सुनते ही हरि उठि धाये और चले-चले वहाँ आये जहाँ सब लड़के गिरगिट निकाल रहे थे । प्रभु को देखते ही सब लड़के बोले कि पिताजी देखो यह कितना बड़ा गिरगिट है । हम बड़ी देर से निकाल रहे हैं पर यह निकलता नहीं । महाराज ! इस वचन को सुन श्रीकृष्णजी ने कुए में उतर उसके शरीर से चरण लगाया तो वह देह छोड़ अति सुन्दर पुरुष हुआ ।

भूपति रूप रह्यौ गहि पाँय । हाथ जोड़ विनवै शिर नाय ।।

कृपासिन्धु ! आपने बड़ी कृपा की जो इस महाविपत्ति में आय मेरी सुध ली ! श्रीशुकदेवजी बोले कि राजन् ! जब वह मनुष्य रूप हो प्रभु से इस भाँति की बातें करने लगा तब यादवों के बालक और हरि के बेटे पोते अचरज कर श्री कृष्णचन्द्र से पूछने लगे कि महाराज ! यह कौन है और किस पाप से गिरगिट हो यहाँ रह रहा था सो कृपा कर कहौ तो हमारे मन का सन्देह जाय । उस काल प्रभु आय कुछ न कह राजा से यों बोले—

अपनौ भेद कहौ समुझाय। जैसे सवै सुनें मन लाय ।।
को हो आप कहाँ तें आये। कौन पाप ये काया पाये ।।
सुनि नृप कहै जोरि दोउ हाथ। तुम सव जानत हौ यदुनाथ ।।

उस पर आय पूछते हो तो कहता हूँ मेरा नाम है राजा नृग, मैंने अनगिनत गौ ब्राह्मणों को आपके निमित्त दीं। एक दिन की बात है कि मैंने कितनी एक गाय संकल्प कर ब्राह्मणों को दीं, दूसरे दिन उन गायों में से एक गाय फिर आई सो मैंने और गायों के साथ अनजाने दूसरे द्विज को दान कर दी। जो वह लेकर निकला तो पहले ब्राह्मण ने गौ पहचान उससे कहा कि यह गाय मेरी है, मुझे कल राजा के यहाँ से मिली है तू क्यों लिये जाता है। वह बोला मैं अभी राजा के यहाँ से लिये चला आता हूँ, तेरी कैसे हुई। वे दोनों विप्र इसी बात पर झगड़ते-झगड़ते मेरे पास आये। मैंने उन्हें समझाया और कहा कि एक गाय के पलटे मुझसे लाख गौ लो और तुम में से कोई यह हट छोड़ दो। महाराज! मेरा कहा उन दोनों ने न माना। निदान, गौ छोड़ क्रोध कर दोनों चले गये। मैं पछिताय-पछिताय मन मार बैठ रहा। अन्त समय यम के दूत मुझे धर्मराज के पास ले गए। धर्मराज ने मुझसे पूछा कि राजा तेरा धर्म है बहुत, पाप है थोड़ा। कहो पहले क्या भुगतौगे? मैंने कहा पाप। इस बात के सुनते ही धर्मराज बोले कि राजा तैंने ब्राह्मण को दीनी हुई गाय फिर दान की, इस अधर्म से तू गिरगिट हो पृथ्वी पर आय, गौमती तीर वन के बीच अन्धे कूप में रह। द्वापर के अन्त में श्रीकृष्ण अवतार ले तेरे पास आवेंगे, तब तेरा उद्धार होगा। महाराज तभी से मैं गिरगिट रूप इस अन्ध कूप में पड़ा आपके चरण कमलों का ध्यान करता था। अब आय आपने मुझे महाकष्ट से उबारा और भवसागर से पार उतारा। इतना कह राजा नृग तो विदा हो विमान में बैठ बैकुण्ठ को गया और श्रीकृष्णचन्द्र जी सब बाल गोपालों को समझाय कहने लगे कि––

विप्र कोप जन कोऊ करौ। मत कोऊ अंश विप्र कौ हरौ ।।
मन संकल्प कियो जिनराखों। सच्चे वचन विप्र सों भाखों ।।
विप्रन दियो फेर जो लेही। ताकों दण्ड इतौ यम देही ।।
विप्रन के सेवक ह्वै रहिवों। सव अपराध विप्र के सहिवों ।।
विप्रहि माने सों मोहि माने। विप्रनि अरु मोहि भिन्न न जाने ।।

जो मुझमें और ब्राह्मण में भेद जानेगा सो नरक में पड़ेगा और जो विप्र को मानेगा वह मुझे पावैगा और निःसन्देह परमधाम को जावेगा। महाराज! यह बात कह श्रीकृष्णजी सबको वहाँ से ले द्वारिकापुरी पधारे।

इति श्री लल्लूलालकृत प्रेमसागर का राजानृग उद्धार नामका पैसठवाँ अध्याय।

अध्याय–६६

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज एक समय श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम मणिमय मन्दिर में बैठे थे कि बलदेवजी ने प्रभु से कहा कि भाई जब वृन्दाबन में कंस ने बुलावा भेजा था और हम मथुरा को चले थे सब गोपियों और नन्द यशोदा से हमने तुमने यह वचन दिया था

कि हम शीघ्र ही आय मिलेंगे, सो वहाँ न जाय द्वारिका में आय बसे । हमारी सुरत करते होंगे । जो आप आज्ञा करें तो हम जन्म भूमि देख आवें और उनका समाधान कर आवें । प्रभु बोले कि अच्छा । इतनी बात के सुनते ही बलरामजी सबसे बिदा हो हल मूसल ले, रथ पर चढ़ सिधारे । महाराज ! बलराम जी जिस पुर नगर गाँव में जाते थे, वहाँ के राजा आगे बढ़ अति आदर कर इन्हें ले जाते थे और ये एक-एक का समाधान करते चले जाते थे । कितने एक रोज में चलते-चलते बलरामजी अवन्तिकापुरी में पहुँचे । आगे गुरु से विदा हो बलदेव जी चले चले गोकुल में पधारे तो देखते क्या हैं कि वन में चारों ओर गायें मुँह बाये बिन तृण खाये श्रीकृष्णचन्द्रजी की सुरत किए बाँसुरी की तान में मन दिये रँभाती हाँकती फिरती हैं । तिनके पीछे-पीछे ग्वाल बाल भी यश गाते प्रेम रङ्ग राते चले जाते हैं और जिधर तिधर नगर के निवासी लोग प्रभु के चरित्र और लीला बखान रहे हैं । महाराज ! जन्म भूमि में जाय ब्रजवासियों और गायों की यह अवस्था देख बलरामजी करुणाकर नयनों में नीर भर लाये । आगे-आगे रथ की ध्वजा पताका देख श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजी का आना जान सब ग्वाल बाल दौड़ आये । बलराम प्रभु के आते ही लगे एक-एक के गले लगने । बड़े प्रेम से कुशल क्षेम पूछने । किसी ने जा नन्द यशोदा से कहा कि बलराम जी आये हैं । यह समाचार पाते ही नन्द यशोदा बड़े-बड़े गोप और ग्वाल उठ धाये और इन्हें दूर से आते देख बलरामजी दौड़कर नन्दराय के पावों पर जाय गिरे । तब नन्दजी ने अति आनन्द कर नयनों में जल भर कर बड़े प्यार से बलरामजी को कण्ठ से लगाया और वियोग का दुःख गमाया पुनि प्रभु ने—

विद्या गुरु को कियौ प्रणाम । दिन दस तहाँ रहे बलराम ।।
गहे चरण यशुमति के जाय । अति हितकर उर लिये लगाय ।।
भुज गहि भेंट कंठ गहि हरी । लोचन ते जल सरिता वही ।।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा से कहा कि महाराज ! ऐसे मिल-जुल नन्दरायजी बलरामजी को घर में ले जाय कुशल क्षेम पूछने लगे कि कहो उग्रसेन वसुदेव आदि वंशज और श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द से हैं । हमारी भी सुरति करते हैं ? बलरामजी बोले आपकी कृपा से सब आनन्द मङ्गल से हैं और सदा सर्वदा आपका गुण गाते रहते हैं । इतना वचन सुन नन्दराय चुप रहे । पुनि यशोदा रानी श्रीकृष्णजी की याद कर लोचन में नीर भर अति ब्याकुल हो बोली कि बलदेव हमारे नयनों के तारे श्रीकृष्ण जी अच्छे हैं । बलरामजी ने कहा बहुत अच्छे हैं । पुनि नन्द और नन्दरानी कहने लगे बलदेव ! जबसे यहाँ से सिधारे तब से हमारी आँखों के सामने अन्धेरा हो रहा है । हम आठ पहर उन्हीं का ध्यान किये रहती हैं और वे हमारी सुरति भुलाय द्वारिका में जाय रहे और देखो बहन देवकी रौहिणी हमारी प्रीति छोड़ कर वहाँ बैठी है ।

मथुरा से गोकुल ढिग जान्यो । वसे दूर तव ही मन मान्यो ।।
भेंटन मिलन न आवत हरी । फिर न मिले ऐसी उन करी ।।

महाराज ! इतना कह जब यशोदा रानी अति ब्याकुल हो रोने लगी तब बलराम ने समझाय बहुत आशा भरोसा दे उसको धीर बँधाय पुनि आप भोजन कर पान खाय घर से बाहर निकले तो देखते हैं कि सब ब्रजयुवतियाँ तन क्षीन मन मलीन, छूटे केश, मैले भेष, जी

हारे घर बार की सुरति बिसारे, प्रम रङ्ग राती, विरह में ब्याकुल जिधर तिधर नजर चली जाती हैं। महाराज! बलरामजी को देखते ही अति प्रसन्न हो सब दौड़ी आईं और दण्डवत कर हाथ जोड़ चारों ओर खड़ी हो लगीं पूछने और कहने कि कहो बलराम सुखधाम अब कहाँ बिराजते हैं हमारे प्राण प्यारे, सुन्दर श्याम! कभी हमारी याद करते हैं? बिहारी ने राजपाट पाय पिछली रीति सब बिसारी। जब से यहाँ से हरि गये हैं तब से एक बार उद्धव के हाथ योग का सन्देशा कह पठाया। फिर किसी की सुध न ली। अब जाय समुद्र माँहि बसे सो काहे को किसी की सुध लेंगे। इतनी बात के सुनते ही एक गोपी बोली कि सखी हरि की प्रीति का कौन परेखा, उनका तो देखा सब ने·ही लेखा–:–

ये काहु के नाहिन ईठ। मात पिता को दीनी पीठ॥
राधा विन रहते नहिं घरी। सोऊ वह वरसाने परी॥

हमने अपने घर बार छोड़, सुत पति, त्याग, हरि से नेह लगाय, क्या फल पायः। निदान, स्नेही नाव पर चढ़ाय विरह समुद्र माँझ छोड़ गये। अब सुनते हैं कि द्वारिका में जाय प्रभु ने बहुत ब्याह किये, और सोलह सहस्र एक सौ राजकन्या जो भौमासुर ने घेर रक्खी थीं, तिन्हें भी कृष्ण ने लाय ब्याहीं। अब उनसे भी बेटे पोते नाती भये। उन्हें छोड़ यहाँ क्यों आवेंगे। यह सुन एक गोपी बोली कि सखी तुम हरि की बात का कुछ पछितावा ही मत करो, क्यों कि उनके सर्वगुण उद्धवजी नें आय ही बताये थे। इतनी कह पुनि बोली कि अली मेरी बात मानों तो अब––

हलधरजी के परसो पाँय। रहि हैं हम इन के गुण गाय॥
ये हैं गौर श्याम नहिं गात। करि हैं नाहिं कपट की वात॥
सुनि संकर्षण उत्तर दियो। तुम्हरे हेतु गमन हम कियो॥
आवन हम तुमसों कहि गये। ताते कृष्ण पठइ सतु दये॥
रहि द्वै मास करैंगे रास। पुजवैंगे तुम्हरी सव आस॥

हे महाराज! ऐसे बलराम जी ने कह सब ब्रज युवतियों को आज्ञा दी कि आज मधु मास की रात्रि है। तुम श्रृंगार कर वन में आओ तुम्हारे साथ रास करेंगे। ऐसे कह, साँझ समय वन को सिधारे, तिन के पीछे सब ब्रज युवतियाँ भी सुथरे वस्त्र आभूषण पहन नख, शिख से श्रृंगार कर बलदेवजी के पास पहुँची।

ठाढ़ी भईं सवै सिर नाय। हलधर छवि नहिं वरणी जाय॥
यों कह पाँय परी सुन्दरी। लीला राम करो रस भरी॥

महाराज! इतनी बात के सुनते ही बलराम ने हूँ किया। हुंकार करते ही रास की सब वस्तु आय उपस्थित हुई। तब तो सब गोपियाँ सोच संकोच तज अनुराग कर वीणा, मृदङ्ग, करताल, उपङ्ग, मुरली आदि सब यन्त्र ले ले लगीं बजाने गाने और थेइ थेइ कर नाच नाच बलदेव प्रभु को रिझाने। उनका बजाना नाचना गुन देख मग्न हो वारुणी पान कर बलदेव जी सबके साथ मिल गाने नाचने और अनेक अनेक भाँति के कुतूहल कर सुख देने लेने लगे। उस काल देवता गन्धर्व यक्ष किन्नर अपनी-अपनी स्त्रियाँ समेत आय आय विमान पर बैठ प्रभु

गुण गाय, आकाश से फूल बरसाते थे। चन्द्रमा तारा मण्डल समेत रास मण्डल का सुख देख देख किरणों से अमृत बरसाता था। पवन भी थम रहा था। इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेवजी बोले कि महाराज इसी भाँति बलरामजी ने व्रज में रह चैत्र बैसाख दो महीने रात्रि को तो व्रजयुतियों के साथ रास विलास किया और कई दिन हरि कथा सुनाय नन्द यशोदा को सुख दिया। उसी में एक दिन, रात्रि समय विश्राम करते समय बलरामजी ने जो——

नदी तीर करके विश्रामा। बैठे तहाँ कोप कर रामा।।
यमुना तू इतही बहि आव। सहसधार कर मोहि न्हवाव।।
जो न मानिहौं कहौ हमारौ। खण्ड खण्ड जल करौं तिहारौ।।

महाराज! जब बलरामजी की बातें अभिमान कर यमुना ने अनसुनी की, तब तो इन्होंने क्रोध कर उसे हल से खींच लिया और स्नान किया। उसी दिन से वहाँ यमुना अब तक टेढ़ी है। आगे न्हाय श्रम मिटाय बलरामजी सब गोपियों को ले सुख दे, साथ ले चले और नगर में आये। यहाँ——

गोपी कहैं सुनों व्रज नाथ। हमहूँ को ले चलिये साथ।।

यह बात सुन बलरामजी गोपियों को आशा भरोसा दे धीरज बँधाय बिदा कर स्वयं बिदा हो नन्द यशोदा के पास गये। पुनि उन्हें भी समझाय बुझाय धीरज बँधाय कई दिन रह बिदा हो द्वारिका को चले गये।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का बलराम की व्रज-यात्रा नाम का छियासठवाँ अध्याय।।६६।।

अध्याय—६७

श्री शुकदेवजी बोले कि महाराज! काशीपुरी में एक पौण्ड्रक नाम का राजा था। सो महाबली व प्रतापी था। तिसने विष्णु का वेष किया और छल बल कर सब का मन हर लिया। सदा पीत वसन, बैजन्ती माल, मुक्तामाल, मणि माल पहने रहै और शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये दो हाथ काष्ठ के लिये, एक घोड़े पर काष्ठ ही का गरुण धरे उस पर चढ़ा डोलै। वह वासुदेव पौण्ड्रक कहावे और सब से आपको पुजावै। जो राजा उसकी आज्ञा न मानें उसपर चढ़ जाय फिर मार उजाड़ उसे अपने वश में रखे। इतनी कथा कह शुकदेवजी बोले हे राजन्! उसका यह आचरण देख सुन देश-देश नगर-नगर गाँव-गाँव घरमें में लोग चरचा करने लगे कि बासुदेव व्रजभूमि के बीच यदु कुल में प्रगट हुए थे सो द्वारिका-पुरी में बिराजते हैं, अब काशी में ये हुआ है, दोनों में हम किसे सच्चा जानें, और मानें। महाराज! देश-देश में यह चर्चा हो रही थी कि कुछ संधान पाय बासुदेव पौण्ड्रक एक दिन अपनी सभा में आय बोला——

काहे कृष्ण द्वारिका रहे। वाको वासुदेव जग कहे।।
भक्त हेतु हौं भू अवतर्‍यो। मेरो वेष तहाँ तिनधर्‍यो।।

इतनी बात कर एक दूत को बुलाय उसने ऊँच नीच की बातें सब समझाय बुझाय

द्वारिकापुरी में श्रीकृष्णचन्द्रजी के पास भेज दिया कि या तो जो मेरा भेष बनाये फिरते हो छोड़ दो नहीं तौ लड़ने का विचार करौ। आज्ञा पाते ही दूत बिदा हो काशी से चला चला द्वारिकापुरी आ पहुँचा और श्रीकृष्णजी की सभा में जा उपस्थित हुआ। प्रभु ने उससे पूछा कि तू कौनं और कहाँ से आया है? वह बोला मैं बासुदेव पौण्ड्रक का दूत हूँ। काशीपुरी से स्वामी का पठाया कुछ सन्देशा कहने आपके पास आया हूँ, सो कहता हूँ। श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले अच्छा कह! प्रभु के मुख से यह वचन निकलते ही दूत खड़ा हो हाथ जोड़ कहने लगा कि महाराज! वासुदेव पौण्ड्रक ने कहा है कि जगत का कर्ता तो मैं हूँ, तू कौन है जो मेरा वेष बनाय जरासन्ध के डर से भाग द्वारिका में जाय रहा है। कै तो मेरा बाना छोड़ शीघ्र मेरी शरणागत हो, नहीं तो तेरे यदुवंशियों समेत तुझे मार डालूँगा। मेरा यही काम है कि जब जब असुर मेरे भक्तों को आय सताते हैं तब-तब मैं अवतार ले भूमि का भार उतारता हूँ।

ताहि कहौ यम आयौ लैन। भाषत तू जो ऐसे बैन॥
मारें कहा तोय हम नीच। आयो हैं कपटी के बीच॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! बासुदेव पौण्ड्रक का दूत तो इस ढब की बात करता था और श्रीकृष्णचन्द्र रत्न-सिंहासन पर बैठे यादवों की सभा में हँस-हँस कर सुनते थे कि इस बीच कोई यदुवंशी बोल उठा जो तू वशीठ न होता तो बिना मारे न छोड़ते। दूत को मारना उचित नहीं, महाराज! जब यदुवंशी ने यह बात कही, तब श्रीकृष्णजी ने उस दूत को निकट बुलाय समझाय के कहा कि जाय अपने बासुदेव से कह दे कि कृष्ण ने कहा है कि मैं तेरा बाना छोड़ शरण आता हूँ। सावधान हो। इतनी बात के सुनते ही दूत दण्डवत् कर विदा हुआ और श्रीकृष्ण जी भी अपनी सेना ले काशीपुरी को सिधारे। दूत ने जाय पौण्ड्रक से कहा कि महाराज! मैंने द्वारिका में जाय आपका सन्देश सब कृष्ण को सुनाया। उन्होंने सुनकर कहा कि तू अपने स्वामी से जाय कहै कि सावधान रहैं मैं उसका बाना छोड़ शरण लेने आता हूँ। वसीठ यह बात कहता ही था कि किसी ने आय कहा कि महाराज! आप निश्चिन्त क्या बैठे हो श्रीकृष्णजी अपनी सेना ले चढ़ आये। इतनी बातके सुनते ही बासुदेव पौण्ड्रक उसी वेष से अपना सब कटक ले चढ़ आया और चला -चला श्रीकृष्णजी के सन्मुख आया। तिसके साथ और भी काशी के राजा चढ़ दौड़े। दोनों ओर के दल खड़े हुए। जुझाऊ बाजे बजने लगे। शूर-वीर लड़ने और कायर खेत छोड़-छोड़ अपना जीव ले-ले भागने लगे। उस काल युद्ध करता-करता कालवश हो बासुदेव पौण्ड्रक प्रभु के सन्मुख आया। तब किसी ने श्रीकृष्णचन्द्र से पूछा कि महाराज! इस भेष में कैसे मारोगे। प्रभु ने कहा कपटी के मारने का कुछ दोष नहीं। सोई हरि ने सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी, उसने जाते ही जो भुजा काष्ठ की थी सो उखाड़ ली। साथ में गरुड़ भी टूटा और तुरङ्ग भागा, जब बासुदेव पौण्ड्रक नीचे गिरा तब सुदर्शन चक्र ने उसका सिर काट फेंका।

कटत शीश नृप पौण्ड्रक तर्यौ। शीश जाय काशी में पर्यौ॥
जहाँ हतौ राजा रनिवासु। देखत शीश सुन्दरी तासु॥
रोवै यों कह चीखें मार। यह गत कहा भई करतार॥
तुम तो अजर अमर ह्वै गये। कैसे प्राण पलक में दये॥

हे महाराज ! रानियों का रोना सुन, सुदक्षिण नाम उसका बेटा था, सो वहाँ आय बाप का सिर कटा देख अति क्रोध कर कहने लगा कि जिसने मेरे पिता को मारा है उससे बिना पलटा लिये न रहूँगा । इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! बासुदेव पौण्ड्रक को मार श्रीकृष्णचन्द्रजी अपना सब कटक ले द्वारिकापुरी सिधारे और उसका बेटा अपने बाप का बैर लेने को महादेवजी की अति कठिन तपस्या करने लगा । इतने में कितने एक दिन में प्रसन्न हो महादेवजी ने आय कहा कि माँग, वह बोला महाराज ! मुझे यह वर दीजै कि श्रीकृष्ण से अपने पिता का बैर लूँ । शिवजी बोले कि अच्छा जो तू बैर लिया चाहता है तो एक काम कर उल्टे वेद मन्त्रों से यज्ञ कर इससे एक राक्षसी अग्नि से निकलेगी । उससे जो तू कहेगा सो करेगी, इतना वचन शिवजी के मुख से सुन महाराज वह जाय ब्राह्मणों को बुलाय वेदी रच, तिल, जौ, चीनी आदि सब होम का सामान ले हव्य बनाय, लगा उल्टे वेद मन्त्र पढ़-पढ़ होम करने । निदान, यज्ञ करते करते अग्नि कुण्ड से कृत्या नाम राक्षसी निकली । तो श्रीकृष्णजी के पीछे ही पीछे नगर देश गाँव जलाती द्वारिका पहुँची और लगी द्वारिकापुरी को जलाने । नगर को जलता देख सब यदुवंशी भय खाय श्रीकृष्ण के पास जा पुकारे कि महाराज ! इस आग से कैसे बचेंगे, यह तो सारे नगर को जलाती चली आती है । प्रभु बोले कि तुम किसी बात की चिन्ता मत करो । यह कृत्या नाम राक्षसी काशी से आई है । मैं अभी इसका उपाय करता हूँ । इतना कह श्रीकृष्णजी ने सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी कि इसे मार भगाओ । इसी समय जाय काशीपुरी को जलाय आवो, हरि की आज्ञा पाते ही सुदर्शन चक्र ने कृत्या को मार भगाया और बात के कहते ही काशी को जलाय आया ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का पौण्ड्रक वध नामक सड़सठवाँ अध्याय ।।६७।।

अध्याय—६८

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! जैसे बलराम सुखधाम रूप निधान ने द्विविद कपि मारा तैसे ही मैं कथा कहता हूँ तुम चित्त दे सुनो । एक दिन द्विविद जो सुग्रीव का मन्त्री और गयंद कपि का भाई व भौमासुर का सखा था सो कहने लगा कि एक शूल मेरे मन में है सो अब तक खटकता है । यह बात सुन किसी ने पूछा कि महाराज सो क्या, वह बोला कि जिसने मेरे मित्र भौमासुर को मारा तिसे मारूँ तो मेरे मन का दुख जाय । महाराज इतना कह उस समय अति क्रोध कर द्वारिका पुरी को चला । श्रीकृष्णचन्द्र का देश उजाड़ता, लोगोंको दुःख देता, जहाँ-तहाँ ऋषि मुनि देवताओं को दुख देता और उपाधि करता द्वारिकापुरी में जा पहुँचा और अल्प तनुधार श्रीकृष्ण के मन्दिर पर जा बैठा । उसको देख सब सुन्दरी मन्दिर के भीतर किवाड़ दे-दे , जाइ छिपीं । तब तो वह मन ही मन यह विचार कर बलराम जी के समाचार पाय, रेवती गिरि पर गया

पहले हलधर कौ वध करौं । पीछे प्राण कृष्ण के हरौं ।।

जहाँ बलदेवजी स्त्रियों के साथ बिहार करते थे, महाराज छिप कर वह वहाँ क्या देखता है बलरामजी सब स्त्रियों को साथ ले एक सरोवर के बीच अनेक-अनेक भाँति की लीला

कर गाय-गाय न्हाय रहे हैं । यह चित्र देख द्विविद एक पेड़ पर जाय चढ़ा और किलकारियाँ मार-मार घुड़क-घुड़क लगा डाल-डाल पर कूद-कूद फिर चरित्र करने और जहाँ मदिरा का भरा कलश और सब के चीर धरे थे तिन पर लगा हँगने मूतने । बन्दर को सब सुन्दरी देखते ही डर कर पुकारीं कि महाराज यह कपि कहाँ से आया, जो हमें डरपा-डरपा हमारे वस्त्रों पर

हग-मूत रहा है । इतनी बात के सुनते ही बलदेव जी सरोवर से निकले और जो हँस कर डेला चलाया तो वह इनको मतवाला जान महा क्रोध कर किलकारी मार नीचे आया । आते ही उसने मद का घड़ा जो तीर पर धरा था सो लुढ़काय दिया और सारे चीर फाड़ टूक-टूक कर डाले । तब क्रोध कर बलरामजी ने हल मूसल सँभाल और वह भी पर्वत के सम हो प्रभु के सों ही युद्ध करने को आय उपस्थित हुआ । इधर से बलराम हल मूसल चलाते थे और उधर से वह पेड़ पर्वत––

महा युद्ध दोऊ मिल करें । नेंक न दोऊ ठौर से टरें ।।

महाराज ये दोनों बली अनेक प्रकार घात कर निधड़क लड़ते थे पर देखने वालों का मारे भय के प्राण ही निकलता था । निदान, बलदाऊ प्रभु ने सब को दुखित जान द्विविद को मार गिराया । उसके मरते ही सुर नर मुनि सबके जी में आनन्द हुआ और दुःख छूट गया ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज ! त्रेता युग से यह बन्दर ही था तिसे बलदेवजी ने मार उद्धार किया । आगे बलराम सुख धाम सबको साथ ले वहाँ से सुख पूर्वक श्रीद्वारिकापुरी में आये और द्विविद के मारने के समाचार सब यदुवंशियों को कह सुनाये ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का द्विविद उद्धार नामका अड़सठवाँ अध्याय ।।६८।।

अध्याय-६९

श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा अब मैं दुर्योधन की बेटी लक्ष्मणा के विवाह की कथा कहता हूँ कि जैसे साम्ब हस्तिनापुर जाय उसे ब्याह लाये । महाराज राजा दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा जब ब्याहने योग्य हुई तब उसके पिता ने सब देश के नरेशों को पत्र लिख-लिख कर बुलाया और स्वयम्बर किया । स्वयम्बर के समाचार पाय श्रीकृष्णचन्द्र का पुत्र साम्ब जो जाम्बन्ती से उत्पन्न हुआ था, वह भी वहाँ गया । साम्ब क्या देखता है कि देश-देश के नरेश साफ सुथरे वस्त्र, आभूषण, रत्न-जटित भूषन् पहने, अस्त्र-शस्त्र बाँधे, स्वयम्बर के बीच पाँति-पाँति खड़े हैं और उनके पीछे उसी भाँति सब कौरव भी । जहाँ-तहाँ बाहर बाजे बज रहे हैं, भीतर माँगलिक लोग मङ्गलाचार कर रहे हैं । सबके बीच राजकुमारी माता-पिता की प्यारी मन ही मन यों कहती हार लिये आँखों की पुतली सी फिरती है कि मैं किसे बरूँ । महाराज जब यह सुन्दरी शीलवन्ती, रूपवती, माला लिए लाज किये फिरते-फिरते साम्ब के सन्मुख आई तब इन्होंने सोच व संकोच तज, निर्भय हो उसे हाथ पकड़ रथ में बैठाय अपनी बाट ली । सब राजा खड़े देखते रह गये और कर्ण, द्रोण, शल्य, भूरिश्रवा, दुर्योधन आदि सारे कौरव भी उस समय कुछ न बोले । पुनि अति क्रोध कर आपस में कहने लगे कि देखो उसने क्या बुरा काम किया कि जो रस में आय के अनरस किया । कर्ण बोला यदुवंशियों की टेव है कि जहाँ जहाँ शुभ काज में जाते हैं तहाँ उपाधि ही करते हैं ।

इतनी बात सुनते ही सब कौरव महा क्रोध कर अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र ले यों कह चढ़ दौड़े कि देखें यह कैसा बली है, जो हमारे आगे से कन्या ले निकल जायगा और बीच बाट में साम्ब को जा घेरा । आगे दोनों ओर से अस्त्र-शस्त्र चलने लगे । निदान कितनी एक बेर लड़ने से साम्ब का सारथी मारा गया और वह नीचे उतरा तब ये उसे धर पकड़ बाँध के लाये व सभा के बीचों बीच खड़ा कर यों उन्होंने इससे पूछा कि अब तेरा पराक्रम कहाँ गया । यह बात सुन वह लजाय रहा । इतने में नारद जी ने आय राजा दुर्योधन समेत सब कौरवों से कहा कि यह साम्ब नाम का श्रीकृष्णचन्द्र का पुत्र है । तुम इससे कुछ मत करो जो होना था सो हुआ । अभी इसका समाचार पाय दल साज आवेंगे कृष्ण बलराम । जो कहना सुनना हो उनसे कह सुन लीजो । लड़के से कुछ कहना तुम्हें किसी भाँति उचित नहीं । इसने लड़क बुद्धि की तौ की ! इतना वचन कह नारदजी वहाँ से बिदा हो द्वारिकापुरी को गये और राजा उग्रसेन की सभा में जा खड़े भये ।

बैठते ही नारद जी बोले कि महाराज ! कौरवों ने साम्ब को बाँध महा दुख दिया और देते हैं । जो इस समय जाय उसकी शीघ्र सुधि लो तो ठीक नहीं तो साम्ब का बचना कठिन है ।

इस बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने अति कोप कर यदुवंशियों को कहा कि तुम अभी हमारा कटक ले हस्तिनापुर चढ़ जावो और कौरवों को मार साम्ब को छुड़ा ले आवो । राजा की आज्ञा पाते ही ज्यों सब दल चलने को उपस्थित हुआ त्यों ही बलरामजी ने जाय कर राजा उग्रसेन से समझाय के कहा कि महाराज ! आप उनपर सैना न पठाइये । मुझे

आज्ञा दीजै मैं जाय, उन्हें उलाहना दे, साम्ब को छुड़ा लाऊँ। उन्होंने किस लिये साम्ब को पकड़ बाँधा, इस बात का भेद बिन मेरे गये न खुलेगा। इतनी बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने बलरामजी को हस्तिनापुर जाने की आज्ञा दी और बलदेव जी कितने एक बड़े पण्डित ब्राह्मण और नारद मुनि को साथ ले द्वारिका से चले चले हस्तिनापुर में पहुँचे। उस समय दाऊजी ने नगर के बाहर बाड़ी में डेरा कर नारदजी से कहा कि महाराज हम यहाँ उतरे हैं। आप जाय कौरवों से हमारे आने का समाचार कहियो। प्रभु की आज्ञा पाय नारदजी ने नगर में जाय बलरामजी के आने का समाचार सुनाया।

सुनके सावधान सब भये। आगे होय लैन तहँ गये॥
भीषम द्रौण कर्ण मिल चले। लीन्हे वसन पाटम्बर भले॥
दुर्योधन कह यह कर धायौ। मेरौ गुरु संकर्षण आयौ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! सब कौरवों ने उस बाड़ी में जाय बलरामजी से भेंट की और सब की कुशल क्षेम, पूँछ कहा कि महाराज! आपका आना कैसे हुआ? उनके मुख से यह बात निकलते ही बलराम जी बोले कि महाराज! उग्रसेन के पठाये सन्देश ले के तुम्हारे पास आये हैं। कौरव बोले कहो। बलदेवजी ने कहा कि राजाजी ने कहा है कि तुम्हें हम से विरोध करना उचित न था।

तुम हौ वहुत बौ वालक एक। कियौ युद्ध तज ज्ञान विवेक॥
ऐसो गर्व तुम्हें अव भयौ। समझ बूझ वाको दुख दयौ॥

महाराज! इतनी बात के सुनते ही कौरव महा कोप कर बोले कि बलरामजी बस करो। अधिक बड़ाई उग्रसेन की मत करौ। हम से यह सुनी नहीं जाती। चार दिन की बात है कि उग्रसेन को कोई जानता मानता न था। जब से हमारे यहाँ सगाई की तभी से प्रभुता पाई। जो द्वारिकापुरी में बैठा राज्य पाय पिछली, सब बात गँवाय जो मन मानता है सो कहता है। वह दिन भूल गया कि मथुरा में ग्वाल गूजरों के साथ रहता खाता था। जब से हमने साथ खिलाय, सम्बध कर राज दिलवाया तिसका फल हाथों हाथ पाया। जो किसी दूसरे पर गुण करते तो वह जन्म भर हमारा गुण मानता। इतनी कथा कह श्री शुकदेवजी बोले कि महाराज! ऐसे अनेक-अनेक प्रकार की बात कर कर्ण, द्रौण, भीष्म, दुर्योधन, शल्य आदि सब ौरव गर्व कर, उठ-उठ अपने घर गये और बलराम जी उनकी बात सुन-सुन हँस-हँस, वहाँ बैठे मन ही मन यों कहते रहे कि इनको राज्य और बल का गर्व भया है जो ऐसी-ऐसी बात करते हैं। मेरा नाम बलदेव नहीं जो सब कौरवों को नगर समेत जमुना में न डुबाऊँ। तब बलदेवजी अति क्रोधकर सब कौरवों को नगर समेत हल से खेंच यमुना तीर पर ले गये और चाहें कि डुबायें त्यों ही अति घबराय सब कौरव आय हाथ जोड़, सिर नाय गिड़गिड़ाय, विनती कर बोले कि महाराज! हमारा अपराध क्षमा कीजै। हम आपकी शरण आये, अब बचाय लीजै। जो कहोगे सो करेंगे, सदा राजा उग्रसेन की आज्ञा में रहेंगे। इतनी बात के सुनते ही बलरामजी का क्रोध शान्त हुआ,जो हल से खेंच नगर यमुना तीर पर लाये थे सो वही रखा तिसी दिन से हस्तिनापुर यमुना तीर पर है पहले वहाँ न था। फिर उन्होंने सांम्ब को छोड़ दिया और राजा दुर्योधन ने विधि से साम्ब को कन्या दान किया और उसके

यौतुक में बहुत कुछ संकल्प किया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने कहा महाराज ! ऐसे बलरामजी हस्तिनापुर जाय कौरवों का गर्व गँवाय भतीजे को छुड़ाय, ब्याह लाये। उस काल सारी द्वारिकापुरी में आनन्द हो गया और बलदेवजी ने हस्तिनापुरी का गर्व समाचार ब्यौरा समेत समझाय राजा उग्रसेन के पास जा कहा।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का साम्ब विवाह नाम का उनहत्तरवाँ अध्याय ॥६९॥

अध्याय—७०

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! एक समय नारदजी के मन में आई कि श्री-कृष्णचन्द्र सोलह सहस्र एक सौ आठ रानी ले कैसे गृहस्थाश्रम करते हैं सो चलकर देखना चाहिये। इतना विचार कर द्वारिकापुरी में आये तो नगर के बाहर आ क्या देखते हैं कि कहीं बाड़ियों में नाना भाँति के बड़े-बड़े ऊँचे वृक्ष फल-फूलों से भरे खड़े झूम रहे हैं, तिन पर कपोत कीर, चातक, मयूर आदि पक्षी मन भावनी बोलियाँ बैठे बोल रहे हैं। कहीं सुन्दर सरोवर में कमल खिले हुए हैं तिन पर भौरों के झुण्ड के झुण्ड गूँज रहे हैं। तीर में हंस सारस समेत कोलाहल कर रहे हैं। कहीं फुलवाड़ियों में माली मीठे-मीठे स्वरों से गाय-गाय ऊँच-नीच नीर चढ़ाय क्यारियों में जल सींच रहे हैं। कहीं इन्दारों और बाड़ियों पर रहट चल रहे हैं और पनघट पर पनिहारियों के ठट के ठट लगे हैं तिन की शोभा कुछ वर्णी नहीं जाती; बस देखते बन आये, महाराज ! यह शोभा वन उपवन की निरख नारद जी पुरी में जाय देखें तो अति सुन्दर कंचन के मणिमय मन्दिर जगमगाय रहे हैं। तिनपर ध्वजा पताका फहराय रही हैं। दरवाजे दरवाजे तोरण बन्दनवार बँधी हैं। दरवाजे-दरवाजे पर केले के खम्भ और कंचन के खम्भ सपल्लव भरे धरे हैं। घर-घर की जाली झरोखे मोखों से धूपका धुआँ निकल श्याम घटा सी मडराय रही है। उसके बीच, सोने के कलश कलशियाँ बिजली सी चमक रही हैं। घर-घर पूजा पाठ होम यज्ञ दान हो रहे हैं, ठौर-ठौर भजन, सुमिरण, गान,

कथा पुराण की चर्चा चल रही हैं जहाँ तहाँ यदुवंशी इन्द्र की सी छबि किये बैठे हैं और सारे नगर में सुख छाय रहा है ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित से कहने लगे कि महाराज ! नारदजी पुरी में जाते ही मग्न हो कहने लगे कि प्रथम किस मन्दिर में जाऊँ जहाँ श्रीकृष्णचन्द्र को पाऊँ महाराज ! मन ही मन इतना कह नारदजी पहले रुक्मिणी के मन्दिर में गये । वहाँ श्री कृष्णचन्द्र विराजमान थे । इन्हें देख खड़े भये । रुक्मिणी जी झारी लाईं, प्रभु ने पाँव धोय आसन पर बैठाय धूप दीप, नैवेद्य से पूजा की फिर हाथ जोड़ नारदजी से कहा––

जा घर चरण साधु के परे । ते नर सुख सम्पत अनुसरे ।।
हमसे कुटुम्बी तारण हेतु । घर ही आय दरश तुम देतु ।।

महाराज ! प्रभु के मुख से इतना वचन निकलते ही कि जगदीश तुम चिरंजीव रहौ, यह आशीष दे नारदजी जाम्बवती के मन्दिर में गये और जाम्बवती के समीप देखा कि हरि पाँसासार खेल रहे हैं । नारदजी के देखते ही जो उठे तो नारदजी आशीर्वाद दे उलटे फिरे, पुनि सत्यभामा के यहाँ गये तो देखा कि श्री कृष्णजी बैठे तेल लगवाय रहे हैं। वहाँ से चुपचाप नारदमुनिजी फिर आये । इसलिये कि शास्त्रों में लिखा है तेल लगाने के समय न राजा प्रणाम करे न ब्राह्मण आशीष दे । आगे नारदजी कालिन्दी के घर गये देखा कि, हरि सोरहे हैं । महाराज ! कालिन्दी ने नारदजी को देखते ही हरि का पाँव दबाय जागाया । प्रभु जागते ही ऋषि के निकट जाय, दण्डवत कर हाथ जोड़ बोले कि साधुओं के चरण तीर्थ जल के समान हैं । जहाँ पड़ें वहाँ पवित्र करते हैं । यह सुन तहाँ से भी आशीष दे नारदजी खड़े हुए और मित्र-वृन्दा के धाम गये तहाँ देखा कि ब्रह्म-भोज हो रहा है और श्रीकृष्ण परोसते हैं । नारदजी को देख प्रभु ने कहा कि महाराज ! कृपाकर आये हो तो आप भी प्रसाद ले हमें उच्छिष्ट दीजै और घर पवित्र कीजै । नारदजी ने कहा, महाराज ! मैं थोड़ा फिर आऊँ, फेर आऊँगा । ब्राह्मणों को जिमा लीजै पुनि ब्रह्म शेष आय मैं पाऊँ । यों सुनाय नारदजी विदा हो सत्या के गेह पधारे, वहाँ क्या देखते हैं कि श्री बिहारी भक्त हितकारी आनन्द से बैठे बिहार कर रहे हैं । यह चरित्र देख नारद मुनि उलटे पाँवों फिरे । पुनि भद्रा के स्थान पर गये तो देखा कि हरि भोजन कर रहे हैं । वहाँ से फिरे तो लक्ष्मणा के गेह पधारे तहाँ देखा प्रभु स्नान कर रहे हैं । इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! इसी भाँति नारद मुनिजी सोलह सहस्र एक सौ आठ घर फिरे पर बिन श्रीकृष्ण जी के कोई घर न देखा । जहाँ देखा तहाँ हरि को गृहस्थाश्रम का सुख भोगत ही देखा, वह यह चरित्र लखि––

नारद के मन अचरज एह । कृष्ण विना नहिं कोई गेह ।।
जा घर जाऊँ तहाँ हरि प्यारी । ऐसी प्रभु लीला विस्तारी ।।

महाराज ! जब नारदजी अचम्भा कर कहे ये बैन तब प्रभु श्रीकृष्णजी ने कहा कि नारद, तू अपने मन में कुछ खेद मत कर । मेरी माया अति प्रबल है और सारे संसार में फैल रही है । जब यह मुझे ही मोहती है, तो दूसरों की क्या सामर्थ्य है जो इसके हाथ से बचे और जगत में आय इसमें न रचे ।

तब नारदजी बोले जो आपकी भक्ति सदा मेरे चित्त में रहे और मेरा मन माया के वस न होय, विषय की वासना न रहे, ऐसा वरदान दीजै। हे राजा! इतना कह नारदजी प्रभु से बिदा हो दण्डवत कर वीणा बजाते हरि गुण गाते अपने स्थान को गये और श्रीकृष्णचन्द्र जी द्वारिका में लीला करते रहे।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का सत्तरवाँ अध्याय ॥७०॥

अध्याय–७१

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र रात के समय श्री-रुक्मिणी के साथ विहार करते थे और रुक्मिणी जी आनन्द मग्न बैठीं प्रीतम का चन्द्रमुख निरख-निरख सुख लेती थीं कि इस बीच रात व्यतीत भई चिड़ियाँ चुहचुहाईं। सब लोग जागे और अपना गृहकाज करने लगे। उस काल रुक्मिणी जी तो हरि के समीप से उठ संकोच किये घर की टहल टकोर करन लगीं और श्रीकृष्णचन्द्रजी देह शुद्ध कर, हाथ मुह धोय स्नान कर जप, तप, ध्यान, पूजा, तर्पणसे निश्चिन्त होय, ब्राह्मणों को नाना प्रकार के दान दे नित्य कर्म से सुचित हो, बाल भोग पाय, पान, लौंग, इलायची, जावित्री, जायफल के साथ साफ-सुथरे वस्त्र-आभूषण मँगवाय, पहन शस्त्र लगाइ, उग्रसेन के पास गये। पुनि जुहार कर यदुवंशियों की सभा के बीच आय रत्न सिंहासन पर विराजे।

महाराज! उसी समय एक ब्राह्मण ने आय द्वारपाल से कहा कि तुम श्रीकृष्ण चन्द्रजी से जाकर कहो कि एक ब्राह्मण आपके दर्शन की अभिलाषा किये द्वार पर खड़ा है जो प्रभु की आज्ञा पावै तो भीतर आवै। ब्राह्मण की बात सुन द्वारपाल ने भगवान् से जाकर कहा कि महाराज! एक ब्राह्मण आपके दर्शन की अभिलाषा किए पौर पर खड़ा है आज्ञा पावे तो आवे। हरि बोले अभी लावो। प्रभु के मुख से बात निकलते ही द्वारपाल हाथों हाथ ब्राह्मण को सन्मुख ले गए, विप्र को देख श्रीकृष्णचन्द्र सिंहासन से उतर दण्डवत् कर, आगे बढ़, हाथ पकड़ उसे मन्दिर को ले गये और रत्न सिंहासन पर अपने पास बिठाय पूछने लगे कि कहो देवता आपका आना कहाँ से हुआ और किस कार्य के हेतु पधारे। ब्राह्मण बोला कृपासिन्धु! दीनबन्धु! मैं मगध देश से आया हूँ और बीस सहस्र राजाओं का संदेश लाया हूँ। प्रभु बोले सो क्या? ब्राह्मण ने कहा महाराज! जिन बीस सहस्र राजाओं को जरासन्ध ने पकड़ हथकड़ियाँ दे रखी हैं तिन्होंने मेरे हाथ यह संदेशा कहला भेजा है। दीनानाथ तुम्हारी मर्यादा की यह रीति है कि जब असुर तुम्हारे भक्तों को सताते हैं तब-तब तुम अवतार ले भक्तों की रक्षा करते हो। हे नाथ! जैसे हिरण्यकश्यप से प्रह्लाद को छुड़वाया और गज को ग्राह से छुटाया तैसे ही दयाकर अब हमें इस महा दुष्ट से छुड़वायें। हम महा कष्ट में हैं। तुम बिन और किसी की सामर्थ नहीं जो इस महा विपत्ति से निकाले और हमारा उद्धार करें।

महाराज! इतनी बात के सुनते ही प्रभु दयालु हो बोले कि हे देवता! अब चिन्ता मत करो। उनकी चिन्ता मुझे है। इतनी बात के सुनते ही ब्राह्मण सन्तोष कर श्री-

कृष्णचन्द्रजी को आशीष देने लगा। इस बीच नारद जी आ उपस्थित हुए। प्रणाम कर श्रीकृष्णचन्द्र ने उनसे पूछा कि नारदजी तुम सब ठौर जाते आते हो, कहो हमारे भाई युधिष्ठर आदि पाँचों पाण्डव इन दिनों कहाँ बसे हैं और क्या करते हैं। बहुत दिन से हमने उनके कुछ समाचार नहीं पाये। इससे हमारा चित्त उन्हीं में लगा है। नारदजी बोले महाराज! मैं उन्हीं के पास से आया हूँ। हैं तो वे कुशल क्षेम से पर इन दिनों राजसूय-यज्ञ करने के लिए निपट भावित हो रहे हैं और घड़ी-घड़ी यही कहते हैं कि बिना श्रीकृष्ण की सहायता के हमारा यज्ञ पूरा न होगा। इससे मेरा कहा मानिए तो––

पहले उनकौ यज्ञ सँवारौ। पीछे अनत कहूँ पग धारौ॥

महाराज! इतनी बात नारदजी के मुख से सुनते ही प्रभु ने उद्धवजी को बुलाय के कहा कि––

उद्धव तुम हो सखा हमारे। मन आँखन ते कबहुँ न न्यारे॥
दुहूँ ओर की भारी भीर। पहले कहाँ चलें कहु बीर॥
उत राजा संकट में भारी। दुख पावत किये आश हमारी॥
इत पाण्डव मिल यज्ञ रचायौ। ऐसे कह प्रभु वचन सुनायौ॥

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का इकहत्तरवाँ अध्याय॥७१॥

अध्याय–७२

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! पहिले तो श्रीकृष्णचन्द्रजी ने जो राजाओं का सन्देश लाया था उस ब्राह्मण को इतना कह बिदा किया, कि देवता! तुम हमारी ओर से राजाओं से कहो कि तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। हम बेग ही आय तुम्हें छुड़ाते हैं। महाराज! यह बात कह श्रीकृष्ण ब्राह्मण को विदा कर उद्धवजी को साथ ले राजा उग्रसेन शूरसेन की सभा में गये और उन्होंने सब समाचार उनके आगे कहे। ये सुन सब चुप हो रहे। इतने में उद्धवजी बोले कि महाराज! ये दोनों काज कीजै। पहले राजाओं को जरासन्ध से छुड़ाइ लीजै। पीछे चलकर यज्ञ सवारिए, क्योंकि राजसूय यज्ञ का काम बिना राजा और कोई नहीं कर सकता और वहाँ बीस सहस्र नृप इकट्ठे हैं। उन्हें छुड़ाओगे तो वे सब गुणवान यज्ञ का काज बिना बुलाये, जाकर, करेंगे। महाराज! और कोई दशों दिशा जीत आवेगा तो भी इतने राजा इकट्ठे न पावेगा। इससे अब हस्तिनापुर को चलिये पाण्डवों से मिल जो काम करना हो सो करिये। राजा जरासन्ध दानी और गौ ब्राह्मणों को मानने और पूजने वाला है। जो कोई उससे जाकर जो माँगता है सो पाता है, वह झूँठ नहीं बोलता है। उसमें दस सहस्र हाथी का बल है। उसके बल के समान भीमसैन का बल है, हे नाथ! जो तुम चलौ तो भीमसैन को साथ ले चलौ। मेरी बुद्धि में आता है कि उसकी मृत्यु भीमसैन के हाथ है। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि राजन्! जब उद्धवजी ने ये बातें कहीं, तब श्रीकृष्णजी ने राजा उग्रसेन से बिदा हो सब यदुवंशियों से कहा कि कटक

सजाऔ, हम हस्तिनापुर को चलेंगे । इस बात के सुनते ही यदुवंशी सेना सजा ले आये और प्रभुजी आठों पटरानियों समेत कटक में पहुँचे । इसमें किसी ने राजा युधिष्ठिर से जाकर कहा कि महाराज ! कोई नृपति सेना ले बड़ी भीड़ के आपके देश पर चढ़ आया । बेग ही उसे देखिये, नहीं तो उसे यहाँ पहुँचा ही जानिये । महाराज ! इस बात को सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने अति भय खाय अपने नकुल सहदेव दोनों छोटे भाइयों को यह कह प्रभु के सन्मुख भेजा कि तुम देख आवो कि कौन राजा चढ़ आया है । राजाकी आज्ञा पाते ही --

सहदेव नकुल देखत फिर आये । राजा को यह वचन सुनाये ।।
प्राणनाथ आये हैं हरी । सुनि राजा चिन्ता परिहरी ।।

आगे अति आनन्द कर राजा युधिष्ठिर नें भीम अर्जुन को बुलाय के कहा कि भाई ! तुम चारों भाई आगे जाय श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द को ले आओ । महाराज ! राजा की आज्ञा पाय और प्रभु का आना सुन वे चारों भाई अति प्रसन्न हो, भेंट पूजा की सामग्री और बड़े-बड़े पण्डितों को साथ ले गाजे बाजे से प्रभु श्रीकृष्ण को लैने चले । निदान, अति आदर मान से मिल, वेद की विधि से भेंट पूजा कर, चारों भाई श्रीकृष्णजी को, सब समेत नगर में ले आये । राजा युधिष्ठिर ने प्रभु से मिल अति सुख माना और अपना जीवन सफल जाना । आगे बाहर भीतर सब ने सब से मिल यथायोग्य परस्पर सम्मान किया और नयनों को सुख दिया । घर बाहर सारे नगर में आनन्द हो गया । श्रीकृष्णचन्द्र वहाँ रह सबों को सुख देने लगे ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का बहत्तरवाँ अध्याय ।।७२।।

अध्याय--७३

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र ऋषि मुनि ब्राह्मण

क्षत्रियों की सभा में बैठे थे कि राजा युधिष्ठिर ने आय, विनती कर सिर नाय के कहा कि शिव

विरंचि के ईश, तुम्हारा ध्यान करते हैं सदा सुर मुनि ऋषि जोगीश । तुम हो अलख अगोचर अभेद, कोई नहीं जानता है भेद । महाराज ! इतनी कह पुनि राजा युधिष्ठिर बोले कि हे दीनदयालु ! आपकी दया से मेरे सब काम सिद्ध हुए । पर एक ही अभिलाषा रही । प्रभु बोले सो क्या ? राजा ने कहा कि मेरा यही मनोरथ है कि राजसूय यज्ञ कर आपको अर्पण करूँ । इतनी बात के सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न होकर बोले कि राजा यह तुमने भला मनोरथ किया । इससे सुर, नर, मुनि ऋषि सब सन्तुष्ट होंगे । यह सब को भावता है और इसका करना तुम्हें कुछ कठिन नहीं । क्योंकि तुम्हारे भाई, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, बड़े प्रतापी और अति बली हैं । संसार में अब कोई ऐसा नहीं, जो इनका सामना करे । पहले इन्हें भेजिये कि ये जाय दशों दिशाओं के राजाओं को जीत अपने वश कर आवें । पीछे आप निश्चिन्ताई से यज्ञ कीजिये । महाराज ! प्रभु के मुख से जो इतनी बात निकली, त्यों ही, राजा युधिष्ठिर ने अपने चारों भाइयों को बुलाय, कटक दे चारों को चारों ओर भेज दिया । दक्षिण को सहदेव पधारे । पच्छिम को नकुल सिधारे । उत्तर को अर्जुन धाये और पूर्व में भीमसैन धाये । आगे कितने एक दिन के बीच महाराज वे चारों हरि प्रताप से सारे द्वीप नौ खण्ड जीत, दशों दिशाओं के राजाओं को वश कर अपने साथ ले आये । उस काल युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ श्रीकृष्णचन्द्रजी से कहा कि महाराज ! आपकी सहायता से यह काम तो हुआ अब क्या आज्ञा है । तब उद्धवजी बोले कि धर्मावतार ! सब देश के तो नरेश आये पर अब एक मगध का राजा जरासन्ध ही आपके वश का नहीं और जब तक वह वश में न होगा तब तक यज्ञ भी करना सफल न होगा । महाराज ! जरासन्ध राजा वृहद्रथ का बेटा, महाबली महा प्रतापी और अति दानी धर्मात्मा है । हर किसी की सामर्थ्य नहीं जो उसका सामना करें । इस बात को सुन जो राजा युधिष्ठिर उदास हुए तो श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि महाराज आप किसी बात की चिन्ता न कीजै । भाई भीम अर्जुन समेत हमें आज्ञा दीजै । कै तो छलबल कर उसे पकड़ लावें, कै मार आवें । इस बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने दोनों भाइयों को आज्ञा दी, तब हरि ने उन दोनों को अपने साथ ले, मगध देश की बाट ली । आगे पन्थ में श्रीकृष्णजी ने अर्जुन और भीमसैन से कहा कि––

विप्र रूप धर पग धारिय, छलवल कर वैरी दुत मारिय ।।

महाराज ! इतनी बात कह श्रीकृष्णजी ने ब्राह्मण का वेश किया उनके साथ भीम, अर्जुन ने भी विप्र वेश किया, त्रिपुण्ड किये, पुस्तक काँखों में लिये, अति उज्ज्वल स्वरूप, सुन्दर रूप बन-ठन कर ऐसे चले कि जैसे तीनों गुण, सत, रज, तम, देह धरि जाते होंय । कितने एक दिनों में चले-चले वे मगध देश में पहुँचे और दोपहर के समय राजा जरासन्ध की पौर पर जा खड़े हुए । इनका वेष देख पौरियों ने अपने राजा से जा कहा कि महाराज ! तीन ब्राह्मण अति दीन, कुछ वाँछा किये, द्वार पर खड़े हैं । हमें क्या आज्ञा होती है ? महाराज ! बात के सुनते ही राजा जरासन्ध उठ आया, और इन तीनों को प्रणाम कर, अति मान सम्मान से घर में ले गया । आगे वह इन्हें सिंहासन पर बैठाय, आप सन्मुख हाथ जोड़ खड़ा हो देख देख, मन में यह सोच बोला कि––

याचक जो द्वारे पर आवै। वड़ौ भूप सोउ अतिथि कहावै ।।
विप्र नहीं तुम योधा वली। वात न कछू कपट की भली ।।
छिपे न क्षत्रिय कान्ति तिहारी। दीखत शूरवीर वलधारी ।।
तेजवन्त तुम तीनों भाई। शिव विरंचि हरि से वलदाई ।।
तुम्हरी इच्छा हो सो करौ। अपवाचा तें नहिं मैं टरौ ।।
मागौ सो ही दै हों दान। सुत सुन्दरी सर्वस अरु प्रान ।।

जरासन्ध की इस बात के सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कहा कि महाराज ! किसी समय राजा हरिश्चन्द्र बड़ा दानी हो गया है, जिसकी कीर्ति संसार में अब तक छा रही है। सुनिये, एक समय राजा हरिश्चन्द्र के देश में अकाल पड़ा और अन्न बिन सब लोग मरने लगे। तब राजा ने अपना सर्वस्व बेच सबको खिलाया। जब देश नगर, धन गया और राजा निर्धन हो रहा तब एक दिन साँझ समय वह तो कुटुम समेत भूखा बैठा था कि इतने में विश्वामित्र ने आय इसका सत्य देखने को यह वचन कहा। महाराज ! मुझे धन दीजै और कन्यादान का सा फल लीजे। इस वचन को सुनते ही जो कुछ घर में था सो ला दिया। पुनि ऋषि ने कहा महाराज ! मेरा काम इतने में न होगा, फिर राजा ने दास-दासी बेचकर धन ला दिया। पुनि ऋषि ने कहा धर्ममूर्ति ! इतने धन से मेरा काम न सरा। अब मैं किसके पास जाय माँगू। मुझे तो संसार में तुझसे अधिक धनवान धर्मात्मा कोई नहीं दृष्टि आता है। एक श्वपच नाम चाँडाल पात्र है, कहो तो उसी से धन माँगू। पर इसमें भी लाज आती है। ऐसे दानी राजा को याच उसको क्या याचूँ। महाराज ! इतनी बात के सुनते ही राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्र को साथ ले उस चाँडाल के घर गये और उन्होंने उससे कहा कि भाई तू हमें एक वर्ष के लिए गहने धर और मुनि का मनोरथ पूरा कर। श्वपच बोला :

कैसे टहल हमारी करिहौ। राजस तामस मन ते हरिहौ ।।
तुम नृप तेज महा वलधारी। नीच टहल है खरी हमारी ।।

हे महाराज ! हमारे यहाँ तो यही काम है कि श्मशान में जाय चौकी दे और जो मृतक आवै उससे कर ले। पुनि हमारे घर बार की चौकसी करे। तुम से यह हो सके तो रुपये दूँ और तुम्हें बन्धक रख लूँ ! राजा ने कहा कि अच्छा मैं वर्ष भर तुम्हारी सेवा करूँगा, तुम इन्हें रुपये दो। इतना वचन राजा के मुख से निकलते ही श्वपच ने विश्वामित्र को रुपये गिन दिये। वह ले अपने घर गये और राजा वहाँ उसकी सेवा करने लगा। कितने दिन पीछे कालवश हो राजा हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहिताश्व मर गया। उस काल रानी मरघट में गई और ज्यों चिता बनाय अग्नि संस्कार करने लगी त्यों ही राजा ने आय कर माँगा——

रानी विलख कहै दुख पाय। देख समुझि दिल में तुम राय ।।

यह हमारा पुत्र रोहिताश्व है, और कर देने को मेरे पास और तो कुछ नहीं यही एक चीर है जो पहने खड़ी हूँ। राजा ने कहा इसमें मेरा कुछ वश नहीं है। स्वामी के कार्य पर खड़ा हूँ। जो स्वामी का कार्य न करूँगा तो मेरा सत्य जायगा। महाराज ! इस बात के सुनते ही रानी ने ज्यों ही चीर उतारने को आँचल पर हाथ डाला त्यों ही तीनों लोक काँप उठे। त्यों ही भगवान् ने राजा रानी का सत्य देख पहले एक विमान भेज दिया और पीछे

आय दोनों का उद्धार किया । महाराज ! जब विधाता ने रोहिताश्व को जिलाया, राजा रानी को पुत्र समेत विमान पर बिठाय बैकुण्ठ जाने की आज्ञा की, तब राजा हरिश्चन्द्र ने हाथ जोड़ भगवान् से कहा कि हे दीनबन्धु ! पतितपावन दीन दयालु, मैं श्वपच बिना, बैकुण्ठ धाम में जाकर क्या करूँगा विश्राम । इतना वचन और राजा के मन का अभिप्राय जान श्री भक्त हितकारी करुणासिन्धु हरि ने श्वपच को भी राजा रानी और कुँवर के साथ तारा ।

वह हरिचन्द अमर पद पायो । यहाँ युगन युग यश चलिआयो ।।

महाराज ! यह प्रसङ्ग जरासन्ध को सुनाय, श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कहा कि महाराज ! और सुनिये, कि रंतिदेव ने ऐसा तप किया कि अड़तालीस दिन बिना पानी आहार के रहा और जिस समय पानी पीने बैठा तिस समय कोई प्यासा आया । इसने वह नीर न पी उस तृषावन्त को पिलाया । उस जलदान से उसने मुक्ति पाई । पुनि राजा बलि ने अति दान किया तो पाताल का राज्य लिया और अब तक उसका यश चला आता है । फिर देखिये, कि उद्दालक मुनि छठे महीने अन्न खाते थे, एक समय खाते बिरियाँ उनके यहाँ कोई अतिथि आया । उन्होंने अपना भोजन आप न खाय भूखे को खिलाया और आप क्षुधा ही में मरे । निदान, अन्नदान करने से बैकुण्ठ को विमान पर चढ़ कर गये । पुनि एक समय सब देवताओं को साथ ले राजा इन्द्र ने जाय दधीच से कहा महाराज ! हम वृत्रासुर के हाथ से अब बच नहीं सकते । जो अपनी अस्थि हमें दीजे तो उसके हाथ से बचें नहीं तो बचना कठिन है क्योंकि बिना तुम्हारे हाड़ के आयुध के किसी भाँति वह मारा न जायगा । महाराज ! इतनी बात के सुनते ही दधीचि ने शरीर गाय से चटवाय जाँघ का हाड़ निकाल दिया । देवताओं ने उस अस्थि का बज्र बनाया और दधीचि ने प्राण गँवाया और बैकुण्ठ धाम पाया ।

ऐसे दाता भए अपार । तिनको यश गावत संसार ।।

हे राजन् ! यों कह श्रीकृष्णचन्द्रजी ने जरासन्ध से कहा कि महाराज ! जैसे आगे और युग में धर्मात्मा दानी राजा हो गये हैं तैसे अब इस काल में तुम हो, उन्होंने याचकों की अभिलाषा पूरी की, तुम हमारी आशा पुजावो । कहा है ।

याचक कहा न माँगई, दाता कहा न देय ।
गृह सुत सुन्दरि लोभ नहिं, तनु सिर दे यश लेय ।।

इतना वचन प्रभु के मुख से निकलते ही जरासन्ध बोला कि याचक को दाता की पीर नहीं होती । तो भी दानी अपनी प्रकृति नहीं छोड़ता । इसमें सुख पावे कि दुख । हरि ने कपट रूप धर बामन बन बलि के पास जाय तीन पग पृथ्वी माँगी । उस समय शुक्र ने बलि को चेताया तो भी राजा ने प्रण को न छोड़ा ।

देह समेत मही तक दई । ताकी जग में कीरत भई ।।
याचक विष्णु कहा यश लीन्हों । सर्वस ले तौऊ हठ कीन्हों ।।

इससे तुम पहले अपना नाम भेद कहौ तब जो माँगोगे सो मैं दूंगा । श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हम क्षत्रिय हैं । बासुदेव हमारा नाम है । तुम भली भाँति हमें जानते हो और ये दोनों अर्जुन भीम हमारे फुफेरे भाई हैं । हम युद्ध करने को तुम्हारे पास आये हैं । हमसे युद्ध कीजै, हम यही तुमसे माँगने आये हैं । महाराज यह बात श्री कृष्णचन्द्र से सुन जरासन्ध हँस

कर बोला कि मैं तुझसे क्या लड़ूँ । तू मेरे सों ही भाग चुका है और अर्जुन से भी न लड़ूँगा क्योंकि यह बिदर्भ देश गया था तहाँ नारी का भेष करके रहा । भीमसेन से कहो तो इससे लड़ूँ । यह मेरे समान योद्धा है । इससे लड़ने में मुझे कोई लाज नहीं ।

पहले तुम सब भोजन करौ । पीछे मल्ल अखाड़े लड़ो ।।
भोजन दे नृप बाहर आयौ । भीमसेन तहँ बोलि पठायो ।।
अपनी गदा ताहि सन दई । गदा दूसरी आपुन लई ।।

दोहा—जहाँ सभा मण्डप बन्यो, बैठे जाय मुरारि ।
जरासन्ध अरु भीम तहँ, भये ठाढ़ इक बार ।।

महाराज ! जिस समय दोनों वीर अखाड़े में खम ठोक, गदा तान, ध्वजा पलट झूमकर सन्मुख आये, उस काल ऐसे जनाये, कि मानों दो मतङ्ग मतवाले उठ धाये । आगे जरासन्ध ने भीमसेन से कहा कि पहले गदा तू चला, क्योंकि तू ब्राह्मण का भेष ले मेरी पौरी में आया था । इससे पहले मैं प्रहार न करूँगा । यह बात सुन भीमसेन बोले कि राजा हमारा ये धर्मयुद्ध है । इसमें यह ज्ञान न होना चाहिये । जिसका जी चाहे सो पहले शस्त्र प्रहार करे । महाराज ! उन वीरों ने परस्पर एक ही साथ गदा चलाई और युद्ध करने लगे ।

अङ्ग बचाय उछरि पग धरें । झटपटहि गदा गदा सों लरें ।।
लटपट चोट गदा भयकारी । लागत शब्द कुलाहल भारी ।।

इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज ! इसी भाँति दोनों बली दिन भर तो युद्ध करते और साँझ को घर आय कर साथ-साथ भोजन विश्राम करते । ऐसे नित लड़ते-लड़ते सत्ताईस दिन भये । तब एक दिन उन दोनों के लड़ने के समय श्रीकृष्णचन्द्र जी ने मन ही मन विचारा कि यह यों न मारा जायगा । क्योंकि जब यह जन्मा था तब दो फाँक हो जन्मा था, उस समय जरा राक्षसी ने आय जरासन्ध का मुँह और नाक मूँदी तब दोनों फाँक मिल गईं । यह समाचार सुन उसी समय उनके पिता बृहद्रथ ने ज्योतिषियों को बुलाय के पूछा कि कहो इस लड़के का नाम क्या होगा और कैसा होगा । ज्योतिषियों ने कहा कि महाराज ! इसका नाम जरासन्ध हुआ, और यह बड़ा प्रतापी अजर और अमर होगा । जब तक इसकी सन्धि न फटैगी तब तक यह किसी से न मारा जायगा । इतना कह ज्योतिषी बिदा हो चले गये । महाराज ! यह बात श्रीकृष्णचन्द्र जी ने मन ही मन सोची और अपना बल दे भीमसेन को तिनका चीर सैन से जताया कि इसे इस रीति से चीर डालो । प्रभु के चिताते ही भीमसेन ने जरासन्ध को पकड़ कर दे मारा और एक जाँघ पर पाँय दे दूसरा पाँव हाथ से पकड़ यों चीर डाला जैसे कोई दातुन चीर डाले । जरासन्ध के मरते ही सारे नगर में आनन्द छा गया । उसी बिरियाँ जरासन्ध की नारी रोती-रोती श्रीकृष्णचन्द्रजी के सन्मुख खड़ी हो हाथ जोड़ बोलीं कि धन्य धन्य हे नाथ ! तुमने जो ऐसा काम किया कि जिसने सर्वस दिया, तुमने उसका प्रान लिया, जो जन तुम्हें सुत, वित्त, समय देह समर्पें उनसे तुम करते हो ऐसा ही स्नेह ।

कपट रूप कर छल बल कियो । जगत माँय तुम यह यश लियो ।।

महाराज ! जरासन्ध की नारी ने जब करुणा कर करुणानिधान के आगे हाथ जोड़ विनती कर यों कही, तब प्रभु ने दयालु हो पहले जरासन्ध की क्रिया की । पीछे उनके सुत सहदेव को बुलाय राजतिलक दे, सिंहासन पर बिठाय के कहा, पुत्र ! नीति सहित राज्य कीजो, और ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, प्रजा की रक्षा कीजो ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का जरासन्ध-वध नामक तिहत्तरवाँ अध्याय ।।७३।।

अध्याय–७४.

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! राजपाट पर बैठाय, समझाय श्रीकृष्णचन्द्रजी ने सहदेव से कहा कि राजन् ! अब तुम जाय उन राजाओं को ले आओ जिन्हें तुम्हारे पिता ने पहाड़ की कन्दरा में मूंद रखा है । इतना वचन प्रभु के मुख से सुनते ही जरासन्ध का पुत्र सहदेव बहुत अच्छा कह कर, कंदरा के निकट जाय उसके मुख से शिला उठाय, बीस सहस्र आठ सौ राजाओं को निकाल हरि के सन्मुख लाया । हथकड़ियाँ, बेड़ियाँ, पहने, गले में लोहे की तौख डाले, नख केश बढ़ाये, तन क्षीन मन मलीन, मैले वेष, राजा प्रभु के सन्मुख पंक्ति बाँधे खड़े हो हाथ जोड़ विनती कर बोले हे कृपासिन्धु ! दीनबन्धु ! आपने भले समय आय हमारी सुधि ली । नहीं तो हम सब मर चुके थे । तुम्हारा दर्शन पाया हमारे जी में जी आया और पिछला दुख गँवाया । महाराज ! इस बात के सुनते ही कृपासागर श्रीकृष्णचन्द्रजी ने उन पर दृष्टि की तो बात की बात में सहदेव ने उनको ले जाय हथकड़ी बेड़ी कटवाय, क्षौर करवाय न्हिलाय धुलाय, षटरस भोजन खिलवाया । वस्त्र आभूषण पहराय, अस्त्र-शस्त्र बँधवाय, पुनि हरि के सों हीं लिवाय लाया । उस काल श्रीकृष्णजी ने उन्हें चतुर्भुज रूप हो शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण कर दर्शन दिया । प्रभु का स्वरूप भूप देखते ही हाथ जोड़ बोले हे नाथ ! तुम संसार के कठिन बन्धन से जीव को छुड़ाते हो, तुम्हें जरासन्ध की बन्दि से हमें छुड़ाना क्या कठिन था । जैसे आपने कृपाकर इस कठिन बन्दि से छुड़ाया तैसे ही अब हमें गृह कूप से निकाल, काम लोभ मोह से छुड़ाइये जो हम एकान्त में बैठ आपका ध्यान करें और भवसागर से तरें ।

श्रीशुकदेवजी बोले कि जब सब राजाओं ने ऐसे ज्ञान युक्त वचन कहे तब श्री-कृष्णचन्द्रजी प्रसन्न हो बोले कि सुनो जिनके मन में मेरी भक्ति है वे निस्संदेह भक्ति पावेंगे । बंध मोक्ष मन ही के कारण है । जिनका मन स्थिर है तिन्हें घर और वन समान हैं । तुम और किसी बात की चिन्ता मत करौ । आनन्द से नीति सहित राज्य करौ । प्रजा को पालो । गौ, ब्राह्मण की सेवा में रहो । झूंठ मत भाषो । काम, क्रोध, लोभ, अभिमान तजो । भाव-भक्ति से हरि को भजो । तुम निसंदेह परम पद पावोगे । संसार में आय जिसने अभिमान किया वह बहुत न जीया । देखो अभिमान ने किसे न खो दिया ।

सहसबाहु अति बली बखान्यो । परशुराम ताको बलभान्यो ।।
वैन भूप रावण ह्वै भयो । गर्व आपने सो नस गयो ।।

भौमासुर वाणासुर कंस। भये गर्व ते वे विध्वंश ।।
श्री मद गर्व करो जन कोय। त्यागे जो सो निर्भन विध्वंश ।।

ऐसे कह श्रीकृष्णजी ने सब राजाओं से कहा कि तुम अब अपने-अपने घर जावो। कुटुम्ब से मिल अपना राजपाट संभाल, हमारे हस्तिनापुर पहुँचते ही, राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में शीघ्र आवो। महाराज ! इतने बचन के मुख से निकलते ही सहदेव ने सब राजाओं को जाने का सामान जितना चाहिये था उतनी बात की बात में ला उपस्थित किया। वे प्रभु से विदा हो अपने-अपने देश को गये और श्रीकृष्णचन्द्रजी भी सहदेव को साथ ले भीम, अर्जुन सहित वहाँ से चले। आनंद मङ्गल से हस्तिनापुर आये। आगे प्रभु ने राजा युधिष्ठिर के पास जाय जरासन्ध के मारने का समाचार और सब राजाओं के छुड़ाने का ब्यौरा कह सुनाया।

इतने ही में सब राजा भी अपनी-अपनी सेना ले भेंट सहित आय पहुँचे और राजा युधिष्ठिर को भेंट दे श्रीकृष्णचन्द्रजी की आज्ञा ले हस्तिनापुर के चारो ओर ठहर और यज्ञ की टहल के हेतु उपस्थित हुए।

इति श्री लल्लूलालकृत प्रेमसागर का चौहत्तरवाँ अध्याय ।।७४।।

अध्याय—७५
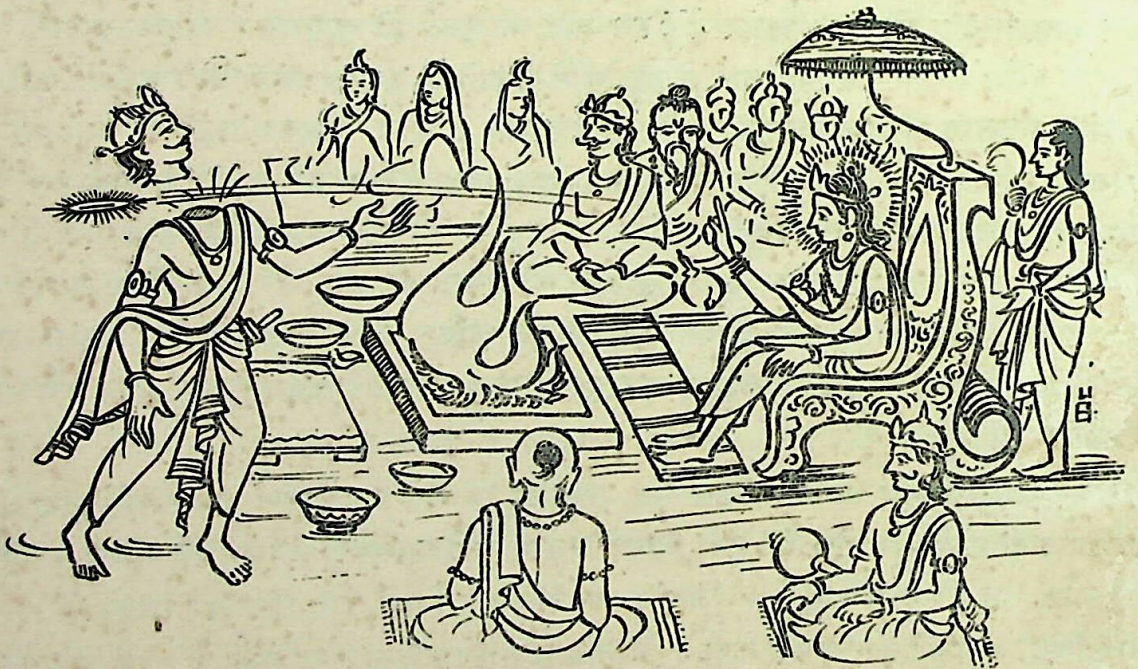
श्रीशुकदेवजी बोले कि राजन् ! जैसे यज्ञ राजा युधिष्ठिर ने किया और शिशुपाल मारा गया तैसे मैं सर्व कथा कहता हूँ, तुम चित दे सुनो। बीस सहस्र आठ सौ राजाओं के आते ही चारों ओर के जितने राजा थे, क्या सूर्यवंशी, क्या चन्द्रवंशी, उतने सब आय हस्तिनापुर में उपस्थित हुए। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र और राजा युधिष्ठिर ने मिलकर सब राजाओं को सब भाँति से शिष्टाचार कर, सन्मान किया, और हर एक को एक काम यज्ञ का सौंपा।

आगे श्रीकृष्णचन्द्रजी ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि महाराज ! भीम, अर्जुन नकुल सहदेव सहित पाँचों भाई तो सब राजाओं को साथ ले ऊपर टहल करें, और ऋषि मुनि, ब्राह्मणों को बुलाय यज्ञ आरम्भ कीजै । महाराज ! इस बात को सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने सब मुनि ब्राह्मणों को बुला कर पूछा कि महाराज ! जो वस्तु यज्ञ में चाहिये सो आज्ञा कीजै । महाराज ! इस बात के सुनते ही ऋषि मुनि ब्राह्मणों ने ग्रन्थ देख-देख यज्ञ की सामिग्री सब एक पत्र पर लिख दीं और राजा ने वो ही मँगवाय उनके आगे धरवा दी । ऋषि मुनि ब्राह्मणों ने यज्ञ की वेदी बनाई चारों वेद के सब ऋषि, मुनि, ब्राह्मण वेदी के बीच आसन बिछाय-बिछाय बैठे । पुनि शुद्ध होय स्त्री सहित गाँठ जोड़ राजा युधिष्ठिर भी जा बैठे और द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र, दुर्योधन शिशुपाल आदि जितने योद्धा और बड़े-बड़े राजा थे वे भी आन बैठे ब्राह्मणों ने स्वतिवाचन, गणेश पूजन, कलश घट स्थापन किया । राजा ने भरद्वाज, गौतम वशिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, पराशर, कश्यप, व्यास आदि बड़े-बड़े ऋषि मुनि, ब्राह्मणों को वरण किया और यज्ञ का सङ्कल्प करवाय, होम को आरम्भ कराया । महाराज ! मन्त्र पढ़-पढ़ ऋषि मुनि ब्राह्मण आहुति देने लगे और देवता प्रत्यक्ष हाथ बढ़ाय-बढ़ाय लेने लगे । उस समय ब्राह्मण वेदपाठ करते और सब राजा होम की सामिग्री ला ला कर देते और राजा युधिष्ठिर होम करते कि यज्ञ निर्द्वन्द पूर्ण हुआ । राजा ने पूर्णाहुति दी और यज्ञ से निश्चिंत हो राजा युधिष्ठिर ने सहदेवजी को बुलाकर पूछा कि—

पहिले पूजा किसकी कीजै । अक्षै तिलक कौन को दीजैं ।।
कौन वड़ौ देवन को ईश । ताहि पूजि हम नावें शीश ।।

सहदेवजी बोले कि महराज ! सब देवों के देव हैं बासुदेव, कोई नहीं जानता इनका भेद ये हैं। ब्रह्मा रुद्र के ईश, इन्हीं को पहले पूजि नवाइये शीश । जैसे तरुवर की जड़ में जल देने से सब शाखें हरी होती हैं, तैसे ही हरि की पूजा करने से सब देवता सन्तुष्ट होते हैं । लेते अवतार तनु धर करते हैं लोक व्यवहार ।

वन्धु कहत घर बैठे आवै । अपनी माया मोहि भुलावै ।।
महा मोह हम नेम भुलाने । ईश्वर कूँ भ्राता कर जाने ।।
इनसे वड़ौ न दीखे कोई । पूजा प्रथम इन्हीं की होई ।।

महाराज ! इस बात के सुनते ही सब ऋषि मुनि और राजा बोल उठे कि राजा ! सहदेवजी ने सत्य कहा । प्रथम पूजन योग्य हरि ही हैं । तब तो राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी को सिंहासन पर बिठाय, आठों पटरानियों समेत चंदन, अक्षत, पुष्प, धूपदीप नैवेद्य कर पूजा की, पुनि सब देवताओं, ऋषियों और राजाओं की पूजा की । रङ्ग-रङ्ग के जोड़े पहिनाये । चंदन केशर की खौरें, फूलों के हार, पहराये । सुगन्ध लगाय यथायोग्य राजा ने सब की मनुहार की । श्रीशुकदेवजी बोले कि राजन् !

हरि पूजन सवको सुख दयौ । शिशुपाल को शिर भुन गयौ ।।

शिशुपाल कितनी एक बेर तक शिर झुकाये मन ही मन कुछ सोच विचार करता रहा । निंदान, कालवश हो अति क्रोध कर सिंहासन से सभा के बीच निसंकोच भाव से, निडर हो

बोलाकि इस सभा में धृतराष्ट्र, दुर्योधन, कर्ण, द्रोणाचार्य आदि सब बड़े ज्ञानी मानी हैं। पर इस समय सब की मति मारी गई। बड़े-बड़े मुनीश बैठे रहे और नन्द गोप के सुत की पूजा भई और कोई कुछ न बोला। जिसने ब्रज में जन्म ले ग्वालबालों की जूठन खाई, तिसी की इस सभा में प्रभुताई बड़ाई।

जिसने गोपी और ग्वालों से अनुचित स्नेह किया इस सभा में तिसही को सब से बड़ा साधू बनाय दिया। पर नारि से जिसने छलबल कर प्रेम किया सब ने एक मता कर उसी को पहले तिलक दिया। ब्रज में इन्द्र की पूजा जिसने उठाई और परवत की पूजा ठहराई, पुनि पूजा की सब सामिग्री गिरि के निकट लिवाय ले जाय मिल कर आप ही खाई, तो भी उसे लाज न आई। जिसकी जाति पाँति और माता-पिता कुल धर्म का नहीं ठिकाना तिसको अलख अविनाशी कर सब ने माना।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! इसी भाँति से कालवश हो राजा शिशुपाल अनेक-अनेक प्रकार की बुरी बात श्रीकृष्णचन्द्रजी को कहता था और श्रीकृष्ण सभा के बीच सिंहासन पर बैठे सुन एक-एक बात पर एक लकीर खेंचते थे। इस बीच भीष्म, कर्ण, द्रोण और बड़े-बड़े राजा हरि निन्दा सुन अति क्रोधकर बोले कि अरे मूर्ख, तू सभा में बैठा हमारे सन्मुख प्रभु की निन्दा करता है। रे चाँडाल! चुप रह नहीं तो अभी पछार मार डालते हैं। महाराज! यह कह शस्त्र ले-ले सब राजा शिशु-पाल के मारने को उठ धाये। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकंदने सबको रोक कर कहा कि तुम इस पर शस्त्र मत डालो। खड़े-खड़े देखो यह आपसे आप मर जाता है। मैं इसके सौ अपराध सहूँगा, क्योंकि मैंने वचन हारा है। सौ से बढ़ती न सहूँगा। इसी लिए मैं रेखा काढ़ता हूँ। महाराज! इतनी बात के सुन ही सबने हाथ जोड़ श्रीकृष्णचन्द्रजी से पूछा कि कृपानाथ! इसका क्या भेद! जो आप इसके सौ अपराध क्षमा करियेगा। सो कृपा कर हमें समझाइये तो, हमारे मन का सन्देह जाय। प्रभु बोले कि जिस समय यह जन्मा था, तिस समय इसके तीन नेत्र और चार भुजाएें थीं। यह समाचार इसके पिता दशमोघ ने पाय ज्योतिषियों और बड़े-बड़े पण्डितों को बुला कर पूछा कि यह लड़का कैसा हुआ। इसका बिचार कर मुझको उत्तर दो। राजा की बात सुनते ही पण्डित और ज्योतिषियों ने शास्त्र को बिचार के कहा महाराज! यह बड़ा बली और प्रतापी होगा और यह भी हमारे बिचार में आता है कि जिसके मिलने से एक आँख और दो बाँह गिर पड़ेंगे यह उसी के हाथ से मारा जायेगा। इतना सुनके इसकी माँ महादेवी, शूरसेन बसुदेव की बहन हमारी फूफी, अति उदास भईं और आठों पहर पुत्र की ही चिन्ता में रहने लगी। कितने एक दिन पीछे एक समय पुत्र को लिये पिता के घर मथुरा आईं और इसे सब से मिलाया। जब यह मुझ से मिला और इसकी एक आँख और दो बाहु गिर पड़ीं। तब फूफी ने मुझे बचन बद्ध कर के कहा कि इसकी मौत तुम्हारे हाथ है। तुम इसे मत मारियो मैं यह भीख तुम से माँगती हूँ। मैंने कहा अच्छा सौ अपराध तक हम इसके न गिनेंगे। इसके उपरान्त अपराध करेगा तो हनेंगे। हम से यह बचन ले फूफी सब से बिदा होकर पुत्र सहित अपने घर गईं कि सौ अपराध क्यों करेगा जो कृष्ण के हाथ से मरेगा।

हे महाराज! इतनी कथा सुनाय श्रीकृष्णचन्द्रजी ने सब राजाओं के मन का भ्रम

मिटाय उन लकीरों को गिना जो एक-एक अपराध पर खीचीं थी। गिनते ही सौ से बढ़ती हुई। तभी प्रभु ने सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी। उसने झट शिशुपाल का शिर काट डाला। उसके धड़ से जो ज्योति निकली सो एक बार तो आकाश को धाई फिर आय सबके देखत-देखत श्रीकृष्ण-चन्द्रके मुख में समाई। यह चरित्र देख सुर नर मुनि जय-जयकार करने लगे और लगे पुष्प वर्षावने। उस काल श्री मुरारी भक्त हितकारी ने तीसरी मुक्ति दी और उसकी क्रिया की। इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से पूछा कि महराज तीसरी मुक्ति प्रभु ने किस भाँति दी, सो मुझे समझाय के कहिये।

श्री शुकदेवजी बोले कि राजन्! एकबार हिरण्यकश्यप हुआ। प्रभु ने नरसिंह अवतार ले तारा। दूसरी बेर रावण भया तो हरि ने राम अवतार ले इसका उद्धार किया। अब तीसरी बिरियाँ यह है, इसी से तीसरी मुक्ति भई। इतनी सुन राजा ने मुनि से कहा कि महाराज! अब आगे की कथा कहिये। श्रीशुकदेवजी बोलें कि हे राजन्! यज्ञ के हो चुकने पर राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं को स्त्री सहित वस्त्र पहनाया, ब्राह्मणों को अनगिनती दान दिए। खर्चने का काम यज्ञ में दुर्योधन का था, जिसने द्वेषकर एक ठौर के अनेक दान दिये। इसमें उसका यश हुआ तो भी वह प्रसन्न न था। इतनी कथा कह शुकदेवजी ने परीक्षित से कहा कि महाराज! यज्ञ के पूर्ण होते ही श्रीकृष्णचन्द्रजी राजा युधिष्ठिर से बिदा हो सब सेना ले कुटुम्ब सहित हस्तिनापुरसे चले द्वारिका पधारे। प्रभु के पहुँचते ही घर-घर मङ्गलाचार होने लगे और सारे नगरमें आनन्द छा गया।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का राजसूय यज्ञ समापन नामक पछत्तरवाँ अध्याय ।।७५।।

अध्याय–७६

राजा परीक्षित बोले कि महाराज! राजसूय यज्ञ होने से सब कोई प्रसन्न हुए। दुर्योधन अप्रसन्न हुआ इसका कारण क्या है! सो तुम मुझे समझा के कहो तो मेरे मन का भ्रम जाय। श्रीशुकदेवजी बोले कि राजन्! तुम्हारे पितामह बड़े ज्ञानी थे। उन्होंने यज्ञ में जिन्हें जैसा देखा तैसा काम दिया। भीम को भोजन करवाने का अधिकार दिया। पूजा पर सहदेव को रखा। धन लाने को नकुल रहे, सेवा करने अर्जुन ठहरे। श्रीकृष्णचन्द्रजी ने पाँव धोने और जूँठी पत्तल उठाने का काम लिया। दुर्योधन को द्रव्य बाँटने का काम दिया और जितने राजा थे तिन्होंने एक-एक काम बाँट लिया। महाराज! सब निष्कपट यज्ञ की टहल करते थे। पर राजा दुर्योधन जो काम करता था, इससे वह एक की ठौर अनेक उठाता था। निज मन में यह बात ठान के कि इनका भण्डार टूटे तो अप्रतिष्ठा होय, पर भगवत कृपा से अप्रतिष्ठा न होती बल्कि यश होता था। और वह यह भी न जानता था कि मेरे हाथ में चक्र है, एक रुपया दूँगा तो चार इकट्ठे होंयगे। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि राजन्! अब आगे की कथा सुनिये। श्रीकृष्णजी के पधारते ही राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं को खिलाय, पिलाय, पहराय, अति शिष्टाचार कर बिदा किया। वे दल सजा अपने-अपने देश को सिंधारे। आगे राजा युधिष्ठिर कौरव और पाण्डवों को ले गङ्गा स्नान करने चले। बाजे

गाजे से नीर में पैठ उनके साथ सबने स्नान किया । पुनि न्हाय न्हिलाय संध्या पूजन से निश्चिन्त होय, वस्त्र आभूषण पहन, सबको साथ लिए युधिष्ठिर कहाँ आते हैं कि जहाँ पर मय दैत्य ने अति सुन्दर सुवर्ण रत्न जटित मन्दिर बनाये थे । महाराज ! राजा युधिष्ठिर राज सिंहासन पर बिराजे । उस काल गन्धर्व गुण गाते थे, चारण बन्दीजन यश बखानते थे, सभाके बीच पातुर नृत्य करती थीं । घर बाहर महुली लोग मङ्गलाचार करते थे । और राजा युधिष्ठिर की सभा इन्द्र की सी सभा हो रही थी । इस बीच में राजा युधिष्ठिर के आने का समाचार पाय, राजा दुर्योधन भी कपट स्नेह किये, वहाँ मिलने को बड़ी धूम धाम से आया ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज ! जो वहाँ मय ने चौक बीच ऐसा काम किया था, कि जो कोई जाता था तिसे थल में जल का भ्रम होता था और जल में थल का । महाराज ! जो राजा दुर्योधन मन्दिर में उठा तो उसे थल देख जल का भ्रम हुआ । उसने अपने वस्त्र उठाय लिये । आगे बढ़ जल देख उसे थल का धोखा हुआ जो पाँव बढ़ाये तो उसके कपड़े भीजे । यह चरित्र देख सब सभा के लोग खिलखिला उठे । राजा युधिष्ठिर ने हँसी को रोक मुँह फेर लिया । महाराज ! सबके हँस पड़ते ही दुर्योधन अति लज्जित हो महा क्रोध कर उल्टा फिर गया । सभा में बैठ कहने लगा कि कृष्ण का बल पाय युधिष्ठिर को अति अभिमान हुआ है । आज सभा में बैठ मेरी हँसी की है । इसका पलटा मैं न लूँ और उसका गर्व न तोड़ूँ तो मेरा नाम भी दुर्योधन नहीं ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का छिहत्तरवां अध्याय ।।७६।।

अध्याय–७७
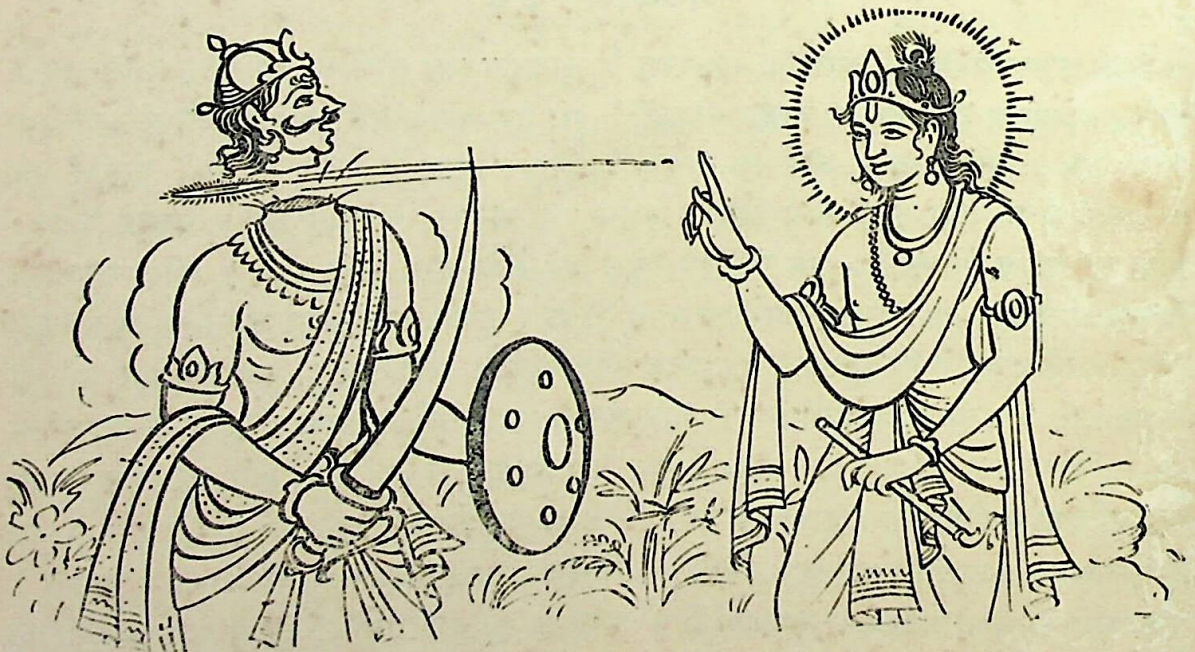
श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रजी और बलरामजी हस्तिनापुर में थे, तिसी समय शाल्व नाम दैत्य शिशुपाल का साथी, जो रुक्मिणी के विवाह

में श्रीकृष्णचन्द्रजी के हाथ की मार खाय भागा था, सो मन ही मन, इतनी बात बिचारने लगा कि अब मैं अपना बैर यदुवंशियों से लूँगा और वह महादेवजी की तपस्या करने लगा।

इन्द्रिय जीत सबै वश कीन्ही। भूख प्यास सट ऋतु सहलीनी।।
ऐसी विधि तब लाग्यो करन। सुमिरे महादेव के चरन।।
नित उठ मुठी रेत ले खाय। करै कठिन तप वो मन लाय।।
वर्ष बीत याही विधि गयो। तब ही महादेव वर दियौ।।

कि आज से अजर अमर हो गया और एक रथ माया का तुझे मय दैत्य बना देगा। तू जहाँ जाना चाहेगा वह तुझे वहाँ ले जायगा। उस रथ को त्रिलोकी में मेरे वर से सब ठौर जाने की सामर्थ्य होगी! महाराज! सदाशिव ने जो वर दिया तो एक रथ उसके सन्मुख आ खड़ा हुआ। वह शिवजी को प्रणाम कर रथ पर चढ़ द्वारिकापुरी को धर धमका। वहाँ जाय नगरवासियों को अनेक भाँति की पीड़ा उपजाने लगा। इसके डर से सब नगर निवासी अति भयभीत हो भाग राजा उग्रसेन के पास जा पुकारे कि महाराज की दुहाई, दैत्य ने आय नगर में अति धूम मचाई। जो इस भाँति उपाधि करेगा तो कोई जीता न रहेगा। महाराज! इतनी बात सुनते ही राजा उग्रसेन ने प्रद्युम्न और साम्ब को बुलाय के कहा कि देखो हरि का पीछा ताक के यह असुर आया है, प्रजा को दुख देने। तुम इसका कुछ उपाय करो। राजा की आज्ञा पाय प्रद्युम्न जी सब कटक ले रथ पर बैठ नगर के बाहर लड़ने जा उपस्थित हुए और सब को भयातुर देख बोले कि तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। मैं हरि प्रताप से इस असुर को बात की बात में मारे देता हूँ। इतना वचन कह, कर प्रद्युम्न जी सेना ले शस्त्र पकड़ जो उसके सन्मुख खड़े हुए तो उसने ऐसी माया की कि दिन की रात हो गई। प्रद्युम्न ने तेज बाण चलाय यों महा अन्धकार को दूर किया ज्यों सूर्य का तेज हो के दूर करे। पुनि कई एक बाण उन्होंने ऐसे मारे कि उसका रथ अस्त व्यस्त हो गया और वह खड़ा होकर कभी भाग जाता था, कभी आप अनेक राक्षसी माया उपजाय लड़ता था और प्रभु की प्रजा को अति दुख देता था। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा महाराज! दोनों तरफ से महायुद्ध होता था, कि इसी बीच एकाएकी शाल्व दैत्य के मन्त्री प्रद्युमान ने आय प्रद्युम्नजी की छाती में एक गदा ऐसी मारी कि ये मूर्छा खाय गिरे। इनके गिरते ही वह किलकारी मार के पुकारा मैंने श्रीकृष्णजीको मारा। महाराज! यादव राक्षसों से महायुद्ध कर रहे थे, उसी समय प्रद्युम्नजीको मूर्छित देख दारुण सारथी का बेटा उन्हें रथ में डाल रण से भागा और नगर में ले आया। चैतन्य होते ही प्रद्युम्न ने अति क्रोध कर सूत से कहा––

ऐसी नाहिं उचित रहि तोहि। जान अचेत भगायो मोहि।।
रण तज कर तू लायौ यान। यह तौ नहिं शूरन कौ काम।।
यदुकुल में ऐसौ नहि कोय। तज के खेत जो भाग्यो होय।।

क्या तैने कभी मुझे भागते देखा था, जो तू आज मुझे रण से भगाय लाया। यह बात जो सुनेगा सो मेरी हँसी और निन्दा करेगा। तैने यह काम भला न किया जो बिना काम कलंक का टीका लगा दिया। महाराज! इतनी बात सुनते ही सारथी रथ से उतर

सन्मुख खड़ा हो, हाथ जोड़, शीश नवाय, बोले—हे प्रभु ! तुम सब नीति जानते हो, ऐसा संसार में कोई धर्म नहीं जिसे तुम नहीं जानते । कहा है—

रथी शूर जो घायल परै । ताहि सारथी लै निकरै ।।
जो सारथी परै खे खाय । ताहि वचाय रथी लै जाय ।।
लागी प्रवल गदा अति भारी । मूर्छित ह्वै सुधि देह विसारी ।।
तव हौं रण सें लै निसर्यौं । स्वामि द्रोह अपयश से डर्यौं ।।
घड़ी एक लीनौ विसराम । अव चलकर कीजै संग्राम ।।
तुम तौ धर्म नीति जानिए । जग उपहास न मन आनिये ।।
अव तुम सवही को वध करिहौ । मायामय दानव को हरिहौ ।।

हे महाराज ! ऐसे कह सूत, प्रद्युम्नजी को जल के निकट ले गया, वहाँ जाय उन्होंने मुख, हाथ, पाँय, धोय सावधान हो, कवच, टोप, पहन, धनुष बाण सँभाल, सारथी से कहा भला, भया सो भया, पर तू अब वहाँ ले चल, जहाँ प्रद्युमान, यदुवंशियों से युद्ध कर रहा है । इस बात के सुनते ही सारथी बात की बात में रथ वहाँ ले गया, जहाँ वह लड़ रहा था । जाते ही उन्होंने ललकार कर कहा कि इधर-उधर क्या लड़ता है । मेरे सन्मुख हो तो तुझे शिशुपाल के पास भेजूँ । यह वचन सुनते ही वह जो प्रद्युम्न पर आय टूटा तो कई एक बाण मार उन्होंने उसे मार गिराया और साम्ब ने असुर दल काट-काट समुद्र में डुबाय दिया ।

इतनी कथा कह श्री शुकदवजी बोले कि महाराज ! जब असुर दल से युद्ध करते-करते द्वारिकापुरी में सब यदुवंशियों को सत्ताईस दिन हुए, तब अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्रजी ने हस्तिनापुरी में बैठे-बैठे द्वारिका की दशा, देख राजा युधिष्ठिर से कहा कि महाराज ! मैंने रात्रि में स्वप्न देखा है कि द्वारिका में महा उपद्रव हो रहा है और सब यदुवंशी अति दुखी हैं । इससे अब आप आज्ञा दो तो हम द्वारिका को प्रस्थान करें । यह बात सुन राजा युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ कहा कि जो प्रभु की इच्छा । इतना वचन सुन श्रीकृष्ण और बलराम सब से बिदा हो जो पुर के बाहर निकले तौ क्या देखते हैं कि बाईं ओर एक हरिणी दौड़ी जाती है और सों ही श्वान सिर झाड़ता है । यह अशगुन देख हरि ने बलरामजी से कहा कि भाई ! तुम सबको साथ ले पीछे से आवो मैं आगे चलता हूँ । हे राजन् ! भाई से यों कह श्रीकृष्णजी आगे जाय रणभूमि में क्या देखते हैं कि असुर यदुवंशियों के चारों ओर से बड़ी मार कर रहें है और वे निपट घबराय शस्त्र चला रहे हैं । यह चरित्र देख हरि जा वहाँ खड़े हो, कुछ भावित, हुए तो, बलदेव जी भी आ पहुँचे । उस काल श्रीकृष्णचन्द्रजी ने बलरामजी से कहा कि भाई ! तुम जाय नगर और प्रजा की रक्षा करो । मैं इन्हें मारकर आता हूँ । प्रभु की आज्ञा पाय वलदेव जी तो पुरी में पधारे और आप हरि वहाँ रण में गये जहाँ प्रद्युम्न शाल्व से युद्ध कर रहे थे । यदुपति के आते ही शंख ध्वनि हुई और सबने जाना कि श्रीकृष्णचन्द्र आ गये, महाराज ! प्रभु के आते ही शाल्व अपना रथ उड़ाय आकाश में ले गया और वहाँ से अग्नि सम बाण वर्षा करने लगा । उस समय श्रीकृष्णजी ने सोलह बाण गिनकर ऐसे मारे कि उसका रथ और सारथी उड़ गया और वह तड़फड़ाय नीचे गिरा । गिरते ही सम्हल कर एक वाण उसने हरि

की बाम भुजा में मारा और पुकारा कि कृष्ण खड़ा रह । युद्ध कर तेरा बल देखता हूँ । तैंने

तो शंखासुर और शिशुपाल आदि बड़े-बड़े बलवान योधा छल बल करके मारे, पर अब मेरे हाथ से तेरा बचना कठिन है।

यह बात सुन जो श्रीकृष्णचन्द्रजी ने इतना कहा रे मूर्ख, अभिमानी ! कायर ! क्रूर । क्षत्रिय जो है गम्भीर शूरवीर, वे पहले किसी से बड़ा नहीं बोलते । इतना सुन उसने दौड़कर हरि पर एक गदा क्रोध कर चलाई । सो प्रभु ने सहज स्वभाव ही काट गिराई । पुनि श्रीकृष्णजी ने उसके एक गदा मारी वह खाय माया की ओट में जाय दो घड़ी मूर्छित हुआ । फिर कपट रूप बनाय प्रभु के सन्मुख आय बोला—

दोहा—माय तुम्हारी देवकी, पठयो मोय अकुलाय ।।
शत्रु शल्य वसुदेव को, पकरै लीये जाय ।।

महाराज ! वह असुर ऐसे कह वहाँ से जाय, माया का बसुदेव बनाय, बाँध लाया और श्रीकृष्णजी के सोंही आय बोला, रे कृष्ण ! देख तेरे पिता को बाँध तुझे मार एकक्षत्र राज करूँगा । महाराज ! ऐसे कह उसने माया के बसुदेव का सिर श्रीकृष्णचन्द्र जी के देखते-देखते काट डाला । बरछी के फल पर रख सबको दिखाया । वह माया का चरित्र देख पहले प्रभु को मूर्छा आई । पुनि देह सम्हाल मन ही मन कहने लगे कि ये क्यों कर हुआ जो यह बसुदेव जी को बलरामजी के रहते हुए द्वारिका से पकड़ लाया । क्या वह उससे भी बली है जो उनके सन्मुख से बसुदेवजी को निकाल लाया ? महाराज ! इसी भाँति की अनेक बातें कितनी एक बेर लग आसुरी माया में आय प्रभु ने की और महाभावित रहे । निदान, ध्यान कर प्रभु ने देखा तो आसुरी माया का भेद पाया । तो श्रीकृष्णचन्द्रजी ने उसे ललकारा । यह सुन वह आकाश को गया और लगा वहाँ से प्रभु पर शस्त्र चलाने । इसी बीच श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कई एक बाण ऐसे मारे कि वह रथ समेत समुद्र में गिरा, गिरते ही सँभल, गदा ले प्रभु पर झपटा । तब तो हरि ने उसे क्रोध कर सुदर्शन चक्र से मार गिराया, ऐसे कि जैसे कि सुरपति ने बृत्रासुर को मार गिराया था । महाराज ! उसके गिरते ही उसके शीश की मणि निकल पृथ्वी पर गिरी और ज्योति श्रीकृष्णजी के मुख में समाई ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का शाल्व वध नाम का सतत्तरवाँ अध्याय ।।७७।।

अध्याय—७८

श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा ! अब मैं शिशुपाल के भाई दन्तवक्र और विदूरथ की कथा कहता हूँ । जब से शिशुपाल मारा गया तब से वे दोनों श्रीकृष्णजी से अपने भाई का पलटा लेने का विचार किया करते थे । निदान, शाल्व और प्रद्युमान के मरते ही वे अपना सब कटक ले द्वारिकापुरी पर चढ़ आये, और चारों ओर से घेरने व अनेक प्रकार के मन्त्र और शस्त्र चलाने लगे ।

परी नगर कोलाहल भारी । सुनि पुकार रथ चढ़े मुरारी ।।

आगे श्रीकृष्णचन्द्रजी नगर के बाहर जाय, वहाँ खड़े हुए कि जहाँ अति कोप किये शस्त्र लिये वे दोनों असुर लड़ने को उपस्थित थे । प्रभु को देखते ही दन्तवक्र महा अभिमान

कर बोला कि रे कृष्ण ! तू पहले अपना शस्त्र चलाय ले । पीछे से मैं तुझे मारूँगा । इतनी बात मैंने इसलिए कही कि मरते समय तेरे मन में अभिलाषा न रहै कि मैंने दन्तवक्र पर प्रहार न किया । तूने तो बड़े-बड़े बली मारे हैं । पर अब मेरे हाथ से जीता न बचेगा । महाराज ! ऐसे कितने एक दुष्ट वचन कह, दन्तवक्र ने प्रभु पर गदा चलाई । सो हरि ने सहज ही काट गिराई । पुनि दूसरी गदा ले हरि से महायुद्ध करने लगा । तब तो भगवान् ने उसे मार गिराया और उसका तेज निकल प्रभु के मुख में समाया । आगे दन्तवक्र का मरना देख विदूरथ ज्यों युद्ध करने को चढ़ आया त्यों ही श्रीकृष्णजी ने सुदर्शन चक्र चलाया । विदूरथ का शिर मुकुट कुण्डल समेत काट गिराया । पुनि, असुर दल को मार भगाया ।

पुनि सब बोले कि हे महाराज ! आपकी लीला अपरम्पार है । कोई उसका भेद नहीं जानता । प्रथम हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष भये । पीछे रावण और कुम्भकर्ण भये । अब यह दन्तवक्र और शिशुपाल हो आये । तुमने तीनों बेर इन्हें मारा और परम मुक्ति दी । इससे तुम्हारी गति कुछ किसी से जानी नहीं जाती, महाराज ! इतनी कथा कह देवता तो प्रभु को प्रणाम कर चले गये और हरि बलरामजी कहने लगे कि भाई कौरव और पाण्डवों से हुई लड़ाई, अब क्या करें । बलदेवजी बोले कृपा कर आप हस्तिनापुर को पधारिये । तीर्थ-यात्रा कर पीछे से मैं भी आता हूँ । इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! यह वचन सुन श्रीकृष्णचन्द्र कुरुक्षेत्र को पधारे जहाँ कौरव और पाण्डव महाभारत युद्ध करते थे और बलराम जी तीर्थ यात्रा को निकले । सब तीर्थ करते-करते बलदेवजी नैमिषारण्य में पहुँचे तो वहाँ क्या देखते हैं कि एक ओर ऋषि मुनि यज्ञ रच रहे हैं और एक ओर ऋषि मुनियों की सभा में सिंहासन पर बैठ सूतजी कथा बाँच रह हैं । इनको देखते ही शौनकादिक सब ऋषि मुनियों ने उठकर प्रणाम किया और सूतजी सिंहासन पर गद्दी लगाय बैठा देखता रहा । महाराज ! सूतजी के न उठने पर बलरामजी ने शौनकादिक सब ऋषि-मुनियों से कहा कि इस मूर्ख को किसने वक्ता किया और व्यास आसन दिया ? वक्ता चाहिये भक्ति, मन्त्र, विवेकयुक्त और ज्ञानी, यह है गुण हीन कृपण और अति अभिमानी । पुनि, चाहिये निर्लोभी और परमार्थी, यह है महा लोभी और अपस्वार्थी । ज्ञानहीन अविवेकी को यह व्यास गद्दी फबती नहीं । इसे मारें तो क्या, पर यहाँ से निकाल देना चाहिये । इस बात के सुनते ही शौनकादिक बड़े-बड़े ऋषि आय, विनती कर बोले कि महाराज ! तुम हो वीर, धीर, सकल धर्म नीति के जानने वाले, और यह है कायर और अविवेकी, अभिमानी, अज्ञानी, इसका अपराध क्षमा कीजे; क्योंकि यह इस व्यास गद्दी पर बैठा है, ब्रह्मा ने यज्ञ धर्म के लिए यहाँ उपस्थित किया है ।

आसन गर्व मूढ़ मति धर्‌यो । उठ परनाम मोहि नहिं कर्‌यो ॥
यही नाथ याको अपराधु । परी चूक है तो यह साधु ॥
सूतहिं मारे पातक होय । जग में भलौ कहै नहिं कोय ॥
निस्फल वचन न जाय तिहारो । यह तुम निज मनमाँहि विचारो ॥

महाराज ! इतनी बात के सुनते ही बलराम जी ने एक कुश उठाय, सहज स्वभाव

से सूत को मारा । उसके लगते ही वह गिर गया । यह चरित्र देख शौनकादिक मुनि ऋषि

हाहाकार कर, उदास हो बोले कि महाराज ! जो बात होनी थी सो हुई, पर आप कृपाकर हमारी चिन्ता मेटिये । प्रभु बोले तुम्हें किस बात की इच्छा है सो तुम कहो, हम पूरी करें । मुनियों ने कहा महाराज ! हमारे यज्ञ करने में किसी बात का विघ्न न हो, यही हमारी प्रार्थना है, सो आप पूरी कीजै और जगत में यश लीजै । इतना वचन मुनियों के मुख से निकलते ही अन्तर्यामी बलरामजी ने सूत के पुत्र को बुलाय व्यास गद्दी पर बैठाय के कहा कि यह अपने बाप से अधिक बुद्धिमान होगा और मैंने इसे अमर पद दे चिरंजीव किया । अब तुम निश्चन्ताई से यज्ञ करो ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का अट्ठहत्तरवाँ अध्याय ।।७८।।

अध्याय–७९

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! बलरामजी की आज्ञा पाय शौनकादिक सब मुनि अति प्रसन्न हो यज्ञ करने लगे । तब इल्वल का बेटा आय महा क्रोध कर बादल सम गर्ज, बड़ी भयंकर अति काली आँधी चलाने लगा और आकाश से रुधिर और मल मूत्र वर्षाने लगा तथा अनेक-अनेक उपद्रव उसने मचाये । महाराज ! राक्षस की यह अनीति देख बलदेव ने हलमूसल का आवाहन किया । वे आय उपस्थित हुए । पुनि महाक्रोध कर प्रभु ने इल्वल को हल से खैंच एक मूसल उसके सिर पर ऐसा मारा कि––

फट्यो मस्तक छूटे प्रान । रुधिर प्रवाह भयो तिहि थान ।।
कर भुज डार पड्यो विकरार । निकरे लोचन राते पार ।।

इल्वल के मरते ही सब मुनियों ने अति सन्तुष्ट हो बलदेव जी की पूजा की और बहुत-सी वस्तु भेंट दी । फिर बलराम सुखधाम वहाँ से बिदा हो तीर्थ यात्रा को निकले, तो महाराज ! सब तीर्थ कर पृथ्वी की प्रदक्षिणा करते-करते वहाँ पहुँचे जहाँ कि कुरुक्षेत्र में

दुर्योधन और भीमसेन गदायुद्ध करते थे और पाण्डवों समेत श्रीकृष्णचन्द्रजी और बड़े-बड़े राजा खड़े देखते थे। बलरामजी के जाते ही दोनों ने प्रणाम किया। एक ने गुरु जान दूसरे ने बन्धु मान। महाराज! दोनों को लड़ता देख बलरामजी बोले--

सुभट समान प्रवल दोऊ वीर। अव संग्राम तजहु तुम धीर।।
कुरु पाण्डव को राखहु वन्श। वन्धु मित्र सव गये विधंश।।
दोऊ सुनि बोले सिर नाय। अव रण से उतर्यौ नहिं जाय।।

पुनि दुर्योधन बोला कि गुरुदेव! मैं आपके सन्मुख झूंठ नहीं भाषता। आप मेरी बात मन दे सुनिये। यह जो महाभारत युद्ध होता है और जो लोग मारे गये हैं, सो तुम्हारे भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी के मत से। पाण्डव केवल श्रीकृष्णजी के बल से लड़ते हैं, नहीं तो इनकी क्या सामर्थ्य थी जो ये कौरवों से लड़ते। ये तौ हरि के वश ऐसे हो रहे हैं कि जैसे काठ की पुतली नटुए के वश होय। जिधर वह चलावें तिधर चलें। उनको यह उचित न था जो पाण्डवों की सहायता करें और हमसे इतना द्वेष करें। दुःशासन की भीमसेन से भुजा उखड़वाई और मेरी जाँघ में गदा लगवाई, तुम से अधिक हम क्या कहैं इस समय---

जो हरि करै सोई सव होय, ये वातें जाने सव कोय।

यह वचन दुर्योधन के मुख से सुनते ही श्रीयुत बलराम जी श्रीकृष्णचन्द्रजी के निकट आये कि तुम भी उपाधि कराने में कुछ घाट नहीं और बोले कि भाई तुमने ये क्या किया, जो युद्ध करवा के दुःशासन की भुजा उखड़वाई और दुर्योधन की जाँघ कटवाई। यह धर्म युद्ध की रीति नहीं है कि कोई बलवान हो और किसी की भुजा उखाड़े और कटि के नीचे अस्त्र चलावे। हाँ, धर्म युद्ध यह है कि एक दूसरे को ललकार सन्मुख शस्त्र करे। श्रीकृष्ण-चन्द्र बोले भाई! तुम नहीं जानते, ये कौरव बड़े अधर्मी अन्याई हैं। इनकी अनीति कुछ कही नहीं जाती। पहले इन्होंने दुःशासन, शकुनी, भगदत्त के कहे से जुआ में कपट कर राजा युधिष्ठिर का सर्वस्व जीत लिया। दुःशासन द्रौपदी का हाथ पकड़ लाया इससे उसके हाथ भीमसेन ने उखाड़े। दुर्योधन ने सभा के बीच द्रौपदी से जाँघ पर बैठने को कहा, इससे उसकी जाँघ तोड़ी गई। इतना कह पुनि श्रीकृष्णचन्द्र बोले भाई तुम नहीं जानते, इसी भाँति की जो अनीति कौरवों ने पाण्डवों के साथ की है सो हम कहाँ तक कहें। इससे यह--महाभारत की आग किसी रीति से न बुझेगी। तुम इसका कुछ उपाय मत करो। महाराज! इतने वचन प्रभु के मुख से निकलते ही बलरामजी कुरुक्षेत्र से चले द्वारिकापुरी में आये और उग्रसेन राजा शूर सेन से भेट कर हाथ जोड़ कहने लगे कि महाराज! आपके पुण्य प्रताप से हम तीर्थयात्रा तो कर आये पर एक अपराध हमसे हुआ। राजा उग्रसेन बोले सो क्या? बलरामजी ने कहा महाराज! नैमिषारण्य में जाय हमने सूत को मारा जिसकी हत्या लगी है। अब आपकी आज्ञा होय तो पुनि नैमिषारण्य में जाय यज्ञ के दर्शन कर, फिर तीर्थ में न्हाय, हत्या का पाप मिटाय आवें। पीछे ब्राह्मण भोजन करवाय, जाति को जिमावें। जिससे जग में यश पावें। राजा उग्रसेन बोले अच्छा आप हो आइये। महाराज! की आज्ञा पाय बलरामजी कितने एक यदुवंशियों को साथ ले नैमिषारण्य क्षेत्र में जाय, स्नान दानकर, शुद्ध हो,

आय पुनि पुरोहित को बुलाय, होम करवाय, ब्राह्मण जिमाय, जाति को खिलाय, लोक रीति कर पवित्र हुए। इतनी कथा कह श्री शुकदेवजी बोले कि महाराज!

जो यह चरित सुने मन लाय। ताके सारे पाप नसाय।।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का उन्नासीवाँ अध्याय ।।७९।।

अध्याय—८०

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज! अब मैं सुदामा की कथा कहता हूँ कि जैसे वह प्रभु के पास गया और उसका दरिद्र कटा सो मन दे सुनों। दक्षिण दिशा की ओर है एक द्रविड देश, यहाँ विप्र और वणिक बसते थे नरेश! जिनके राज्य में घर-घर होता था भजन सुमिरण और हरि का ध्यान पुनि सब करते थे, तप, यज्ञ, धर्म, और साधु, सन्त, गौ, ब्राह्मण का सन्मान।

ऐसे वसें सबै तिहि ठौर। हरि विन कछू न जाने और।।

तिसी देश में सुदामा नाम का ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्र का गुरु भाई अति दीन, धन हीन, तन छीन, महा दरिद्र, ऐसा कि जिसके घर में ग्रास तक खाने को कुछ पास न रहता था। एक दिन सुदामा की स्त्री निर्धनता से अति घबड़ाय, महादुख पाय, पति के निकट जाय, अति भय खाय, डरती, काँपती, बोली कि महाराज! अब इस दरिद्र के हाथ से महा दुख पाती हूँ। जो अब इसे धोया चाहिये, तो मैं एक उपाय बताऊँ। ब्राह्मण बोला सो क्या? उसने कहा तुम्हारे परम मित्र त्रिलोकीनाथ द्वारिकावासी श्रीकृष्णचन्द्र, आनन्दकन्द हैं। जो उनके पास जाओ तो यह दरिद्र जाय। क्योंकि वे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष के दाता हैं महाराज! जब ब्राह्मणी ने ऐसे समझाय के कहा तब सुदामा बोले कि हे प्रिय! बिना दिये

श्रीकृष्णचन्द्रजी भी किसी को कुछ नहीं देते । मैं भली भाँति से जानता हूँ कि जन्म भर मैंने किसी को कभी कुछ नहीं दिया । बिना दिए कहाँ से पाऊँगा । हाँ, तेरे कहने से जाऊँगा, तो श्रीकृष्णचन्द्रजी के दर्शन कर आऊँगा । इस बात के सुनते ही ब्राह्मणी ने अति पुराने, स्वेत वस्त्र में थोड़े से चावल बाँध ला दिये । प्रभु की भेंट के लिये और डोर लोटा और लाठी ला आगे धरी । तब सुदामा डोर लोटा काँधे पर डाल, चावल की पोटली काँख में दबाय, लाठी हाथ में ले, श्रीगणेश को मनाय, श्रीकृष्णचन्द्रजी का ध्यान धर, द्वारिकापुरी को पधारे । महाराज ! बाट में चलते चलते सुदामा मन ही मन कहने लगा कि भला धन तो मेरे प्रारब्ध में नहीं, पर द्वारिका जाने से श्रीकृष्णचन्द्र जी आनन्दकन्द का दर्शन करूँगा । इसी भाँति सोच विचार करता सुदामा तीन पहर के बीच द्वारिकापुरी में पहुँचा, तो क्या देखता है कि नगर के चारों ओर समुद्र है और बीच में पुरी । वह पुरी कैसी है कि, जिसके चहुँओर बन-उपवन, फूल फल रहे हैं, तड़ाग, बापी, इन्दारों पर रहटैं परोहे चल रहे हैं, ठौर ठौर गायों के यूथ चर रहे हैं, तिनके साथ ग्वाल बाल न्यारे ही कौतूहल कर रहे हैं ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! सुदामा उपवन की शोभा निरख पुरी के भीतर जाय देखे तो कंचन के मणिमय मन्दिर महा सुन्दर जगमगा रहे हैं । ठाँव-ठाँव अथाइयों में यदुवंशी इन्द्र की सी सभा किए बैठे हैं । हाट बाट चौहाटों पर नाना प्रकार की वस्तु बिक रही हैं । घर-घर जिधर तिधर गौ दान, हरि भजन, और प्रभु का यश हो रहा है, और सारे नगर निवासी महा आनन्द में हैं । महाराज ! यह चरित्र देखता-देखता और श्रीकृष्णजी को पूछता-पूछता सुदामा प्रभु की सिंह पौर पर खड़ा हुआ । वहाँ किसी से डरते-डरते पूछा कि श्रीकृष्णचन्द्रजी कहाँ विराजते हैं, उसने कहा कि देवता आप मन्दिर के भीतर जावो, सन्मुख श्रीकृष्णजी रत्नसिंहासन पर बैठे हैं । महाराज ! इतना वचन सुन सुदामा जी भीतर गये तो देखते ही श्रीकृष्णचन्द्रजी सिंहासन से उतर आये व भेंट कर, अति प्यार से हाथ पकड़ उसे ले गये । पुनि सिंहासन पर बैठाय पाँव धोय चरणामृत लिया । आगे चन्दन, अक्षत, लगाय, पुष्प चढ़ाय, धूप दीप से प्रभु ने सुदामा की बड़े ही आदर भाव से पूजा की ।

इतना हरि करि जोरे हाथ । कुशल क्षेम पूँछत यदुनाथ ।।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा से कहा कि महाराज ! यह चरित्र देख रुक्मिणी समेत आठों पटरानियाँ और सब यदुवंशी जो उस समय वहाँ थे मन ही मन यों कहने लगे कि इस दरिद्री, दुर्बल, मलीन वस्त्रहीन ब्राह्मण ने ऐसा क्या अगले जन्म में पुण्य किया जो त्रिलोकीनाथ ने इसे इतना मान दिया । महाराज ! अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र उस काल सबके मन की बात समझ कर, उनका सन्देह मिटाने को सुदामा से गुरु के घर की बातें करने लगे कि, भाई ! तुम्हें वह सुध है जो एक दिन गुरु पत्नी ने ईंधन लेने को भेजा था और जब वन में ईंधन ले गठरिया बाँध सिर पर धर घर को चले, तब आँधी और मेह आया और लगा मूसला धार जल बरसने । जल थल चारों ओर भर गये । हम तुम भीग कर महादुख पाय जाड़ा खाय, रात भर लुक के वृक्ष के नीचे रहे । भोर ही गुरुदेव ढूँढ़ते-ढूँढ़ते बन में आये । और अति करुणा कर आशीष दे हमें तुम्हें साथ घर लिवाय लाये ।

इतनी कथा कह श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले कि भाई जब से तुम गुरुदेव के यहाँ से बिछुड़े तब से हमने तुम्हारा समाचार न पाया कि कहाँ थे और क्या करते थे । अब आय दर्शन दिखाय तुमने हमें महासुख दिया और घर पवित्र किया । सुदामा बोला हे कृपासिन्धु, दीनबन्धु, स्वामी, अन्तर्यामी, तुम सबके मन की जानों हो । कोई बात संसार में ऐसी नहीं जो तुम से छिपी है ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का श्रीकृष्ण-सुदामा मिलन नाम का अस्सीवाँ अध्याय ।।८०।।

अध्याय—८१

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्रजी ने सुदामाजी की बात सुन और उनके मनोरथ समझ, हँसकर कहा कि भाई भाभी ने हमारे लिए क्या भेंट भेजी है, सो देते क्यों नहीं । काँख में किस लिए दबाय रखी है । यह वचन सुन सुदामा तो, सकुचाय सिर झुकाय रहा, और प्रभु ने उठ चिउड़ा की पोटली उसकी काँख से निकाल ली । पुनि खोल उसमें से अति रुचिकर दो मुट्ठी चावल खाये और ज्यों ही तीसरी मुट्ठी भरी त्यों ही रुक्मिणी ने हरि का हाथ पकड़ा और कहा कि महाराज ! आपने दो लोक इसे दे दिये आप अपने रहने को कोई ठौर रखोगे कि नहीं । ये ब्राह्मण सुशील, कुलीन, अति वैरागी, महा त्यागी सा दृष्टि आता है । क्योंकि इसे वैभव पाने में कुछ हर्ष न हुआ । इससे मैंने जाना कि, ये लाभ हानि समान जानते हैं । न उन्हें जाने का सोच न पाने की प्रसन्नता है । इतनी बात रुक्मिणी के मुख से निकलते ही श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कहा कि हे प्रिये ! ये मेरा परम मित्र है । इसके गुण मैं कहाँ तक बखानूँ । यह सर्वदा मेरे स्नेह में मग्न रहता है और उसके आगे संसार के सुख को तृणवत समझता है । इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने कहा कि महाराज ! ऐसे अनेक प्रकार की बातें कर प्रभु रुक्मिणी को समझाय, सुदामा को मन्दिर में लिवा ले गये और षटरस भोजन करवाय, पान खिलाय, हरि ने सुदामा को सुन्दर सेज पर बैठाया । वह पथ का हारा थका तो था ही सेज पर सुख पाय सो गया ।

प्रभु ने विश्वकर्मा को बुलाय समझाय के कहा कि तुम अभी जाय सुदामा के मन्दिर अति सुन्दर कंचन रतन के बनाय, तिनमें अष्टसिद्धि नवनिद्धि धर आओ, जो इसे किसी बात की इच्छा न रहे । इतना वचन प्रभु के मुख से निकलते ही विश्वकर्मा वहाँ जाय, बात की बात में महल बनाय आया और सुदामा हरि के पास विदा होने गया, उस समय श्रीकृष्णचन्द्रजी मुख से तो कुछ न बोल सके पर प्रेम में मग्न हो आँखें डबडबाय शिथिल हो देख रहे । सुदामा विदा हो प्रणाम कर अपने घर को चला और पन्थ में जाय मन ही मन विचार करने लगा, भला किया जो मैंने हरि से कुछ न माँगा । जो उनसे कुछ माँगता तो वे देते तो सही, पर मुझे लोभी लालची समझते । कुछ चिन्ता नहीं, ब्राह्मणी को मैं समझा दूँगा । श्री कृष्णचन्द्रजी ने मेरा अति सन्मान किया और मुझे निर्लोभी जाना । यही मुझे बहुत है महाराज ! ऐसे सोच विचार करता-करता सुदामा अपने गाँव आया तो क्या देखता है कि न गाँव है न वह टूटी मढ़ैया । वहाँ तो एक इन्द्रपुरी सी बसी है । देखते ही सुदामा अति दुखित हो कहने लगा कि हे नाथ !

तुमने यह क्या किया । एक दुख तो था ही, दूसरा और दिया । यहाँ से मेरी झोंपड़ी क्या हुई और ब्राह्मणी कहाँ गई । किससे पूछूँ और कहाँ ढूँढूँ ? इतना कह द्वार पर जाय सुदामा ने द्वारपाल से पूछा कि यह मन्दिर किसका है ? तब द्वारपाल ने कहा कि श्रीकृष्णजी के मित्र सुदामाजी का । यह बात सुन जो सुदामा कुछ कहने को हुआ तो भीतर से देख उसकी ब्राह्मणी अच्छे वस्त्र आभूषण पहन नख शिख से श्रृंगार किये पान खाय, सुगन्धि लगाय सखियों को साथ लिये पति के निकट आई ।

पायन परि पाटम्वर डारे । हाथ जोरि के वचन उचारे ।।
ठाढ़े क्यों मन्दिर पग धारौ । मन से सोच करौ तुम न्यारौ ।।
तुम पीछे विश्वकर्मा आये । तिन मन्दिर पल माँहि वनाये ।।

महाराज ! इतनी बात ब्राह्मणी के मुख से सुन, सुदामाजी मन्दिर में गये और अति वैभव देख महा उदास भये । ब्राह्मणी बोली स्वामी धन पाय लोग प्रसन्न होते हैं, तुम उदास, इसका क्या कारण है, सो कृपा कर कहिये जो मेरे मन का सन्देह जाय । सुदामा बोला कि हे प्रिये ! यह माया बड़ी ठगनी है । इसने सारे संसार को ठगा है, ठगती है और ठगेगी । प्रभु ने मुझे दी और मेरे प्रेम की प्रतीत न की । मैंने उनसे कब माँगी थी जो उन्होंने मुझे दी । इसी से मेरा चित्त उदास है । ब्राह्मणी बोली स्वामी । तुमने तो श्रीकृष्णचन्द्रजी से कुछ न माँगा था । पर अन्तर्यामी घट घट की जानते हैं । मेरे मन में धन की वासना थी, सो प्रभु ने पूरी की । तुम अपने मन में कुछ मत समझो ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज ! इस प्रसङ्ग को जो सदा सुने, सुनावेगा, सो जन संसार में आय दुःख कभी न पावेगा और अन्त काल में बैकुण्ठ धाम जाय, सुख पावेगा ।

इति श्री लल्लूलालकृत प्रेमसागर का सुदामा दरिद्र हरण नाम का इक्यासीवां अध्याय ।।८१।।

अध्याय—८२

श्रीशुकदेवजी बोले कि राजन् ! अब मैं प्रभु के कुरुक्षेत्र जाने की कथा कहता हूँ । तुम चित्त दे सुनो कि जैसे द्वारका से सब यदुवंशियों को साथ ले श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम-जी सूर्यग्रहण नहाने कुरुक्षेत्र गये । राजा ने कहा महाराज ! आप कहिये मैं मन दे सुनता हूँ । पुनि, शुकदेवजी बोले कि महाराज ! एक समय सूर्यग्रहण का समाचार पाय श्रीकृष्ण-चन्द्र और बलदेवजी ने राजा उग्रसेन के पास जाय कहा कि महाराज ! बहुत दिन पीछे सूर्य-ग्रहण आया है । जो इस पर्व समय पर कुरुक्षेत्र में दान पुण्य करिये तो सहस्र गुण होय । इतनी बात के सुनते ही यदुवंशियों ने श्रीकृष्णजी से पूछा कि महाराज ! कुरुक्षेत्र ऐसा तीर्थ कैसे हुआ ! सो कृपाकर हमको समझाय के कहो ? श्रीकृष्ण बोले कि सुनो ! जमदग्नि ऋषि बड़े ज्ञानी व तपस्वी थे । तिनके तीन पुत्र हुए । उनमें बड़े थे परशुराम । सो वैराग्य ले, घर छोड़ चित्रकूट जाय रहे और सदाशिवजी की तपस्या करने लगे । लड़कों के होते ही

जमदग्नि ऋषि गृहस्थाश्रम छोड़ वैराग्य ले, स्त्री सहित बन में जाय कर तप करने लगे। उनकी स्त्री का नाम रेणुका था। सो एक दिन अपनी बहन को नौतने गई। उसकी बहन राजा सहस्रार्जुन की स्त्री थी। नौता देते ही अहङ्कार कर राजा सहस्रार्जुन की रानी रेणुका की बहन यों हँसकर बोली बहन! तुम हमें हमारे कटक समेत जिमाय सको तो नौता दो, नहीं तो न दो। यह बात सुन रेणुका अपना मुँह ले चुप चाप वहाँ से उठ अपने घर आई। इसे उदास देख जमदग्नि ऋषि ने पूछा कि आज क्या है जो तू अनमनी हो रही है? महाराज! बात के पूछते ही रेणुका ने रोकर सब ज्यों की त्यों बात कही। सुनते ही जमदग्नि ऋषि ने स्त्री से कहा कि अच्छा तू जाय के अभी अपनी बहिन को कटक समेत नौत आ। पति की आज्ञा पाय रेणुका बहन के पास आई। उसकी बहन ने अपने स्वामी से कहा कि कल तुम्हें हमें दल समेत जमदग्नि के यहाँ भोजन करने जाना है। स्त्री की बात सुनकर वह हँस चुप हो रहा। भोर होते ही जमदग्नि उठकर राजा इन्द्र के पास गये और कामधेनु माँग लाये। पुनि, सहस्रार्जुन को बुलाय लाये। वह कटक समेत आया। तिसे जमदग्नि ने इच्छा भर भोजन खिलाया। कटक समेत भोजन कर राजा सहस्रार्जुन अति लज्जित हुआ और मन ही मन कहने लगा कि इसने इतने लोगों की सामग्री रात भर में कहाँ से पाई और कैसे बनाई? इसका भेद कुछ नहीं जाना जाता। इतना कह बिदा होय उसने घर जाय एक ब्राह्मण को जमदग्नि ऋषि के घर भेजा कि इसका भेद लावो कि उसने किसके बल से एक दिन के बीच मुझे कटक समेत नौत जिमाया! इतनी बात के सुनते ही ब्राह्मण ने भेद पाय सहस्रार्जुन से कहा कि महाराज! उसके घर में कामधेनु गौ है। उसी के प्रभाव से तुम्हें एक दिन में नौत जिमाया। यह समाचार पाय सहस्रार्जुन ने उसी ब्राह्मण से कहा देवता! तुम जाय हमारी ओर से जमदग्नि ऋषि से कहो कि सहस्रार्जुन ने गाय माँगी है। इस बात के सुनते ही वह ब्राह्मण सन्देशा ले ऋषि के पास गया और उसने सहस्रार्जुन की बात कही। ऋषि बोले कि यह गाय हमारी नहीं जो हम दें। यह तो राजा इन्द्र की है इसे हम नहीं दे सकते। तुम जाय अपने राजा से कहो। इस बात के सुनते ही ब्राह्मण ने राजा सहस्रार्जुन से कहा कि महाराज! ऋषि ने कहा है कि कामधेनु हमारी नहीं, यह तो राजा इन्द्र की है। उसे हम नहीं दे सकते। इतनी बात ब्राह्मण के मुख से निकलते ही सहस्रार्जुन ने अपने कितने एक योद्धाओं को बुलाय के कहा तुम अभी जाय जमदग्नि के घर से कामधेनु को खोल लाओ। यह आज्ञा पाय योद्धा ऋषि स्थान पर गये और कामधेनु को खोल, जमदग्नि के घर से चले तो ऋषि ने दौड़ कर बाट में जाय कामधेनु को रोका। समाचार पाय क्रोध कर सहस्रार्जुन ने ऋषि को काट डाला। कामधेनु भाग इन्द्र के यहाँ चली गई। रेणुका आय मृतक पति के आगे खड़ी भई!

उस काल रेणुका का बिलखना, विलाप करना और रोना सुन दसों दिशा के दिग्पाल काँप उठे और परशुरामजी का तप करते आसन डिगा और ध्यान छूटते ही ज्ञान कर परशुरामजी अपना कुठार ले वहाँ आये जहाँ पिताकी लाश पड़ी थी और माता खड़ी रोती थीं। देखते ही परशुरामजी को महाक्रोध हुआ। इतने में रेणुका ने पति के मारे जाने का सब भेद पुत्र को रो-रो कह सुनाया। यह सुनते ही परशुरामजी इतना कह कि माता पहले मैं अपने पिता के

बैरी को मार आऊँ तब आय पिता को उठाऊँगा, सहस्रार्जुन की सभा में पहुँचे। उसे देखते ही परशुराम कोप कर बोले--

अरे क्रूर कायर कुल द्रोही। तात मारि दुख दीन्हों मोही ।।

ऐसे कह जब फरसा ले परशुरामजी महा क्रोध में धाये, तब वह भी धनुष बाण ले इनक सों ही खड़ा हुआ। दोनों बली महायुद्ध करने लगे। निदान, लड़ते-लड़ते परशुराम ने चार घड़ी के बीच सहस्रार्जुन को मार गिराया। पुनि उसका कटक चढ़ आया तिसे भी उन्होंने उसी के पास काट डाला। फिर वहाँ से आय पिता की गति करी और माता को समझाय पुनि, उसी ठौर परशुरामजी ने रुद्र यज्ञ किया। तभी से वह स्थान कुरुक्षेत्र कह कर प्रसिद्ध हुआ। वहाँ जाकर जो कोई दान, स्नान, तप, यज्ञ करता है उसका सहस्र गुना फल होता है।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! इस प्रसंग के सुनते ही सब यदुवंशियों ने प्रसन्न हो श्रीकृष्णचन्द्रजी से कहा कि महाराज! शीघ्र कुरुक्षेत्र को चलिये, अब विलम्ब न करिये क्योंकि पर्व पर पहुँचना चाहिये। बात के सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजी ने राजा उग्रसेन से पूछा कि महाराज! सब कोई कुरुक्षेत्र चलेंगे। यहाँ पुरी की चौकसी कौन करे? राजा उग्रसेन ने कहा अनिरुद्ध को रख चलिये। राजा की आज्ञा पाय प्रभु ने अनिरुद्धजी को बुलाय समझा कर कहा कि बेटा तुम यहाँ रहौ। गौ, ब्राह्मण की रक्षा करौ और प्रजा को पालौ। हम राजाजी के साथ सब यदुवंशियों को ले कुरुक्षेत्र नहाय आवें। अनिरुद्धजी ने कहा जो आज्ञा महाराज! एक अनिरुद्धजी को पुरी की रखवारी में छोड़ शूरसेन, बसुदेव, उद्धव, अक्रूर, कृतवर्मा आदि छोटे-बड़े यदुवंशी राजा उग्रसेन के साथ कुरुक्षेत्र चलने को उपस्थित हुए। प्रभु के पहुँचते ही राजा उग्रसेन ने वहाँ से डेरा उठाया। राजा ने इन्द्र की भाँति बड़ी धूम धाम से आगे को प्रस्थान किया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज! कितने एक दिनों में चले-चले श्रीकृष्णचन्द्र सब यदुवंशियों समेत आनन्द मङ्गल से कुरुक्षेत्र में पहुँचे। वहाँ जाय पर्व में सब ने स्नान किया और यथाशक्ति हर एक ने हाथी, घोड़ा, रथ, पालकी अस्त्र, शस्त्र, आभूषण, अन्न, धन, दान दिया। पुनि, वहाँ सबों ने डेरा डाला। महाराज! श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजी के कुरुक्षेत्र के जाने का समाचार पाय चारों ओर के राजा कुटुम्ब सहित अपनी-अपनी सब सेना ले ले वहाँ जाय और श्रीकृष्ण बलरामजी से मिले। पुनि सब कौरव पाण्डव भी अपना अपना दल ले ले सकुटुम्ब वहाँ आय मिले। उस काल कुन्ती और द्रौपदी यदुवंशियों के रनवास में जाय सब से मिलीं। कुन्ती ने भाई के सन्मुख जाय कहा कि भाई! मैं बड़ी अभागी हूँ। जिस दिन से हरी गई उसी दिन से दुख उठाती हूँ। तुमने जब से ब्याह दी तब से मेरी सुधि कभी न ली और राम कृष्ण जो सब के सुख दाई, उनको भी दया कुछ न आई। महाराज! इस बात के सुनते ही करुणा कर आँखें भर बसुदेवजी बोले कि बहन! मुझे क्या कहती है। इसमें मेरा कुछ वश नहीं। कर्म की गति जानी नहीं जाती। हरि इच्छा प्रबल है। देखो कंस के हाथ मैंने भी क्या क्या दुख न पाया। महाराज! इतना कह बहन को समझाय बुझाय, वसुदेवजी वहाँ गये जहाँ सब राजा उग्रसेन की सभा में बैठे थे और राजा दुर्योधन आदि बड़े-बड़े नृप और पाण्डव उग्रसेन की ही बड़ाई करते थे कि राजा तुम बड़ भागी हो जो सदा श्रीकृष्ण-

चन्द्रजी का दर्शन पाते हो और जन्म-जन्म के पाप गँवाते हो। इतना कह श्री शुकदेवजी बोले कि महाराज! ऐसे सब राजा आय राजा उग्रसेन की प्रशंसा करते थे, और वे यथायोग्य सबका समाधान करते थे। इतने में श्रीकृष्ण बलरामजी का आना सुन नन्द उपनन्दजी सकुटुम्ब, सब गोप-गोपी ग्वाल बाल समेत, आन पहुँचे। स्नान दान से निवृत्त हो नन्दजी वहाँ गये जहाँ पुत्र सहित बसुदेवजी बिराजते थे। इन्हें देखते ही बसुदेवजी उठ कर मिले और दोनों ने परस्पर प्रेम कर ऐसे सुख माना कि जैसे कोई महान् वस्तु पाय सुख माने। आगे वसुदेवजी से नन्दरायने ब्रज की सब बातें कह सुनाईं, जैसे नन्दरायजी ने श्रीकृष्ण बलराम को पाला था, महाराज! इस बात के सुनते ही वसुदेवजी के नयनों में नीर भर गया और वे नन्दजी का मुख देखते रह गये। उस काल श्रीकृष्ण बलरामजी प्रथम नन्द यशोदाजी को यथायोग्य दण्डवत कर पुनि ग्वालबालों से जाय कर मिले। जहाँ गोपियों ने आय हरि चन्द्रमुख निरख अपने नयन चकोरों को बहुत सा सुख दिया और जीवन का फल लिया।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज! बसुदेव, देवकी, रोहिणी, श्रीकृष्ण बलराम से मिले। जो कुछ प्रेम नन्द उपनन्द यशोदा गोपों ग्वालबालों ने लिया, सो मुझसे कहा नहीं जाता। वह देखते ही बनि आवे। निदान सबको स्नेह में निपट ब्याकुल देख श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले कि सुनो––

मेरी भक्ति जो प्राणी करै। भवसागर निश्चय सो तरै।।
तनमन धन तुम अर्पण कीन्हों। नेह निरन्तर मोहि कर चीन्हों।।

जैसे तेज, जल, अग्नि, पृथ्वी, आकाश का है देह में बास तैसे सब घट घट में है मेरा प्रकाश। श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज! जब श्रीकृष्णचन्द्रजी ने यह सब भेद कह सुनाया तब सब ब्रजवासियों को धीरज आया।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का वयासीवाँ अध्याय ।।८२।।

अध्याय–८३

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज! द्रौपदी और श्रीकृष्णचन्द्रजी की स्त्रियों में परस्पर बातें हुईं सो प्रसंग मैं कहता हूँ तुम सुनो। एक दिन कौरव और पाण्डवों की स्त्रियाँ श्रीकृष्णजी की रानियों के पास बैठीं और गुण गाती थीं। इसमें कुछ वार्ता जो चली तो द्रौपदी ने रुक्मिणी से कहा सुन्दरी! कह तूने श्रीकृष्णजी को कैसे पाया। श्रीरुक्मिणीजी बोलीं, मेरे पिता का तो मनोरथ था कि मैं अपनी कन्या श्रीकृष्णचन्द्रजी को दूँ और भाई ने राजा शिशुपाल के देने को किया। वह बरात ले ब्याहने को आया और श्रीकृष्णचन्द्रजी को मैंने ब्राह्मण भेज बुलवाया। ब्याह के दिन मैं जो गौरी की पूजा कर घर को चली तो श्रीकृष्णचन्द्र-जी ने सब असुर दल के बीच से मुझे उठाय के रथ में बैठाय अपनी बाट ली। तिस पीछे समाचार पाय शिशुपाल सब असुर दल ले प्रभु पर आय टूटा। सो, हरि ने सहज ही मार भगाया। पुनि, मुझे ले द्वारिका पधारे वहाँ जाते ही राजा उग्रसेन, शूरसेन, बसुदेवजी ने वेद की विधि से श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ ब्याह किया। विवाह के समाचार पाय मेरे पिता ने बहुत

सा यौतुक भिजवाय दिया । इतनी कथा कह श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज ! उसी प्रकार द्रौपदी ने सत्यभामा, जाम्बवती, कालिन्दी, भद्रा, सत्या, मित्रबृन्दा

लक्ष्मणा आदि श्रीकृष्णजी की आठ पटरानियों से पूछा और एक एक ने सब समाचार अपने अपने विवाह के ब्यौरे समेत वर्णन किये ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का तिरासीवाँ अध्याय ।।८३।।

अध्याय—८४

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! अब मैं सब ऋषियों के आने का और श्रीबसुदेवजी के यज्ञ करने की कथा कहता हूँ, तुम चित्त दे सुनो । महाराज एक दिन राजा उग्रसेन, शूरसेन, वसुदेव, श्रीकृष्ण, बलराम, सब यदुबंशियों समेत सभा किये बैठे थे और सब देश-देश के नरेश वहाँ उपस्थित थे कि इसी बीच श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के दर्शन की अभिलाषा कर व्यास, वसिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र, पराशर, भृगु, पुलस्त्य, भरद्वाज, मार्कण्डेय आदि अठ्ठासी सहस्र ऋषि वहाँ आये । तिनके साथ नारदजी आये । उन्हें देखते ही सभा सब उठ खड़ी हुई । पुनि सब दण्डवत् कर, पाटम्बर के पाँवड़े डाल, सबको सभा में ले गये । श्रीकृष्णजी ने सबको आसन पर बैठाय, पाँव धोय, चरणामृत ले लिया और सभा पर छिड़क कर फिर चन्दन, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य कर, भगवान् ने सबकी पूजा कर, परिक्रमा की । पुनि, हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हो हरि बोले कि धन्य भाग्य हमारे जो आपने आय घर बैठे दर्शन दिया । साधु का दर्शन गंगा स्नान के समान है । जिसने साधु का दर्शन पाया उसने अपने जन्म-जन्म का पाप गँवाया । इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज !

श्री भगवान वचन जब कहे । तब सब ऋषि विचारत रहे ।।

जो प्रभु ज्योतिस्वरूप और सकल सृष्टिकर्ता हो के जब यह बात कहें, तब किसी की क्या चलाई ? मन ही मन जब मुनियों ने इतना कहा तब नारदजी बोले—

सुनौ सभा तुम सब मन लाय। हरि माया जानी नहिं जाय ।।

ये आप ही ब्रह्मा हो उपजाते हैं, विष्णु हो पालते, शिव हो संहारते हैं। इनकी गति अपरम्पार है। साधुओं को सुख देने को और दुष्टों को मारने को और सनातन धर्म चलाने को बार-बार अवतार ले प्रभु आते हैं। महाराज ! जो इतनी बात कह नारदजी सभा से उठने को हुए, तो बसुदेवजी सन्मुख आय हाथ जोड़ बिनती कर बोले कि हे ऋषिराज ! मनुष्य संसार में कर्म बन्धन से कैसे छूटे सो कृपाकर कहिए महाराज ! यह बात वसुदेवजी के मुख से निकलते ही सब ऋषि मुनि नारदजी का मुख देख रहे। नारदजी ने मुनियों के मन का अभिप्राय समझकर कहा कि देवताओं तुम इस बात का अचरज मत करो। श्रीकृष्णजी की माया अति प्रबल है। इसने संसार को जीत रखा है। इसी से वसुदेवजी ने यह बात कही और दूसरे, ऐसा भी कहा है कि जो जन जिसके समीप रहता है वह उसका गुण प्रभाव और प्रताप माया के वश हो नहीं जानता उसे—

गङ्गावासी अन्तहि जाई। तज के गङ्ग कूप जल नहाई ।।
यों ही यादव भये अयाने। नाहीं कछुक कृष्ण पहिचाने ।।

इतनी बात कह नारदजी ने मुनियों के मन का सन्देह मिटाय बसुदेवजी से कहा कि महाराज ! शास्त्र में कहा है जो नर तीर्थ, दान, तप, व्रत, यज्ञ करता है सो संसार के बन्धन से छूट कर मुक्ति पाता है। इस बात के सुनते ही प्रसन्न हो बसुदेवजी ने बात की बात में सब यज्ञ की सामग्री मँगवाय उपस्थित की और ऋषियों से और मुनियों से कहा महाराज ! कृपाकर यज्ञ को प्रारम्भ कीजिये। महाराज ! बसुदेव जी के मुख से इतना वचन निकलते ही ब्राह्मणों ने यज्ञ का स्थान बनाय, सँवारा। इस बीच स्त्रियों समेत बसुदेवजी वेदी में जाय बैठे। राजा और यादव यज्ञ की टहल में आ उपस्थित हुए। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज ! जिस समय बसुदेवजी वेदी में जाय बैठे उस काल वेद की विधि से मुनियों ने यज्ञ को आरम्भ किया और लगे वेद मन्त्र पढ़-पढ़ कर आहुति देने और देवता सब भाग आय आय लेने। इतने में यज्ञ पूर्ण हुआ और बसुदेवजी ने पूर्णाहुति दे ब्राह्मणों को पीताम्बर पहिराय, अलङ्कार, रत्न, धन बहुत सा दिया, उन्होंने वेद मन्त्र पढ़-पढ़ आशीर्वाद दिया। आगे सब देश के नरेशों को भी बसुदेवजी ने पीताम्बर पहिराये और जिमाया। पुनि, उन्होंने यज्ञ की भेंट कर, विदा हो अपनी-अपनी बाट ली। महाराज ! सब राजाओं के जाते ही नारदजी समेत सारे ऋषि विदा होने लगे। उस समय की बात कुछ कहीं नहीं जाती। इधर तो यदुवंशी करुणा कर अनेक-अनेक प्रकार की बातें करते थे और उधर सब ब्रजवासी उसको बखानते। निदान बसुदेवजी श्रीकृष्ण बलरामजी ने सब समेत नन्दरायजी को समझाय बुझाय वस्त्राभूषण पहराय और बहुत सा धन दे विदा किया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! इसी भाँति श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजी पर्व नहाय यज्ञ कर सब कुटुम्ब समेत द्वारिकापुरी में आये तो घर-घर मंगल होने लगे।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का चौरासीवाँ अध्याय ।।८४।।

अध्याय–८५

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! द्वारिकापुरी के बीच एक दिन श्रीकृष्णचन्द्रजी और बलरामजी बसुदेवजी के पास गये तो, वे इन दोनों भाइयों को देख यह बात मन में विचार कर उठ खड़े हुए कि कुरुक्षेत्र में नारदजी ने कहा था कि श्रीकृष्णचन्द्रजी जगत के कर्ता, दुख हर्ता हैं और हाथ जोड़ बोले हे प्रभो ! तुम्हारी माया प्रबल है । उसने सारे संसार को भुलाय रखा है । त्रिलोकी में सुर, नर, मुनि ऐसा कोई नहीं जो उसके हाथ से बच गया हो । महाराज ! इतना कह पुनि वसुदेवजी बोले कि कृपानाथ !

कोउ ना भेद तुम्हारौ जाने । बेदन माँझ अगाध वखाने ।।
शत्रु मित्र नहिं कोऊ तिहारौ । पुत्र पिता न सहोदर प्यारौ ।।
पृथ्वी भार हरण अवतरौ । जन के हेतु भेस वहु धरौ ।।

महाराज ! ऐसे कह वसुदेव जी बोले कि हे कृपासिन्धु, दीनबन्धु ! जैसे आपने अनेक लोगों को तारा, तैसे कृपाकर मेरा भी निस्तार कीजै जो भवसागर से पार हो अनेक गुण गाऊँ । श्रीकृष्णजी बोले हे पिता तुम ज्ञानी होय पुत्रों की बड़ाई क्यों करते हो ? टुक आप आप ही मन में विचार करो कि भगवान् की लीला अपरम्पार है, उसका पार किसी ने आज तक नहीं पाया । देखो वह––

घट घट माहि ज्योति ह्वै रहै । ताही सों जग निर्गुण कहै ।।
आपहि सिरजे आपहि रहै । रहे मिल्यो बाँध्यौ नहिं परै ।।

महाराज ! इतनी बात श्रीकृष्णजी के मुख से निकलते ही बसुदेवजी मोह वश होय, चुप कर हरि का मुख देखते रहे । तब प्रभु वहाँ से चले माता के निकट गये तो, पुत्र का मुख देखते ही देवकीजी बोलीं, हे कृष्णचन्द्र ! एक दुख मुझे जब तब सालता है, प्रभु बोले सो क्या ? देवकी जी ने कहा कि पुत्र ! तुम्हारे छैः बड़े भाई जो कंस ने मार डाले हैं, उनका दुख मेरे मन से नहीं जाता ।

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! बात के सुनते ही श्रीकृष्णजी इतनी कह पातालपुरी को गये कि माता ! तुम अब मत कुढ़ो । मैं अपने भाइयों को अभी जाय ले आता हूँ । प्रभु के जाते ही समाचार पाय राजा बलि आय अति धूमधाम से पाटम्बर पाँवड़े डाल निज मन्दिर में लिवाय ले गया । आगे सिंहासन पर बिठाय, राजा बलि ने चन्दन, अक्षत, पुष्प, चढ़ाय धूप दीप से श्रीकृष्णजी की पूजा की । पुनि, सन्मुख खड़ा हो, हाथ जोड़ स्तुति कर बोला कि महाराज ! आपका आना यहाँ कैसे हुआ । हरि बोले कि राजा ! सतयुग में मरीचि नामक एक ऋषि बड़े ब्रह्मचारी, ज्ञानी सत्यवादी और हरि भक्त थे । उनकी स्त्री का नाम उरना था, उसके छः बेटे थे । एक दिन छः हौ भाई तरुण अवस्था में प्रजापति के सन्मुख जाय हँसे । उनको हँसता देख प्रजापति ने महाकोप कर यह शाप दिया कि तुम जाय अवतार ले असुर हो । इस बात के सुनते ही ऋषि पुत्र अति भय खाय प्रजापति के चरणों पर जा गिरे और अति विनती कर बोले, कि कृपासिन्धु ! आपने शाप दिया, पर अब कृपा कर कहिये कि इस शाप से हम कब मोक्ष पावेंगे । इनके दीन वचन सुन प्रजापति ने कहा कि तुम श्रीकृष्णजी का दर्शन पाय मुक्त होगे । महाराज !

इतनी कहत प्राण तजि गये । वे हरणाकुश पुत्र जु भये ।।
पुनि वसुदेव के जन्मे जाय । तिनको हन्यो कंस ने आय ।।
मारि तिन्हें माया ले आई । इहठौ राखि गई सुखदाई ।।

उनका दुख माता देवकी करती हैं इसलिये हम यहाँ आये हैं कि अपने भाइयों को जाय माता को देवें, और उनके चित्त की चिन्ता दूर करें । श्रीशुकदेवजी बोले कि राजन् ! इतना वचन हरि के मुख से निकलते ही राजा बलि ने छहों बालक ला दिये और बहुत सी भेंट आगे धरी । तब प्रभु वहाँ से भाइयों को साथ ले माता के पास आये । माता पुत्रों को देख अति प्रसन्न हुई । इस बात को सुन सारी पुरी में आनन्द हुआ और उनका शाप छूटा ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का पच्चासीवाँ अध्याय ।।८५।।

अध्याय–८६

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! जैसे द्वारिका से अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्रजी की बहन सुभद्रा को हर ले गया और श्रीकृष्णचन्द्र मिथिला में जाय रहे तैसे कथा कहता हूँ, तुम मन लगाय सुनों । देवकी की बेटी श्रीकृष्णजी से छोटी जिसका नाम सुभद्रा था, वह ब्याहने योग्य हुई, तब बसुदेवजी ने कितने एक यदुवंशी और श्रीकृष्ण बलरामजी को बुलाय के कहा कि अब कन्या ब्याह योग्य हुई, कहौ किसे दें ? बलरामजी बोले कि कहा है बैर प्रीति समान से कीजै । एक बात मेरे मन में आई है कि यह कन्या दुर्योधन को दीजै, और जगत में यश और बड़ाई लीजै । श्रीकृष्णजी ने कहा मेरे विचार में आता है कि अर्जुन को लड़की दें तौ संसार में यश लें । श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! बलरामजी के कहने पर तो कोई कुछ नहीं बोला पर श्रीकृष्णजी के मुखसे यह बात निकलते ही सब पुकार उठे कि अर्जुन को कन्या देना अति उत्तम

है । इस बात के सुनते ही बलरामजी बुरा मान वहाँ से उठ गये और उनका बुरा मानना देख सब लोग चुप रहे । आगे यह समाचार पाय अर्जुन सन्यासी का भेष बनाय, दण्ड-कमण्डल ले द्वारिका में जाय, एक भली सी ठौर देख, मृगछाला बिछाय आसन मार बैठा ।

चार मास वर्षा भर रह्यो । काहू कछू मर्म न लह्यो ।।
अतिथि जानि सव सेवन लागे । विष्णु हेतु वासों अनुरागे ।।
वाको भेद कृष्ण सव जान्यो । काहू सों तिन नाहिं वखान्यो ।।

महाराज ! एक दिन बलरामजी अर्जुन को साधु जानकर घर जिमाने लिवाय ले गये, जो अर्जुन भोजन करने को बैठे तब सुभद्राजी दृष्टि आईं । देखते ही इधर तो अर्जुन मोहित हो सब की दृष्टि बचाय फिर-फिर देखने लगे और मन ही मन विचार करने लगे कि देखें विधाता कब जन्मपत्री की विधि मिलावे और उधर सुभद्राजी इनके रूप की छटा देख रीझ मन ही मन यों कहती थीं---

है कोऊ नृपति नाहिं सन्यासी । का कारण जे भये उदासी ।।

महाराज ! इतना कह उधर तो सुभद्रा घर को जाय पति के मिलने की चिन्ता करने लगीं और इधर भोजन कर अर्जुन अपने आसन पर आय प्रिय से मिलने की अनेक प्रकार की भावना करने लगे । इसमें कितने एक दिन पीछे एक समय शिवरात्री के दिन सब पुरबासी क्या स्त्री, क्या आदमी, नगर के बाहर शिव पूजन को गये । तहाँ सुभद्राजी अपनी सखी सहेलियों समेत गईं । उनके आने का समाचार पाय अर्जुन भी रथ चढ़ धनुष बाण ले वहाँ जाय उपस्थित हुआ । महाराज ! ज्यों शिव पूजन कर सखियों को साथ ले सुभद्राजी फिरीं त्यों देखते ही सोच संकोच तज अर्जुन ने हाथ उठाय सुभद्रा को रथ में बिठाय अपने घर की बाट ली ।

सुनि ये राम कोप अति कर्‌यो । हल मूसल ले काँधे धर्‌यो ।।
राते नयन रक्त से करे । वन सम गर्जि बोल उच्चरे ।।
अव ही जाय प्रलय मैं करिहौ । क्षिति उठाय कर माथे धरिहौं ।।
मेरी वहन सुभद्रा प्यारी । याको कैसे करै भिखारी ।।
अज हीं जहँ सन्यासी पाऊँ । ताकौ सव कुल खोज मिटाऊँ ।।

महाराज ! बलरामजी तो महा क्रोध में बक-झक रहे ही थे कि इस बात का समाचार पाय प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और बड़े-बड़े यादव बलदेवजी के सन्मुख आय हाथ जोड़ कर बोले कि महाराज ! हमें आज्ञा होय, तो जाय, शत्रु को पकड़ लावें । इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव-जी बोले कि महाराज ! जिस समय बलरामजी सब यदुवंशियों को साथ ले अर्जुन के पीछे चलने को उपस्थित हुए, उस काल श्रीकृष्णचन्द्रजी ने आय बलदेवजी को सुभद्रा हरण का सब भेद कह समझाया और अति विनती कर कहा कि भाई, अर्जुन एक तो हमारी फूफी का बेटा है और दूसरे परम मित्र । उसने जाने अनजाने, समझे बिन समझे, यह कार्य किया तो किया, पर हमें उससे लड़ना कभी उचित नहीं । यह धर्म के विरुद्ध है और लोक विरुद्ध है । इतनी बात सुनते ही बलरामजी सिर धुन झुंझलाय बोले कि भाई ! यह तुम्हारा काम है कि आग लगाय पानी को दौड़ना । नहीं अर्जुन की क्या सामर्थ जो हमारी बहन को ले जाता । इतनी कह मन ही मन पछिताय दाँव पेच खोय बलरामजी भाई का मुख देख हल मूसल पटक बैठ रहे और उनके

साथ यदुवंशी भी । श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा इधर तो श्रीकृष्णचन्द्रजी ने सबको समझाय बुझाय रखा और उधर उर्जुन ने घर जाय वेद की विधि से सुभद्रा के साथ ब्याह किया । ब्याह के समाचार पाय श्रीकृष्ण बलरामजी ने वस्त्र, आभूषण, दास, दासी, हाथी, घोड़े, रथ और बहुत से रुपये एक ब्राह्मण के हाथ संकल्प कर हस्तिनापुर को भेज दिये । आगे श्री मुरारी भक्त हितकारी रथ पर बैठ मिथिला को चले जहाँ श्रुतदेव और बहुलाश्व नामका एक राजा और एक ब्राह्मण थे जो बड़े भक्त थे । महाराज ! प्रभु के चलते ही नारद, बामदेव, व्यास, परशुराम आदि कितने एक मुनि आन मिले और श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ हो लिये । पुनि जिस दिशा में हो प्रभु जाते थे तहाँ के राजा आगे आय-आय पूज-पूज भेंट धरते जाते थे । निदान, चलते-चलते कितने एक दिनों में प्रभु वहाँ पधारे । हरि के आने का समाचार पाय वे दोनों जैसे बैठे थे तैसे ही भेंट ले-ले उठ धाये और श्रीकृष्णजी के पास आये । प्रभु का दर्शन करते ही दोनों भेंट धर दण्डवत् कर हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हो, अति विनय कर, बोले हे कृपासिन्धु ! दीनबन्धु ! आपने बड़ी दया की जो हमसे पातकी को दर्शन दे पावन किया । जन्म मरण का निबेड़ाकर चुका दिया । इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्रजी उन दोनों भक्तों के मन की भक्ति देख दो स्वरूप धारण कर दोनों के घर जाय रहे । उन्होंने मन मानता सब राव चाव किया और हरि ने कितने एक दिन वहाँ ठहर उन्हें अधिक सुख दिया और प्रभु उनके मन का मनोरथ पूरा कर ज्ञान दे जब द्वारिका को चले, तब ऋषि मुनि पन्थ में बिदा हुए और हरि द्वारिका में जा बिराजे ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का सुभद्रा-हरण नाम का छियासीवाँ अध्याय ।।८६।।

अध्याय—८७

इतनी कथा कह राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से पूछा कि महाराज ! आप जो आगे कह आये कि वेद ने परमेश्वर की स्तुति की, सो निर्गुण ब्रह्म की स्तुति वेद ने क्यों कर की ! यह मुझसे समझा कर कहो, जो मेरे मन का सन्देह जाय । श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! सुनिये कि जिसने बुद्धि, इन्द्रिय, मन, प्राण, धर्म, काम मोक्ष को बनाया सो प्रभु सदा निर्गुण रहता है । पर जब ब्रह्माण्ड रचता है तब सगुण रूप होता है । इससे निर्गुण वही एक ईश्वर है, इतना कह पुनि श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज ! जो तुमने प्रश्न किया सो प्रश्न एक समय नारदजी ने नारायणजी से किया था । परीक्षित ने कहा कि महाराज ! यह प्रसंग मुझे समझा कर कहिये जो मेरे मन का सन्देह जाय । श्रीशुकदेवजी बोले कि राजन् ! सतयुग में एक समय नारदजी सत्यलोक में जाय जहाँ नर-नारायण अनेक मुनियों के संग बैठे तप करते थे, पूछा कि महाराज ! निराकार ब्रह्म की स्तुति वेद किस भाँति करते हैं, सो समझा कर कहिये । नर-नारायण बोले कि सुनो नारद, जो संदेह तुमने मुझसे पूछा यही सन्देह एक समय जन लोक में जहाँ सनातनादि ऋषि बैठे तप करते थे वहाँ भी हुआ था । नारदजी बोले कि महाराज ! मैं भी वहीं रहता हूँ । जो यह प्रसंग चलता तो मैं भी सुनता ।

नर-नारायण ने कहा नारदजी ! तुम श्वेत द्वीप में भगवान के दर्शन को गये थे, तभी यह प्रसंग चला था । इससे तुमने नहीं सुना । इतनी बात सुन नारदजी ने पूछा महाराज ! वहाँ क्या प्रसंग चला, सो कृपा कर कहिये । नारायण बोले कि सुनो नारद ! जब मुनियों ने यह प्रश्न किया तब सनन्दन मुनि कहने लगे कि सुनो जिस समय महाप्रलय में चौदहों ब्रह्माण्ड जलमय हो जाते हैं, उस समय पूर्ण ब्रह्म अकेले रहते हैं । जब भगवान् को सृष्टि करने की इच्छा होती है तब उनके श्वास से वेद निकल हाथ जोड़ स्तुति करते हैं, ऐसे कि जैसे राजा अपने स्थान पर सोता हो और बन्दी जन भोर ही उसका यश गाय उसको जगावें । इसलिए कि वो चैतन्य हो शीघ्र कार्य करे ।

इतना प्रसंग कह नारायण बोले कि सुन नारद ! प्रभु के मुख से निकल वेद यह कहते हैं कि हे नाथ ! वेग चेतन्य हो । सृष्टि रचो और जीवों के मन से अपनी माया दूर करो । क्योंकि वह तुम्हारे रूप को पहिचाने तुम्हारे समझने का ज्ञान हो । हे नाथ ! तुम बिन इसे कोई वश में नहीं कर सकता । जिनके हृदय में ज्ञान रूप हो तुम बिराजते हो सो इस माया को जीतता है । नहीं तो किसकी सामर्थ्य है जो माया के हाथ से बचे । तुम सबके कर्ता हो । सब जीव तुम्हीं से उत्पन्न हो तुम्हीं में समाते हैं । ऐसे कि जैसे पृथ्वी से अनेक वस्तु उत्पन्न हो पृथ्वी में मिल जाती हैं । कोई किसी देवता की पूजा करे, पर वह तुम्हारी ही पूजा स्तुति होती है । आप अनेक रूप हैं और ज्ञान कर देखिये तो कोई कुछ नहीं । जिधर देखिए तिधर तुम्हीं तुम दृष्टि आते हो नाथ ! तुम्हारी माया अपरम्पार है । यही सत रज तम तीन गुण हो तीन स्वरूप धारण कर सृष्टि को उपजाय, पालन और नाश करती है । इसका भेद न किसी ने पाया, न कोई पावेगा । इससे जीव को उचित यह है कि सब वासना छोड़ कर तुम्हारा ध्यान करे । इसी में उसका कल्याण है । महाराज ! इतना प्रसंग सुनाय नारायण ने कहा कि नारद ! सनकादिक मुनियों ने वेद की विधि से सनन्दन मुनि की पूजा की ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! यह नर नारायण नारद का सम्वाद जो कोई सुनेगा, निस्सन्देह भक्ति पदारथ पाय मुक्त होगा । जो कथा पूर्ण ब्रह्म की वेद ने गाई सो कथा सनन्दन मुनि ने सनकादिक मुनियों को सुनाई । वही कथा नर-नारायण ने नारद को सुनाई । इस कथा को जो जन सुनावेगा सो मन भावता फल पावेगा । जो पुण्य होता है, तप, यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थ करने में सोई पुण्य होता है इस कथा के कहने सुनने में ।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का सत्तासीवाँ अध्याय ।।८७।।

अध्याय—८८

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! भगवान् की लीला अद्भुत है । इसे सब कोई नहीं जानता है । जो जन हरि की पूजा करे सो, दरिद्री होय, महादेवजी को माने सो धनवान देखा । हरि की कैसी रीति है । ये लक्ष्मी पति वे गौरी पति ! उनके बनमाला, उनके मुण्ड-माला, ये चक्रपाणि, वे शूलपाणि, ये धरणीधर वे गङ्गाधर, वो मुरली बजावें, ये सींगी, ये बैकुण्ठ वासी, वे कैलाश वासी, ये प्रतिपालें, वे संहारें, ये चरचें चन्दन, वे लगावें विभूति, वे ओढ़े अम्बर,

ये बाघम्बर, ये पढ़ें वेद, वो आगम, इनका बाहन गरुड़, इनका नन्दी, ये ग्वालबालों में वे भूत-प्रेतों में बिचरें।

दोऊ प्रभु की उलटी रीति। जित इच्छा तिति कीजे प्रीति॥
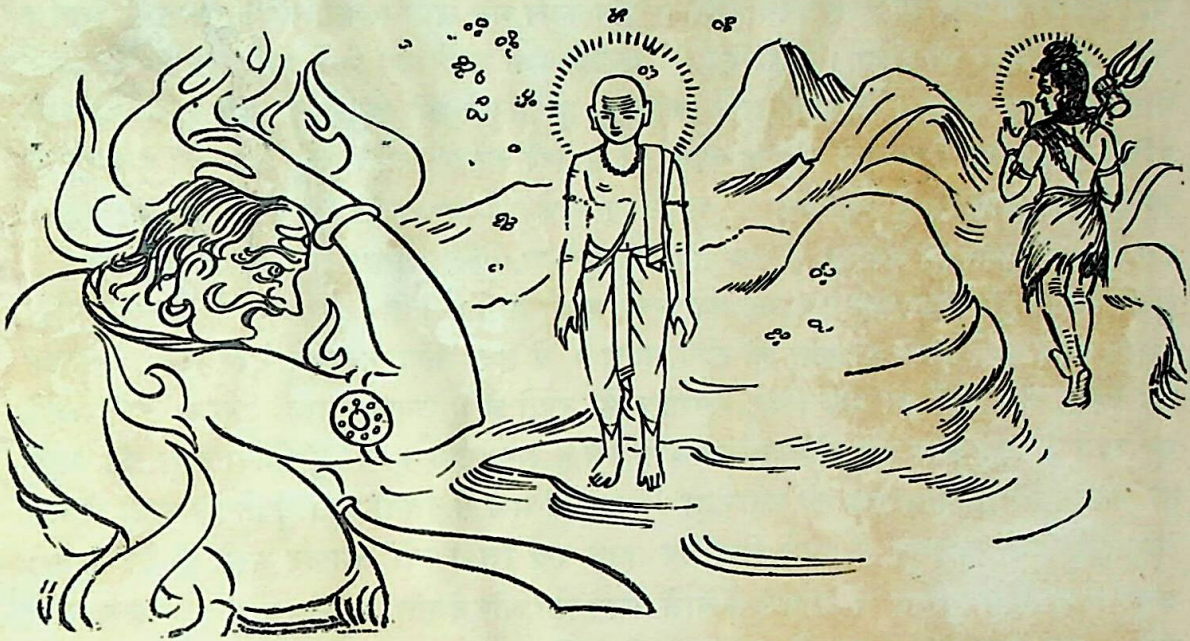
इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! राजा युधिष्ठिर से श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा कि हे युधिष्ठिर ! जिस पर मैं अनुग्रह करता हूँ, हौले-हौले उसका सब धन खो देता हूँ। इसलिये कि धनहीन को भाई बन्धु, स्त्री, पुत्र आदि सब कुटुम्ब के लोग तज देते हैं। तब उसे वैराग्य उपजता है। वैराग होने से धन जन की माया छोड़ निर्मोही हो, मन लगाय, मेरा भजन करता है। भजन के प्रताप से अटल निर्वाण पद पाता है। इतना कह मुनि श्री शुकदेवजी कहने लगे कि महाराज ! और देवता की पूजा करने से मनोकामना पूरी होती है, पर भक्ति नहीं मिलती। यह प्रसंग सुनाय, मुनि ने पुनि, राजा परीक्षित से कहा कि महाराज ! एक समय कश्यप का पुत्र वृकासुर तप करने की अभिलाषा कर जो घर से निकला तो पन्थ में उसे नारदजी मिले। देखते ही दण्डवत् कर हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हो अति दीनता कर उसने पूछा कि महाराज ! ब्रह्मा विष्णु महादेव इन तीनों देवताओं में शीघ्र वरदानी कौन है, सो कृपा कर कहो; तो मैं उन्हीं की तपस्या करूँ। नारदजी बोले कि सुन वृकासुर ! इन तीनों देवताओं में महादेव बड़े बरदायक हैं। इनको न रीझते विलम्ब न खीझते। देखो, शिवजी ने थोड़े से तप करने से प्रसन्न हो सहस्त्रार्जुन को सहस्त्र हाथ दिये और अल्प ही अपराध में महा क्रोध कर उसका नाश किया। महाराज ! इतनी कह नारद मुनि तो चले और वृकासुर अपने स्थान पर आय महादेव का अति तप करने लगा। सात दिन के बीच उस ने छुरी से अपने शरीर का माँस सब काट काट होम दिया। आठवें दिन जब सिर काटने को मन किया तब भोलानाथ ने आय, उसका हाथ पकड़के कहा कि मैं तुझसे प्रसन्न हुआ, जो तेरी इच्छा आवे सो वर माँग। इतना वचन शिवजी के मुख से निकलते ही वृकासुर हाथ जोड़ बोला—

के राजा आप काजा हैं पर दुःख निवारक नहीं; जो प्रजा को सुख दें और गौ ब्राह्मण की सेवा करें। ऐसा सुनाय पुनि अर्जुन ने विप्र से कहा कि देवता! तुम जाय अपने घर निश्चिन्त बैठ रहो। जब तुम्हारे लड़का होने का दिन आवे, तब तुम मेरे पास आइयो मैं तुम्हारे साथ चलूँगा और लड़के को न मरने दूँगा। महाराज! इतनी बात के सुनते ही वि[illegible] खिजलाय बोला कि, मैं इस सभा के बीच श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध छुड़ाय ऐस[illegible] बलवान किसी को नहीं देखता जो मेरे पुत्र को काल के हाथ से बचावें। अर्जुन बोला कि विप्र[illegible] मुझे नहीं जानता कि मेरा नाम धनंजय है। मैं तुझसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि जो मैं तेरा सुत काल के हाथ से न बाचाऊँ और तेरे मरे हुए लड़के जहाँ पाऊँ तहाँ से ले आय तुझे दिखलाऊँ और उन्हें न पाऊँ तो गाण्डीव समेत अपने को अग्नि में जलाऊँ। महाराज! जब ऐसी प्रतिज्ञा कर अर्जुन ने ऐसा कहा, तब वह संतोष कर अपने घर को गया। पुनि, पुत्र होने के समय विप्र अर्जुन के निकट आया। उस काल अर्जुन धनुष बाण ले उसके साथ उठ धाया। आगे वहाँ जाय उसका घर अर्जुन ने बाणों से ऐसा छाया कि जिसमें पवन भी प्रवेश न कर सके और आप धनुष बाण लिये उसके चारों ओर फिरने लगा।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षित से कहा कि हे महाराज! अर्जुन ने बहुत सा उपाय बालक के बचाने का किया पर न बचा। और दिन तो बालक होने के समय रोता था, उस दिन श्वास भी न लिया पेट ही से मरा निकला। मरे लड़के का होना सुन लज्जित हो अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्रजी के निकट आया और इसके पीछे विप्र भी आया, महाराज! वहाँ आते ही रो रो विप्र कहने लगा रे अर्जुन! धिक्कार है तुझे और तेरे जप तप को, जो मिथ्या वचन कह संसार के लोगों को मुख दिखाया है। अरे नपुंसक! मेरे पुत्र को काल के हाथ से न बचा सकता था तो तैने प्रतिज्ञा क्यों की थी कि मैं तेरे पुत्र को बचाऊँगा और न बचा सकूँगा तो तेरे मरे पुत्र को ला दूँगा। इतनी बात के सुनते ही अर्जुन धनुष बाण ले वहाँ से उठ चला और संयमना पुरी में धर्मराज के पास गया। उन्हें देख धर्मराज उठ खड़ा हुआ। अर्जुन बोले कि अमुक ब्राह्मण के बालक को लेने आया हूँ। धर्मराज ने कहा बालक यहाँ नहीं आये। महाराज! इतना वचन धर्मराज के मुख से निकलते ही अर्जुन वहाँ से विदा हो सब ठौर फिरा पर उसने ब्राह्मण के लड़कोंको कहीं नहीं पाया। निदान, अछता-पछता द्वारिकापुरी में आया और चिता बनाय धनुष-वाण समेत जलने को उपस्थित हुआ। आगे अग्नि जलाय अर्जुन ने चाहा कि चि[illegible]र बैठूँ तो श्री मुरारी गर्व प्रहारी ने आय हाथ पकड़ा और हँस कर कहा कि हे अर्जुन! तू मत [illegible]ले। तेरी प्रतिज्ञा मैं पूरी करूँगा। जहाँ उस ब्राह्मण के पुत्र होंगे तहाँ से ला के दूँगा।

महाराज! ऐसे कह त्रिलोकीनाथ रथ पर बैठ अर्जुन को साथ ले पूर्व दिशा की ओर चले और सात समुद्र पार हो कंदरा में पैंठे उस समय श्रीकृष्णचन्द्रजी ने सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी वह कोटि सूर्य सम प्रकाश किये प्रभु के आगे-आगे महा अंधकार को हटाता चले। आ[illegible] जाते ही आँखें खोल कर देखा कि बड़ा लम्बा चौड़ा ऊँचा कंचन का मणिमय मन्दिर अति सुन्दर है। तहाँ शेषजीके शीश पर रत्न जटित सिंहासन धरा है तिसपर श्याम [illegible]नरूप सुन्दर प्रभु मोहिनी मूर्ति विराजे हैं। ऐसा उत्तम स्वरूप देख अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्रजी ने प्रभु के सों ही जाय दण्डवत्

कर, हाथ जोड़, अपने आने का सब कारण कहा। बात के सुनते ही प्रभु ने ब्राह्मण के सब बालक मँगा दिये, और अर्जुन ने देख भाल कर प्रसन्न हो अपने साथ लिये तब प्रभु बोले——

तुम दोऊ मेरी कलाजु आदि। हरि अरजुन देखो चित याहि ।।
भार उतारन भू पर गये। साधु सन्त को बहु सुख दिये ।।
असुर दैत्य सब तुम संहारे। सुर नर मुनि के काज सम्हारे ।।

इतनी कह भगवान् ने अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र को विदा किया। ये बालक ले पुरी में आए। घर-घर आनन्द मङ्गल भये। इतनी कहा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज !

जो यह कथा सुने धर ध्यान। तिनके पुत्र होय कल्यान ।।

इति श्रीलल्लूलालकृत प्रेमसागर का द्विजकुमार हरण व प्राप्ति नामक नवासीवाँ अध्याय ।।८९।।

अध्याय—९०

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! द्वारिकापुरी में श्रीकृष्णचन्द्र सदा बिराजें। ऋद्धि-सिद्धि सब यदुवंशियों के घर-घर विराजे। नर-नारी सब आभूषण ले नव वेश बनावें, हाट-बाट, चौहाटे झाड़बुहार छिड़कावें, तहाँ देश-देश के व्यापारी अनेक-अनेक पदार्थ बेचने को लावें। जिधर-तिधर पुरवासी कुतूहल करें। ठौर-ठौर ब्राह्मण वेद उच्चारें, घर-घर मङ्गली लोग कथा पुराण सुनें सुनावें, सारथी रथ घोड़े बहल जोत-जोत राजद्वार लावें, रथी महारथी, गजपती, अश्वपती, शूरवीर, रावत, योधा, यादव राजा की जुहार करने जाँय गुणीजन नाचें-गावें व बजावें, बन्दीजन, चारण शब्द बखान कर, हाथी, घोड़े, वस्त्र, अन्न, धन कंचन रतन जटित आभूषण पावें। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज ! इधर तौ राजा उग्रसेन की राजधानी में इस रीति भाँति के कौतूहल हो रहे थे और उधर श्रीकृष्णचन्द्रजी आनन्दकन्द सोलह सहस्र एक सौ आठ युवतियों के साथ नित्य बिहार करें। कभी युवतियाँ प्रेम में आसक्त हो प्रभु का वेश बनाया करें कभी हरि आसक्त हो युवतियों का श्रृङ्गार करें, और जो परस्पर लीला क्रीड़ा करें सो अकथ है, वह देखते ही बनै है।

इतना कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महराज ! एक दिन रात्रिके समय श्रीकृष्णचन्द्र सब युवतियों के साथ बिहार करते थे और प्रभु के नाना प्रकार के चरित्र देख किन्नर, गन्धर्व, वीणा, पखावज, भेरी, दुन्दभी बजाय-बजाय गुण गाते थे और एकसा समा हो रहा था, कि बिहार करते-करते जो प्रभुजी के मनमें आया तो सब को सरोवर के तीर ले जाय नीरमें पैंठ, जल क्रीड़ा करने लगे। जल क्रीड़ा करते-करते सब स्त्री श्रीकृष्णचन्द्र के प्रेम में मग्न हो, तन मन की सूरत भुलाय एक चकवा चकई को सरोवर के तीर पार बोलते देख बोली——

हे चकई तू दुख यों पावै। पिय वियोग तै रैन नशावै ।।
अति व्याकुल हो पियहि पुकारै। हमसों तू निज पियहि सम्हारै ।।

पुनि समुद्र से कहने लगीं कि हे समुद्र ! तू जो लम्बी-लम्बी श्वाँस लेता है और रात दिन जागता है सो क्या तुझे किसी का वियोग है । या चौदह रत्न गये सोई शोक है । फिर चन्द्रमा को देख बोलीं कि हे चन्द्रमा ! तू क्यों तन क्षीण मन मलीन हो रहा है ? क्या तुझे क्षय रोग हुआ जो दिन-दिन घटना-बढ़ता है । श्रीकृष्णचन्द्र को देख जैसी हमारी गति भूलती है, तैसी तेरी भी भूलती है ?

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज ! इसी भाँति सब स्त्रियों ने पवन, मेघ, पर्वत, नदी, कोकिल, इनसे अनेक-अनेक बातें कहीं सो जान लीजै, आगे सब श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ बिहार करें और सेवा में रहैं। प्रभु के गुण गावें और मन वांछित फल पावें । प्रभु गृहस्थ धर्म से गृहस्थाश्रम चलावें ।

महाराज ! सोलह सहस्र एक सौ आठ श्रीकृष्णचन्द्र की रानी जो प्रथम बखानी तिनमें एक-एक के दस-दस पुत्र और एक-एक कन्या थी और उनकी सन्तान अनगिनती हो गईं । सो मेरी सामर्थ्य नहीं कि जो उनकी सन्तान का बखान करूँ पर मैं इतना जानता हूँ कि तीन कोट अट्ठासी सहस्र एक सौ पाठशालाएँ थीं। श्री कृष्णचन्द्र के जितने बेटे पोते नाती हुए उनमें बल पराक्रम धन धर्म में कोई कम न था । एक से एक बढ़ कर थे । उनके वर्णन मैं कहाँ तक करूँ ।

इतना कह ऋषि बोले कि महाराज ! मैंने व्रज और द्वारिका की लीला गाई । यह है सबको सुखदाई । जो जन इसे प्रेम सहित गावेगा सो निस्सन्देह मुक्ति पदार्थ पावेगा । जो फल होता है तप, यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थ, स्नान, करने से सो फल मिलता है हरि कथा सुनने और सुनाने से । फिर श्रीशुकदेवजी बोले कि राजन् ! अब श्रीकृष्ण लीला तो समाप्त हो गई । यों तौ भगवान् की लीलाएँ अगाध हैं पर मैंने सूक्ष्म में वर्णन करी हैं ।

इति श्री लल्लूलालकृत प्रेमसागर का द्वारिका विहार वर्णन नाम का नव्वेवाँ अध्याय ।।९०।।

इति शुभम् ग्रन्थः समाप्तयं

लम्बी श्वाँस लेता है और
रत्न गये सोई शोक है।
हो ---- है ? क्या
ी गति

सी भाँति